CERTIFIED CIRCULATION EXCEEDS 15,000 COPIES

वर्ष ८, खण्ड २] जुलाई, १६३० [संख्या ३, पूर्ण संख्या ९३

वार्षिक चन्दा ६॥) छः माही ३॥)

सम्पादक—
श्रीरामरखसिंह सहगल
श्रीशुकदेव राय

विदेश का चन्दा ८॥) इस अङ्क का मूल्य ॥।)

PRINTED AT THE FINE ART PRINTING COTTAGE, CHANDRALOK--ALLAHABAD.

विषय सूची

* * *

चाँद कार्यालय
इलाहाबाद

लेखक—पं० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक

हिन्दी-संसार में कौशिक जी की कहानियों का स्थान अन्यतम है, आपकी कहानियाँ प्रायः सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में केवल स्थान ही नहीं पातीं, बल्कि उनका आदर किया जाता है। इस पुस्तक में कौशिक जी की चुनी हुई १६ मौलिक सामाजिक कहानियों का सुन्दर संग्रह है। छपाई अङ्गरेज़ी ढङ्ग की बहुत ही सुन्दर हुई है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रु० रक्खा गया है !! ऊपर सुन्दर प्रोटेक्टिङ्ग-कवर भी दिया गया है ! हर हालत में स्थायी तथा 'चाँद' के ग्राहकों को पुस्तक पौनी क़ीमत में ही दी जायगी !! केवल ३,००० प्रतियाँ छपी हैं। शीघ्र ही मँगा लीजिए, अन्यथा हाथ मल कर रह जाना पड़ेगा ; अपूर्व चीज़ है !

सफल माता

मौन प्रश्न

किसे खोजते हैं रजनी में, मेरे ये आकुल लोचन ?
झूले-सा ही काँप रहा है, क्यों यह मेरा चञ्चल मन ?

—'मुक्त'
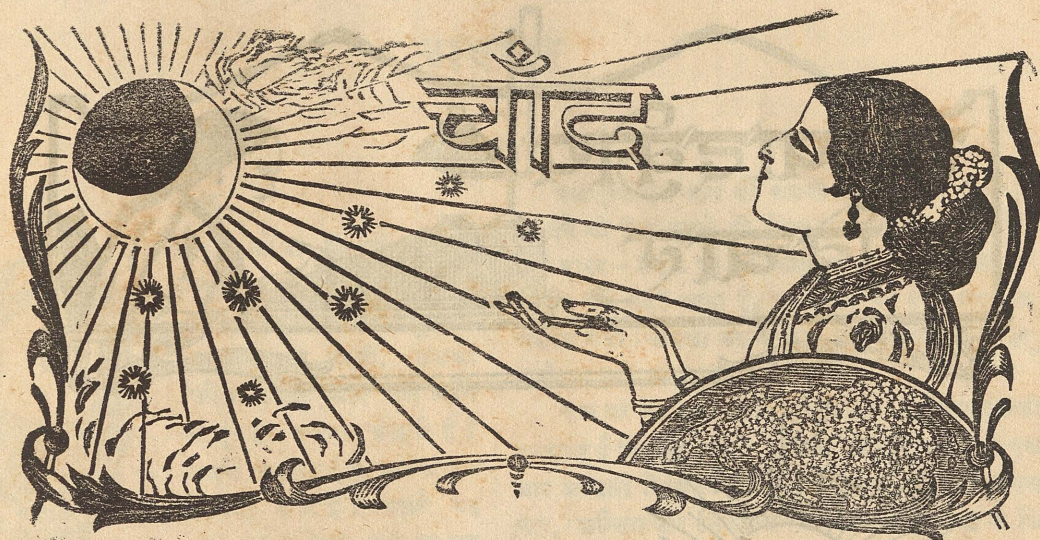
आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है।
जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय
नहीं कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

जुलाई, १९३०

संख्या ३
पूर्ण संख्या ९३

साध

[कुमारी कमला]

मुझे साध थी देख सकूँगी—
पर तू अन्तर्धान हुआ।
अपना मान लिए बैठी थी—
प्राणों का अपमान हुआ॥

हे स्वामी! यह जीवन विषमय—
है, इसका अब अन्त करो।
इस विनाश-मधु की मादकता
छूकर आज अनन्त करो!!

यहाँ नहीं तो वहाँ सही,
पथ पर अशेष हो जाऊँगी।
कण-कण में तुमको खोजूँगी
मिट्टी में खो जाऊँगी!!

234
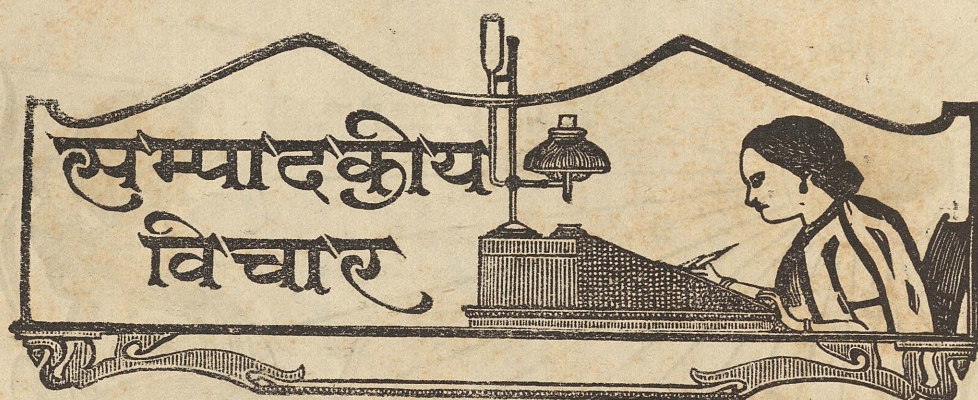
जुलाई, १९३०

क़ानून या काल ?

अकारा

['मुक्त']

कलित ने सोचा कि क्यों उसका प्रत्येक काम दुनियाँ को बुरा मालूम पड़ता है ? क्यों दुनियाँ उससे घृणा करती, उसकी उपेक्षा करती और उसे अपने से दूर ही रखना चाहती है ? उसमें क्या बुराई है, क्या अभाव हैं, क्या खोट है ? उसने यह बात बहुत सोची, बड़ी देर तक इसी उधेड़-बुन में पड़ा रहा, मगर कुछ ठीक न कर सका।

यह बात आज ही उसके मन में उठी हो, ऐसा नहीं था। अनेक बार, इसी बात को सोचते-सोचते अन्धकार से भरी हुई कितनी रातें उसने बिता दी हैं; इसी रहस्य का उद्घाटन करने की इच्छा से, गरमी की कितनी ही लम्बी दुपहरिया उसने काट दी हैं। बरसती हुई वर्षा की रिम-झिम बूँदों में नहा कर, जाड़े की काँपती हुई सर्दी में ठिठुर कर, आधीरात की नीरव-निर्जनता में उस पार के सघन अँधेरे में दृष्टि गड़ा कर, अनेक बार वह इसी बात को सोचता रहा है; किन्तु आज तक यह बात सदा ही उसके निकट एक पहेली रही है; और ऐसी पहेली, जिसे हल करना, कम से कम उसके लिए तो, कभी आसान हो ही नहीं सकता।

सोचते-सोचते उसका माथा घूम गया। ऊब कर उसने एक लम्बी साँस ली और सिर ऊपर उठाया। उसे मालूम पड़ा, मानो जीवन भर सोचते रहने के बाद भी, इस सवाल का कोई उचित उत्तर उसका हृदय न दे सकेगा। उसे मालूम पड़ा, मानो कभी इस रहस्य का, इस पहेली का कूल-किनारा वह न पा सकेगा। उसने निश्चय किया कि अब कभी इस बात पर प्रकाश डालने की चेष्टा वह न करेगा, कभी यह बात न सोचेगा। सोचेगा अगर, तो उसका माथा फट जायगा, वह पागल हो जायगा।

बलपूर्वक इस बात को अपनी स्मृति-सीमा के बाहर कर देने की चेष्टा उसने की, फिर दरवाज़ा खोल कर धीरे-धीरे बाहर—सड़क पर—निकल आया। उसे मालूम न था कि उसे कहाँ जाना है, पर उसके पैर बढ़ते गए, वह चलता गया। सहसा उसने देखा कि वह मालती के दरवाज़े पर आ खड़ा हुआ है।

क्षण भर वह असमञ्जस में पड़ा रहा। एक बार उसकी इच्छा हुई कि वह जब यहाँ तक आ ही गया, तो एक बार मालती से मिलता जाय। एक बार, हाँ, केवल एक बार, अन्तिम बार मिल कर वह मालती से कह दे कि दुनियाँ के साथ रह कर जब चलना है, तो उसके कहने की ओर ध्यान देना ही पड़ेगा, उसकी बात माननी ही पड़ेगी। वह मालती से कह ले कि अपनी इच्छा और आकांक्षाओं का बलिदान करके भी यदि वह समाज और परिवार को प्रसन्न रख सकता है, तो वह वही करने की चेष्टा करेगा। वह मालती से बोलना छोड़ देगा, मिलना-जुलना भी बन्द कर देगा। हाँ, यही तो दुनियाँ चाहती है !

क्षण भर के लिए ये विचार उसके मन में उठे ज़रूर, मगर शीघ्र ही, घृणा से, उपेक्षा से, तिरस्कार से वह अट्टहास कर उठा। उसने सोचा—दुनियाँ की परवा करने की उसे ज़रूरत ही क्या है ? दुनियाँ तो उसके सुख-दुख की, उसके मान-अपमान की, उसकी प्रसन्नता-अप्रसन्नता की परवा नहीं करती; फिर वही उसके लिए क्यों जान दे ? क्यों अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं का ख़ून करे ? और दुनियाँ में सबको प्रसन्न रख कर चलना भी तो बहुत आसान नहीं है, शायद असम्भव ही है। दुनियाँ प्रसन्न होगी तब, जब हम उसी के निर्दिष्ट पथ पर चलेंगे, उसी की इच्छा के अनुकूल आचरण करेंगे, लेकिन यह भी क्या सम्भव है ? एक मनुष्य कितने लोगों को इस प्रकार प्रसन्न रख सकेगा, कितने लोगों के इङ्गित पर अपना पथ अतिक्रम कर सकेगा ? यह तो मुश्किल है, शायद यह किया ही नहीं जा सकता, शायद इसकी ज़रूरत ही नहीं है।

ललित ने और भी सोचा कि मालती से मिलने की भी उसे कोई ज़रूरत नहीं। मालती के घर वाले जब नहीं चाहते कि वह उससे मिले-जुले, बातचीत करे, तो उनकी इच्छा के विरुद्ध आचरण करके क्यों वह उन लोगों को कष्ट दे? उसे मालती से कुछ भी नहीं कहना है। दिन जिस प्रकार बीते जा रहे हैं, उसी प्रकार बीतें। इसीमें तृप्ति है, सुख है, सन्तोष है।

एक बार उसने तृषित आँखों से मालती के कमरे की ओर देखा, फिर धीरे-धीरे वह लौट चला। कुछ दूर जाकर उसने फिर एक बार घूम कर देखा। मालती के कमरे की खिड़की खुली हुई थी, वह उसी की ओर देख रही थी। ललित ने देखा, मालती के ओठ हिल रहे हैं। उसने कुछ सुना नहीं, समझा भी नहीं; लेकिन न जाने किस आकर्षण से खिंच कर वह मालती की खिड़की के नीचे आ खड़ा हुआ। मालती ने उसे ऊपर आने के लिए इशारा किया, वह कुछ बोलना भी चाहती थी, लेकिन शायद बोल न सकती थी। ललित बड़े असमञ्जस में पड़ा—वह कुछ निश्चय न कर सका कि वह ऊपर जाय या न जाय। अनेक दिनों से अभ्यास छूट जाने के कारण ऊपर चढ़ते हुए उसे बड़ा सङ्कोच मालूम हो रहा था, उसके पैर सीढ़ियों पर चढ़ने के लिए उठते ही न थे। लेकिन अधिक सोचने का उसे अवकाश न था। वह झटपट सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। क्षण भर बाद वह मालती के सामने खड़ा था।

मालती ने एक बार सूनी आँखों से उसकी ओर देखा और बोली—बहुत दुबले हो गए हो ललित!

"दुबला हो गया हूँ?" ललित ने एक बार अपने शरीर की ओर उपेक्षा-भरी आँखों से देखा। एक फीकी हँसी हँस कर बोला—हो गया होऊँगा! इसमें आश्चर्य ही क्या है मालती?

"आश्चर्य? नहीं, आश्चर्य तो कुछ नहीं है। लेकिन पूछती हूँ, ऐसा क्यों हुआ है?"

"यह क्या बताऊँ मालती? शरीर ही तो है!"

"नहीं ललित, यह बात नहीं है। तुम मुझसे छिपाते हो।"

"छिपाता हूँ? तब तुम्हीं बताओ, क्या बात है? मेरी समझ में तो कुछ नहीं आता।"

मालती कुछ बोली नहीं। वह खिड़की पर बैठी थी। बाहर दूर तक फैला हुआ नीला आसमान धूमिल हो रहा था। उसने एक बार उसकी ओर देखा—पश्चिम क्षितिज में सूरज डूब गया था। अन्धकार के आवरण में लालिमा अभी भी बिखर रही थी। सफ़ेद-काले बादल आसमान में टहल रहे थे। मालती अपनी भावनाओं में डूबी हुई, अपने को भूल कर चुपचाप बाहर की ओर देखती रही।

थोड़ी देर तक ललित चञ्चलतापूर्वक कमरे में टहलता रहा, फिर एक बार उसने मालती की ओर देखा। वह गहरी चिन्ता में डूबी हुई, गाल पर हाथ रक्खे, अपलक आँखों से बाहर की ओर देख रही थी। उसके सिर से साड़ी खिसक गई थी। लम्बे-लम्बे मेचक-कुञ्चित, घन-कृष्ण केश पीठ पर बिखर गए थे। ललित को मालती के इस वेश में बड़ी मोहकता मालूम पड़ी। वह टकटकी लगा कर थोड़ी देर तक उसकी ओर देखता रहा। फिर उसने आँखें फेर लीं। इस प्रकार मालती को देखने का उसे कोई अधिकार न था।

ललित का हृदय काँप रहा था। वह न वहाँ ठहर सकता था, न वहाँ से जाने की ही इच्छा होती थी। वह बड़ी उलझन में पड़ा हुआ, इधर-उधर टहलने लगा। मेज़ पर से उसने एक पुस्तक उठा ली और व्यग्रतापूर्वक उसके पन्ने उलटने लगा। सहसा उसने पुस्तक के पन्नों में छिपी हुई एक तस्वीर देखी। वह तस्वीर मालती की थी। धीरे से तस्वीर निकाल कर उसने अपनी जेब में रख ली। इसके बाद उसने मालती की ओर देखा। मालती उस समय भी बाहर की ओर देख रही थी। ललित को कुछ बल मिला। उसने पुकारा—मालती!

मालती जैसे सोते से जाग पड़ी। चौंक कर उसने खिड़की से सिर निकाला, घूम कर ललित की ओर देखा। बोली—अरे! ललित, तुम अभी तक यहीं हो? मैंने समझा, चले गए!

ललित ने कहा—अभी तो नहीं गया, लेकिन अब जाता हूँ।

"जाओ।"—मालती ने चुपचाप कह दिया।

ललित ने पूछा—लेकिन मुझे बुलाया क्यों था मालती?

मालती—नहीं जानती। ग़ल्ती की थी, मुझे माफ़ करना, लेकिन अब जाओ।

आश्चर्य से एक बार मालती की ओर ललित ने देखा, फिर बोला—मेरा अपमान करने के लिए ही मुझे बुलाया था मालती? मैंने तुम्हारा क्या अनिष्ट किया है? ललित की वाणी वेदना की अधीरता से काँप रही थी। उसके स्वर में अभिमान नहीं था, दीनता थी, उत्तेजना नहीं थी, निराशा थी, वेदना की विह्वलता और तिरस्कार की विक्षिप्तता भी थी।

मालती ने उसका यह भाव लक्ष्य किया। एक हल्की उसाँस उसके मुँह से निकल गई। काँपती हुई आवाज़ में, बड़ी मुश्किल से, उसने कहा—"मैं तुम्हारा अपमान करती हूँ ललित? आज यह बात तुम्हारे मन में भी उठ सकती है? यदि ऐसी बात है तो मुझे माफ़ करना भाई! लेकिन अब जाओ। देर न करो। बस, मैं और कुछ नहीं कह सकती।" यह कह कर मालती ने मुँह फेर लिया। ललित ने देखा—टप-टप कई बूँद आँसू उसके कपोलों पर ढुलक पड़े। एक मर्मान्तिक पीड़ा से ललित का हृदय तिलमिला उठा। वह एक क्षण भी वहाँ न ठहर सका। तेज़ी से दरवाज़ा पार करके वह सीढ़ियाँ उतरने लगा।

ख

ललित जब सड़क पर उतर आया तो फिर कर उसने एक बार मालती के कमरे की ओर देखा। मालती उस समय भी खिड़की पर बैठी हुई थी। गोधूलि के धूमिल प्रकाश में उसे कुछ दीख न पड़ा। केवल उसने इतना ही देखा—कपड़े से मुँह ढक कर मालती खिड़की पर बैठी है। वह अधिक देर तक वहाँ खड़ा न रह सका, तेज़ी से एक ओर चल पड़ा।

अब मालती भी खिड़की से उठ कर खड़ी हुई। पहले उठ कर वह दरवाज़े के पास गई। दरवाज़े की ज़ञ्जीर उसने भीतर से बन्द कर ली। फिर ट्रङ्क खोल कर उसने एक चित्र निकाला। उसे लेकर वह फ़र्श पर बैठ गई। लेकिन उसका सिर घूम रहा था। वह बैठी न रह सकी, लेट गई। लेट कर वह तस्वीर देखने लगी।

तस्वीर देखते ही देखते अतीत की न जाने कितनी, सुख-दुख से भरी हुई स्मृतियों के आलोड़न से उसका माथा उन्मत्त हो उठा। उसका हृदय काँप रहा था, प्राणों में हाहाकार व्याप्त हो रहा था, आँखों में सावन-भादों की झड़ी लग रही थी।

वह तस्वीर ललित की थी। उस तस्वीर के साथ बाल्यकाल की न जाने कितनी मधुर-स्मृतियाँ जड़ी हुई थीं। मालती को एक-एक करके कितनी ही बातें याद आने लगीं—"एक दिन ज़िद करके ललित ने उसकी तस्वीर खींच ली थी। मालती ने कहा—'इसी तरह किसी दिन मैं भी अचानक तुम्हारी तस्वीर उतार लूँगी ललित! देखना!!' ललित ने व्यङ्ग से मुस्करा कर कहा—'देखूँगा! तुम्हें खींचना आता भी है?' मालती ने इसका कुछ उत्तर न दिया। वह समय की प्रतीक्षा करने लगी।

एक दिन मालती ने अपने भाई रविशङ्कर से कहा—भैया! ललित की एक तस्वीर खींच दो।

रविशङ्कर बोले—क्यों? वह कहाँ है?

मालती—कहाँ है की बात नहीं। जहाँ भी हो, चुपके से उसकी तस्वीर खींच दो। उसने एक दिन यों ही मेरी तस्वीर उतार ली और कहने लगा कि भला इसी तरह तुम भी मेरी तस्वीर उतार लो तो जानूँ! भैया, मैंने उससे कह दिया है कि देखना, मैं तुम्हारे अनजान में कभी न कभी तुम्हारी तस्वीर ज़रूर उतार लूँगी।

रविशङ्कर—ऐसा! अच्छी बात है, तब उसकी तस्वीर खिंच जायगी।

मालती—लेकिन उसे मालूम न होने पावे।

रविशङ्कर—न होगा।

मालती ख़ुशी-ख़ुशी वहाँ से चली गई, रविशङ्कर अपने काम में लगे।

रविशङ्कर, मालती और ललित दोनों से ही कुछ अधिक उम्र के थे, लेकिन बड़े हँसमुख थे, बड़े मिलनसार। कुछ उदार भी थे। दोनों बच्चों को खेलते और विनोद-परिहास करते देख कर वह स्थिर न रह सकते थे, स्वयं भी उनके साथ मिल जाते और उन्हींके साथ हँसने-खेलने लगते। कभी-कभी वे मालती और ललित के झगड़ों का निपटारा भी ईमानदारी के साथ कर दिया करते थे, इसलिए वे दोनों उन्हें बहुत मानते थे। बचपन के रङ्गीन दिन, सुख और स्वच्छन्दता के इन्हीं सपनों में बीते जा रहे थे।

एक दिन ललित छत के मुँडेरे पर बैठा था। पास ही मालती ज़मीन पर खड़ी थी। रविशङ्कर ने उन दोनों

को देखा तो तस्वीर खींचने की याद आ गई। सामने वाले मकान की छत पर जाकर—उन दोनों के अलक्ष्य में—उन्होंने तस्वीर खींच ली। फिर लौट आए। ललित और मालती—दोनों में से कोई यह बात जान भी न सका।

दूसरे दिन तस्वीर छाप कर जब रविशङ्कर ने मालती को दिखाई तो वह बहुत बिगड़ी—भैया! तुम बड़े ख़राब हो। तुमने उसके साथ मेरी तस्वीर भी क्यों खींच दी?

रविशङ्कर ने हँस कर कहा—तुम वहाँ खड़ी क्यों थीं? मेरा इसमें क्या दोष है मालती?

मालती तस्वीर लेकर चली गई। उसने ललित को उसे दिखलाया। ललित भी देख कर बहुत बिगड़ा—तुमने मेरे साथ अपनी तस्वीर क्यों खिंचवाई? मैं अपनी तस्वीर अलग फाड़ लूँगा।

मालती झेंप गई। अपनी झेंप मिटाने के लिए उसने स्वयं ही तस्वीर के दो टुकड़े कर डाले। फिर दोनों ही टुकड़े लेकर वह वहाँ से भाग गई।"

इस घटना के बाद कितने ही दिन बीत गए। रविशङ्कर और ललित में से किसी को उस तस्वीर की याद भी न रह गई थी, लेकिन मालती की सन्दूक़ में आज भी वह यत्नपूर्वक बन्द थी। उसके बाद, बीते हुए इन कई वर्षों में कितने उलट-फेर हुए, जीवन में कितने विप्लव और कितनी क्रान्तियाँ हो गईं, इसका कोई हिसाब नहीं है। बीच-बीच में मालती ने कितनी ही बार तस्वीर के उन दो टुकड़ों को निकाला है और अतीत की दुखद स्मृति से अधीर और विह्वल हो उठी है। आदर-अभिमान की कितनी ही स्मृतियों ने उसे बार-बार रुलाया और विक्षिप्त कर दिया है। वह आज भी उसी तस्वीर को निकाल कर बैठी है।

उसके मन में न जाने कितनी घटनाएँ, कितनी स्मृतियाँ जाग उठीं। वह पागल होकर, उन्मत्त होकर तस्वीर को देखती रही। उसकी आँखों से आँसुओं का अजस्र प्रवाह प्रवाहित हो रहा था। उसकी तकिया भीग गई थी। गालों पर बह-बह कर आँसू सूख गए थे। उसने सोचा कि क्यों उसने इतनी रुखाई से ललित को चले जाने के लिए कहा। उसके मन में क्या भाव उठे होंगे? वह क्या सोचता होगा? हाय! उसे क्या हो गया था?

मालती कुछ सोच नहीं सकी, कुछ समझ भी नहीं सकी। वह चुपचाप केवल आँसू बहाती रही। उसकी मौन वाणी की मूक भाषा आँसुओं की उसी धारा में प्रवाहित होकर धरित्री पर बिखर गई, मुखर हो उठी।

इन्हीं भावनाओं में लीन मालती न जाने कब सो गई। सारे कमरे में अँधेरे का साम्राज्य फैला हुआ था। कौन कह सकता है, मालती का हृदय भी उसी प्रकार के अन्धकार से नहीं भरा हुआ था?

ग

मालती के घर से लौट कर भी ललित अपने घर न जा सका। घर की ओर उसके पैर उठते ही न थे। अन्यमनस्क भाव से चलते-चलते जब वह कम्पनी बाग़ में जा पहुँचा तो अँधेरा काफ़ी हो गया था। बिजली की बत्तियाँ इधर-उधर चमचमा उठी थीं। उनकी चमकीली रोशनी हरी-हरी घास और रङ्ग-बिरङ्गे फूलों पर पड़ कर ललित की आँखों में झलमला उठीं। वह थक कर, शक्तिहीन होकर, रविशों पर पड़ी हुई एक बेन्च पर बैठ गया।

धीरे-धीरे रात अधिक हो आई। ललित चुपचाप, वहीं बैठ रहा। उसका मन सूना था। वह न कुछ सोचता था, न समझता। चुपचाप, पत्थर की मूर्ति की भाँति, अन्यमनस्क भाव से वह वहीं बैठा रहा।

इसी प्रकार कुछ समय और बीत गया। सहसा रात्रि के अन्धकार में ललित के समीप एक छायामूर्ति प्रकाशित हो उठी। ललित ने उसकी ओर लक्ष्य नहीं किया। मूर्ति ने आकर ललित के कन्धे पर हाथ रक्खा और पुकारा—ललित!

ललित काँप उठा। उसने चौंक कर पीछे की ओर मुँह फेरा। देखा—उसका बाल्य-बन्धु शैलेन्द्र उसके कन्धे पर हाथ रख कर मुस्कुरा रहा है।

शैलेन्द्र ने पुकारा—ललित!

ललित बोला—हाँ शैलेन!

शैलेन्द्र—इतनी रात को यहाँ अँधेरे में अकेला बैठ कर क्या कर रहे हो?

ललित—क्या करूँगा शैलेन? मुझे कोई काम नहीं है।

शैलेन्द्र ललित के समीप ही बेञ्च पर बैठ गया।

उसके लम्बे-लम्बे काले बालों में उँगलियाँ उलझाते हुए बोला—ललित ! तुम क्या सोच रहे हो ?

"नहीं जानता भाई, लेकिन इतनी बातें एक साथ कभी-कभी सोचने लगता हूँ कि मालूम पड़ता है, पागल हो जाऊँगा, माथा फट जायगा। अनेक बार मैं स्वयं ही नहीं समझ पाता कि मैं क्या सोच रहा हूँ। लक्ष्यहीन, उद्देश्यहीन, इधर-उधर फिरा करता हूँ। अव्यवस्थित जीवन के अस्त-व्यस्त दिन एक रस, एक भाव बीते जा रहे हैं।"

"तुम्हें कोई रोग तो नहीं हो गया ललित ? तुम्हारा चेहरा कैसा उतर रहा है !"

"सम्भव है, हो गया हो। लेकिन वह कौन रोग है, कैसा है, यह मुझे मालूम नहीं। शायद, उस रोग का कोई इलाज नहीं है।"

"क्यों ?"

"मैं इसका क्या कारण बताऊँ भाई ? हमारे समाज की सङ्कीर्णता और अनुदारता ही कदाचित इसका कारण है। हमारा समाज बात-बात में हर जगह पाप और मलिनता और दोष सूँघने के लिए व्यस्त हो उठता है। शायद उसकी यह प्रवृत्ति ही इस फैलने वाले रोग को ला-इलाज बना रही है।"

"तब क्या वह प्रेम का रोग है ?"

"हो सकता है। मैं तुमसे एक बात पूछूँ शैलेन ?"

"पूछो।"

"प्रेम करना क्या पाप है ?"

"कौन कहता है, पाप है ? प्रेम मानव जाति के लिए ईश्वर का वरदान है। प्रेम मानव जीवन का सर्वश्रेष्ठ वैभव है। प्रेम सब धर्मों से ऊँचा, सारे स्वर्गों से पवित्र और दुनिया भर के रस्म-रिवाजों से ऊपर की चीज़ है। लेकिन अनेक बार समाज प्रेम को भी पाप बतलाता है। मनुष्य जहाँ उसके नियमों का पालन नहीं करता, नहीं कर सकता, वहीं वह उसे पापी घोषित कर देता है।"

"समाज की यह कैसी स्वार्थ-परता है ! समाज का सङ्गठन तो लोक-कल्याण के लिए होता है न ? उसकी इस भावना में कितनी सङ्कीर्णता है, कितनी अनुदारता ! जो सत् है, शिव है, सुन्दर है, वह तो हमेशा ही सत् और शिव और सुन्दर रहेगा। क्या परिस्थितियों की मलिनता कभी उस पर अपनी कलुषित छाया डाल सकती है ?"

थोड़ी देर तक चुप रह कर ललित ने पूछा—समाज के इस अनुचित दबाव का क्या अभिप्राय है भाई ! तुम्हारी समझ में कुछ आता है ? क्यों वह हमें इस प्रकार बन्धन में डाल कर रखना चाहता है ?

"यह तो बहुत आसान बात है ललित"—शैलेन्द्र ने कहा—"शक्ति जिसके पास होती है, वही दूसरे को दबाना चाहता है, उसे अपने बन्धन में रखना चाहता है, उस पर शासन करने की इच्छा रखता है।"

"समाज का निर्माण तो व्यक्तियों का नियन्त्रण करने के लिए हुआ था न ? समाज के नियामकों ने अवश्य ही उच्छृङ्खलता और स्वेच्छाचारिता दूर करने के लिए इस बन्धन की आवश्यकता का अनुभव किया होगा। लेकिन आज तो हमारा समाज ही अनियन्त्रित हो रहा है, वह स्वयं ही उच्छृङ्खल और स्वेच्छाचारी हो उठा है। क्या कोई उसका विध्वंस करने के लिए, अपने ऊपर से उसका अनुचित शासन दूर करने के लिए पागल न हो उठेगा शैलेन ? तुम क्या समझते हो ?"

"ऐसा न करने का कोई कारण तो नहीं है।"

"ग़ुलामी तो हर हालत में बुरी और असहनीय है, चाहे वह अङ्गरेज़ों की हो या ख़ुदा की, अपने मन की हो या समाज की। ग़ुलामी के ख़िलाफ़ तो हमेशा ही बग़ावत करनी पड़ती है। क्या हम समाज के, सामाजिक रूढ़ियों के और उसकी बर्बर प्रथाओं के ख़िलाफ़ बाग़ी न हो उठेंगे ? हमारी समझ में तो यह बात ही नहीं आती कि कैसे हमारे स्वतन्त्रता-प्रिय पूर्वज सदियों से समाज की ग़ुलामी करते आ रहे हैं !"

शैलेन्द्र ने कुछ उत्तर न दिया। वह अवाक होकर ललित की ओर देखता रह गया। मन ही मन उसने सोचा—ललित का मन ऐसा विद्रोही क्यों हो उठा है ?

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। आधी रात साँय-साँय कर उठी। उस समय अन्धकार सघन होकर वायु-तरङ्गों पर काँप रहा था। केवड़ा के फूलों की मधुर-मनोहर गन्ध चारों ओर व्याप्त हो गई थी। बिजली की बत्तियाँ बुझ गई थीं। बीच-बीच में तरु-पत्रों के अन्तराल से मर्मर शब्दों की क्षीण-व्यथित ध्वनि उठ कर शून्य में विलीन हो जाती थी। लेकिन दोनों बन्धुओं में से किसी का

ध्यान इस ओर न था। दोनों ही घोर चिन्ता में मग्न थे, दोनों ही कुछ सोच रहे थे। सहसा शैलेन्द्र ने कहा—ललित! तुम्हारी यह पहेली मैं कुछ समझ नहीं सका। मुझे सब बातें तुम साफ़-साफ़ बताओ।

ललित ने कहा—शैलेन! इस पहेली को इतनी आसानी से समझ लेने का सामर्थ्य किसी में नहीं है, शायद मुझमें भी नहीं। लेकिन आज आधी रात के अन्धकार की सघनता में, अन्तहीन नीले अम्बर की छाया में, फूलों के सौरभ से लदी हुई वायु के मन्द-मधुर झकोरों के अन्तराल में बैठ कर मैं तुम्हें अपने जीवन के नाश-विलास की कहानी सुनाऊँगा। विधाता ने मेरे प्रारब्ध के साथ जो निष्ठुर क्रीड़ा की है, उसका दारुण इतिहास तुम्हें सुना कर आज मैं अपने मन को कुछ हलका करूँगा।

ललित कहने लगा—"शैलेन! सबसे पहले सीधी-सादी भाषा में मैं यह कह दूँ कि मैं मालती को बहुत अधिक प्यार करता था, मालती भी मुझ पर बड़ा प्रेम रखती थी। इस बात का निर्णय करना ज़रा मुश्किल था कि हम दोनों में से कौन किसको अधिक प्यार करता था। अनेक बार इसी बात पर मालती की और हमारी लड़ाई हो जाया करती थी, जिसका फ़ैसला कभी न होता था। और कुछ दिनों के बाद इस बात का निपटारा किए बिना ही हम दोनों एक हो जाया करते।

"जाति-भेद के कारण मालती के साथ मेरा ब्याह नहीं हो सकता, यह बात मैं जानता था। इसीसे मेरे मन में यह बात कभी उठी भी न थी। मेरा विश्वास है, मालती ने भी यह बात कभी न सोची होगी। लेकिन एक दिन जब हम दोनों को मालूम हुआ कि उसका ब्याह होने वाला है और वह मुझे छोड़ कर किसी अपरिचित दूर देश के लिए प्रस्थान करने वाली है, तो एक अज्ञात-आशङ्का से हम दोनों ही का हृदय काँप उठा। यद्यपि उससे ब्याह होने की बात कभी मेरे जी में न उठी थी, लेकिन यह बात भी हमारे ध्यान में न आई थी कि हमें एक-दूसरे से कभी अलग भी होना पड़ेगा। वही अनसोची बात जब सामने आई तो सब देखना, सुनना और सहना पड़ा।

"एक दिन बड़ी धूम-धाम से मालती का ब्याह हो गया। अङ्गरेज़ी और देशी बाजों के भयानक सम्मिश्रण में हृदय में एक भयानक तूफ़ान लेकर मालती हम लोगों से विदा हुई। ब्याह के समय कई दिनों तक मैं मालती के घर जा न सका था। जिस दिन वह विदा होने वाली थी, उस दिन सड़क के उस पार छिप कर मैं एक स्थान पर खड़ा था। मोटर आई और उस पर बैठ कर वह एक ओर चल दी। चलती बार उसने अपनी आकुल आँखों से चारों ओर देखा। मुझे मालूम पड़ा मानों उसकी विकल-विह्वल आँखें किसी को ढूँढ़ रही हैं। पर मुझे सामने आने का साहस न हुआ। मैं न गया। मोटर हवा से बातें करने लगी।

"इन कई दिनों में हृदय की मरुभूमि में प्रचण्ड-उत्तप्त शिरको प्रवाहित हो रहा था। अनेक बार सोचता था, मालती चली जायगी तो मैं कैसे रह सकूँगा, कैसे दिन बीत सकेंगे; पर मालती चली गई और दिन अपनी स्वाभाविक गति से ही बीतते रहे। मुझमें भी कोई विशेष परिवर्तन न हुआ। प्राणों में एक पीड़ा ज़रूर थी जो रह-रह कर टीस उठती थी, लेकिन पहले इसकी भयानकता की जो कल्पना मैंने की थी, सामने आकर वह उसका शतांश भी न रह गई। सोचा—दुख की कल्पना में जो असहनीयता है, उसके वास्तविक स्वरूप में शायद उतनी नहीं है। दुख के सपने दूर से अधिक भयानक मालूम पड़ते हैं, किन्तु समीप आने पर वे उतने ही भयङ्कर नहीं रह जाते। वस्तु के वास्तविक स्वरूप में सन्तोष है, सहनशीलता भी; किन्तु उसकी कल्पना असन्तोष और आतङ्क से भरी हुई होती है।

"मैंने सोचा कि मालती के प्रति मेरा इतना आकर्षण क्यों है? क्यों मैं उसके समीप रह कर, उससे मिल-बोल कर, उसे देख कर एक प्रकार का सुख और तृप्ति लाभ करता हूँ? क्यों उसका अभाव प्राणों को असहनीय हो उठा है? यह सब क्या रहस्य है भगवान! मैं कुछ समझ न सका। मालती से मेरा कोई स्वार्थ न था, लेकिन फिर भी उसे 'अपना' कह कर, उसके निकट रह कर, मैं एक स्वर्गीय शान्ति और सन्तोष का अनुभव करता था।

"मैं मालती से ब्याह कर भी सकता था—अब तो अपने देश में असवर्ण विवाह का प्रचलन हो ही गया है—लेकिन मैंने नहीं किया, क्योंकि समाज की दृष्टि में ऐसा करना पाप होता। उस समय तक समाज के प्रति मेरा मन इतना विद्रोही न हुआ था। मैंने सोचा—

हमारा समाज मनुष्य-जाति की ओर दृष्टिपात नहीं करता, उनमें अनेक उपजातियों की और उन उपजातियों में भी अनेक शाखा-प्रशाखाओं की सृष्टि करता है। किन्तु यह तो हमारी भाषा हो गई। एक ही मानव जाति के अनेक शाखा-प्रशाखाओं को वह बिलकुल भिन्न-भिन्न लोक की चीज़ें मान लेता है और ज़ालिमाने ढङ्ग से वह उनके लिए एक-दूसरे से मिलने और समीप-सम्बन्ध स्थापित करने का निषेध कर देता है। वह कहता है कि इस प्रकार के—असवर्ण—विवाहों से वर्णसङ्करता की सृष्टि होगी, लेकिन हमारी समझ में, बहुत चेष्टा करने पर भी, यह बात किसी तरह नहीं आई। विवाह-सम्बन्ध क्या है? जीवन के लिए एक निकटतम साथी चुन लेना ही तो विवाह का उद्देश्य है न? फिर हम अपने लिए इतने तङ्ग दायरे का निर्माण स्वयं ही क्यों कर लें? क्यों न मानव-जाति में से एक अच्छा और सुयोग्य साथी अपने लिए चुनें? जाति तो मनुष्यों की होती है, ब्राह्मण-शूद्रों की नहीं। समाज की यह सङ्कीर्णता क्या मनुष्य के लिए उपयोगी और हितकर हो सकेगी?

"इस प्रकार समाज की दृष्टि में मालती मेरा कोई न होते हुए भी मेरा सर्वस्व थी, मेरे जीवन की अमूल्य निधि थी। उसके प्रति मेरे मन में अपार ममता, स्नेह और सम्मान भरा हुआ था। वह मेरे हृदय के आकर्षण का केन्द्र थी। मेरे हृदय की सारी कोमल वृत्तियाँ शत-शत धाराओं में अजस्र प्रवाहित होकर उसके अस्तित्व में विलीन हो जाती थीं। उस समय यह न मालूम था कि मालती से मेरी यह घनिष्ठता भी समाज बर्दाश्त न कर सकेगा, उसकी नज़रों में हमारे हृदय का यह स्वाभाविक आकर्षण भी 'पाप' हो उठेगा। पीछे मालूम हुई। मैं केवल एक फीकी हँसी हँस कर रह गया। सोचने लगा—पाप और पुण्य क्या है? इसकी परिभाषा कोई कर सकता है? एक व्यक्ति के लिए जो पाप है, दूसरे के निकट वही पुण्य प्रतीत होता है। एक व्यक्ति जिसे पाप की छाया समझ कर घृणापूर्वक उससे दूर हो जाता है, दूसरा ठीक उसीमें पुण्य का प्रकाश देखता और उस प्रकाश की रङ्गीन रश्मि-रेखाओं में स्नान करके अपने जीवन-जन्म को सफल समझता है! कैसा आश्चर्य है!! पाप और पुण्य, इन दोनों में कौन सा अन्तर है? कोई बतला सकता है?

"किन्तु इन बातों के सोचने का अवकाश नहीं था। हृदय के साथ ही मस्तिष्क की गति भी बहुत तीव्र हो गई थी। उसके बाद भावों के इन्हीं उन्मादों में कुछ दिन बीते। सहसा एक दिन सुना, मालती विधवा हो गई है। सुन कर काँप उठा। उसके जीवन के साथ कैसी निष्ठुर क्रीड़ा कर रहे हो विधाता! उसे किस दिशा की ओर ले जा रहे हो? उसे क्यों इस प्रकार सहाय-सम्बल-हीन बना रहे हो? ओः!

"उसके बाद मस्तक का सुन्दर सिन्दूर धोकर, कोमल कलाइयों की चूड़ियाँ तोड़ कर, श्वेत वस्त्र धारण करके, करुणा और उपेक्षा और विवशता की मूर्ति बन कर, विधवा मालती अपने पिता के घर लौट आई। मैं उससे एक बार मिलने के लिए अस्थिर हो उठा, शायद मेरी ही तरह वह भी उद्विग्न हो रही थी। लेकिन उसके घर जाने का साहस मुझे न हुआ। एक दिन गोधूली की धूमिल बेला में छिप कर हम दोनों मिले। मिल कर ख़ूब रोए। रोने से जी का भार कुछ हलका हुआ तो मालती ने पूछा—हम लोगों को इस प्रकार छिप कर मिलने की ज़रूरत आज क्यों हुई है ललित?

"समाज के भय से। समाज यदि हम लोगों के मिलन को अनुचित न बतलाता, यदि वह इसमें हस्तक्षेप न करता तो छिप कर मिलने की हमें ज़रूरत ही क्या होती?"

"लेकिन यदि हम लोगों का मिलना अनुचित नहीं है, यदि इसमें कोई बुराई नहीं है तो किसी का भय मानने की ज़रूरत ही क्या है ललित? यह तो कमज़ोरी है?"

"मैं मानता हूँ।"

"और कमज़ोरी ही पाप है?"

"यह भी मानता हूँ।"

"तब हम लोग किसी दबाव में पड़ कर पाप क्यों करें ललित? मैं अपने को ख़ूब जानती हूँ, और तुम्हें शायद उससे भी अधिक। मैं जानती हूँ कि मेरा-तुम्हारा क्या सम्बन्ध है। लेकिन दुनिया ठीक वही बात नहीं जानती, शायद जानना चाहती भी नहीं। इसीलिए कि बात-बात में 'पाप' का स्पर्श पाने, उसकी छाया देखने का उसे अभ्यास हो गया है। समझे!"

"मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। चुपचाप उसकी तर्कपूर्ण उक्तियाँ सुनता रहा।

"वह कहने लगी—इसीलिए कहती हूँ ललित, किसी के कहने-सुनने की, मान-अपमान की परवा न करके तुम अपना काम करते चलो। यदि तुम्हारी आत्मा तुम्हारे साथ है तो सारे संसार की उपेक्षा करके भी तुम अपने कर्त्तव्य के मार्ग पर अग्रसर हो सकते हो। यही उचित है, यही न्याय है। दुनिया में किसी के कहने-सुनने, मान-अपमान से भयभीत होकर कोई काम नहीं किया जा सकता। दुनिया बुरा कहेगी, इस डर से यदि कोई काम न किया जाय, तो यह पाप होगा। भय ही पाप है, दुर्बलता ही पाप है। कम से कम अपने अन्दर से हमें यह पाप दूर करना होगा। कहो ललित, तुम ऐसा कर सकोगे?

ललित ने अपने स्वाभाविक स्वर में कहा—करूँगा मालती, तुम्हारे लिए सब कुछ करूँगा?

"मेरे लिए?"—मालती उछल पड़ी—"मेरे लिए करोगे ललित? इसका क्या अभिप्राय है? क्या मुझसे मिलने में तुम भी बुराई समझते हो भाई? तब तुम्हें मेरी शपथ है ललित, भविष्य में मुझसे मिलने की कभी चेष्टा न करना। मैं अपने लिए तुमसे पाप नहीं कराना चाहती। लो, मैं चली।"

"मालती सचमुच ही उठ कर जाने के लिए तैयार हो गई। मैं घबड़ा उठा। मैंने कहा—तुम मेरा अभिप्राय नहीं समझीं मालती! ठहरो।

"मालती रुक गई। हम दोनों ही मौन रहे। मालती अन्त में कहने लगी—मेरे ही लिए नहीं, सबके लिए तुम्हें ऐसा ही करना होगा। यही धर्म है, यही कर्त्तव्य है, यही पुण्य है।

"इसके बाद मालती उस दिन विदा हुई।

"फिर तो हम लोग बराबर मिलते रहे। यद्यपि हम लोगों का मिलना मालती के घर वालों को अच्छा न लगता था और इङ्गित से अनेक बार इस बात को वे प्रकाशित भी कर चुके थे, पर अभी तक स्पष्ट रूप से कुछ कहने का किसी को साहस न हुआ था।

"एक दिन मालती ने पूछा—ललित सुख कहाँ है? तुम कुछ बता सकते हो? तुमने उसे कहीं देखा है?

"ना। शायद देख भी न सकूँगा।"

"क्यों?"

"क्योंकि उसके अस्तित्व पर मेरी कुछ विशेष आस्था नहीं है।"

"मैंने उसे ढूँढ़ने की एक बार चेष्टा की थी। उसे तो नहीं पा सकी, मगर उसका पता मिल गया। जगत के अविश्रान्त कोलाहल में भी जो एक मौन छिपा है, व्यथा के अनन्त हाहाकार में भी सन्तोष और सहनशीलता की जो एक क्षीण-मलिन किरण निहित है, उसीमें मुझे सुख का आभास मिलता है। यदि कोई इतना सहनशील, इतना सन्तोषी हो सके तो कदाचित उसे सुख मिलेगा। वह सुखी हो सकेगा।"

"इसी तरह दिन बीतने लगे, एक तरह प्रसन्नता से ही। लेकिन हमारा इतना सुख, इतनी प्रसन्नता भी दुनिया से न देखी गई। लोगों में तरह-तरह की चर्चा होने लगी। पहले तो हम लोगों ने उस पर ध्यान न दिया, लेकिन अब बात बढ़ती दीख पड़ने लगी तो मुझे चिन्ता हुई। मैंने मालती से कहा। उसने उत्तर दिया—मुझे अब और कुछ नहीं कहना है, मैं सब कह चुकी हूँ। मुझसे मिल कर क्या तुम पाप कर रहे हो ललित? क्या तुम पापी हो? हृदय पर हाथ रख कर कहो।

"मैं मौन रहा। हृदय पर हाथ रख कर मैंने देखा—वह तीव्र गति से धड़क रहा था; लेकिन उसकी भाषा समझने वाला वहाँ कोई न था।

"उसके बाद एक दिन मालती के पिता ने मुझे बुला कर स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मालती विधवा है और उससे तुम्हारा मिलना-जुलना अच्छा नहीं है। तुम अब उससे न मिला करो।

"इच्छा तो हुई कि उनसे पूछ लूँ कि मालती से मेरा मिलना क्यों बुरा है, लेकिन नहीं पूछ सका। सदा के लिए वह अधिकार खोकर सूने मन से घर लौट आया। लेकिन घर में जी न लगा। मालती को एक पत्र लिख कर केवल एक बार मिलने की प्रार्थना की।

"मालती का जो उत्तर मिला वह आश्चर्यपूर्ण था। उसने लिखा—'मैं सब कर सकती हूँ ललित, पाप नहीं कर सकती। मैं तुमसे मिलना पाप नहीं समझती, लेकिन उसमें जो भय है, छिपने की जो भावना है, वही पाप है। तुमसे मिलना ही होगा अगर, तो दुनिया के कहने-सुनने पर लात मार कर खुले तौर से मिलूँगी, नहीं तो

यही ठीक है। लेकिन अभी वैसा समय नहीं आया है। तुम मुझसे मिलने की आशा छोड़ दो।'

"उसका उत्तर पाकर मैं चुप हो बैठा। कुछ ही दिनों के बाद उसके पिता सपरिवार काश्मीर चले गए।

"कई दिन हुए, महीनों के बाद काश्मीर से लौट कर वे लोग आए हैं। आज मैं मालती के पास गया था।" इसके बाद ललित ने मालती के पास जाने पर जो-जो बातें हुई थीं, एक-एक करके शैलेन्द्र को बतलाईं। कहा—"तब से मेरा चित्त न जाने कैसा हो रहा है। सोचता हूँ, मालती के मन में क्या है?"

शैलेन्द्र बोला—मालती के मन में भी वही है, जो तुम्हारे है। तुम क्या उसके जी की बात समझ नहीं सकते भाई? ओः!

उस समय पूर्व आकाश में सूर्य की अरुण-राग-रञ्जित किरणें उषा का मनोहर जाल बुन रही थीं। अवाक होकर दोनों मित्रों ने उसकी ओर देखा।

घ

रात जब कुछ अधिक चढ़ आई और मालती के कमरे का दरवाज़ा न खुला तो घर वालों को चिन्ता हुई। मालती की माँ ने जाकर ज़ञ्जीर खटखटाई। मालती उस समय कोई भयानक सपना देख रही थी। रोते-रोते उसके गालों पर आँसू सूख गए थे। चेहरा फीका पड़ गया था। शरीर काँप रहा था। चौंक कर वह जाग उठी। उठ कर दरवाज़ा खोला। माँ ने जब उसकी हालत देखी तो घबराई। उसने पूछा—"मालती, तुझे यह क्या हो गया है?" वह थोड़ा और आगे बढ़ी तो मालती के बिछौने पर पड़ा हुआ ललित का चित्र उसे दीख पड़ा। एक सन्देहभरी कल्पना उसके माथे में क्षण भर में ही घूम गई और वह तन कर बोली—"यह तेरे कैसे कुलच्छन हैं मालती! इसीलिए तुझे पाल-पोस कर इतना बड़ा किया है? जानती अगर कि तेरे ये लच्छन होंगे और विधवा होकर तू कुल में दाग़ लगावेगी तो जन्मते ही तुझे—"कह कर मालती की माँ तो सिर पकड़ कर वहीं बैठ गईं और गला फाड़ कर रो उठीं। मालती को क्रोध आ गया। उसने कहा—"माँ, हमने क्या तुम्हारे कुल में दाग़ लगा दिया है?"

"मालती की बात सुन कर उसकी माँ के रोने की आवाज़ और भी तेज़ हो गई। उसके पिता ने जब यह शोर-गुल सुना तो बेटी के कमरे की ओर दौड़ आए। आकर जो कुछ देखा उससे हतबुद्धि हो गए। मालती की माँ ने रो-रोकर उन्हें मालती के लच्छन सुनाए।

"मालती के पिता को अपने कुल और अपनी धार्मिकता तथा चरित्र का कुछ अधिक अभिमान था। सुनते ही वे आग-बबूला हो गए। कड़क कर बोले—मालती! यह क्या सुन रहा हूँ?

"सब सच ही तो सुन रहे हैं पिता जी!"—मालती ने व्यङ्ग भरे गम्भीर स्वर में कहा।

मालती का उत्तर सुन कर उसके पिता की आँखें फट पड़ीं—इस छोकरी का इतना साहस? वे बाँस की एक छड़ी लेकर मालती पर टूट पड़े—दूर हो कलङ्किनी, तेरे लिए इस घर में जगह नहीं है।

मालती भूखी बाघिन की तरह उछल कर दूर खड़ी हो गई। गरज कर बोली—ख़बरदार पिता जी! फिर हाथ न छोड़िएगा। आप अपने घर से मुझे निकाल सकते हैं, मुझ पर हाथ नहीं छोड़ सकते।

लड़की को बलपूर्वक घर से बाहर निकालते हुए मालती के पिता ने दरवाज़ा बन्द कर लिया। मालती क्रोध और अभिमान और सत्य के तेज से गरगराती हुई बाहर निकल गई।

मालती के पिता को इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ। वे दौड़े-दौड़े ललित के घर गए। उसे बहुत बुरा-भला कहा, बहुत गालियाँ दीं और यह कहना भी न भूले कि मालती को मार कर उन्होंने घर से बाहर निकाल दिया है।

ङ

ललित का मुहल्ले में रहना मुश्किल हो गया। सभी उस पर उँगली उठाते, सभी आवाज़ें कसते, सभी ताने मारते। मुहल्ले भर में वह एक मशहूर अवारा, घृणित, पापी और दुश्चरित्र मशहूर हो गया। उसे सिर उठा कर बाज़ार में निकलने का साहस न होने लगा।

ललित को अनेक बार यह बात याद आई कि उसकी यह साहसहीनता, यह भय, यह कमज़ोरी ही उसका पाप है। लेकिन वह क्या करे? सिद्धान्तों से कार्यों में कुछ तो फ़र्क़ होता ही है और फिर वह दुर्बलताओं का

पुतला, पतनशील, समाज के आतङ्क से भयभीत, एक मनुष्य ही तो था! वह जानता था कि वह पापी नहीं है, शरीर से तो है ही नहीं, मन से भी नहीं है। लेकिन उसकी दुर्बलता ही समाज के सामने उसे पापी बना रही थी।

अन्त में जब इतना अपमान और तिरस्कार वह सह न सका, तो एक दिन चुपचाप उठ कर घर से बाहर निकल गया।

च

मालती थी और ललित था। उन दोनों के अतिरिक्त उन्हीं के हृदय के समान काँपने वाली एक सरिता थी और चाँदनी से भीगी हुई आधी रात। मालती ने कहा—उस दिन तो मेरे कमरे से तस्वीर चुरा ले गए थे ललित, और अब कहीं हृदय चुरा ले जाओ तब?

"नहीं चुराऊँगा।"

"क्यों?"

"इसलिए कि वैसा मैं कर नहीं सकता। वैसा करने के योग्य अभी भी नहीं हो सका हूँ। कभी हो सकूँगा, इसका भी कुछ निश्चय नहीं है।"

"हाँ, यह ठीक है। मैं मानती हूँ। यदि घर छोड़ कर तुम चुपके से न भाग आए होते, अगर दुनिया से कह कर आए होते कि मैं मालती के पास जाता हूँ तो शायद मैं अधिक प्रसन्न होती। शायद मैं तुम्हें अपने बहुत समीप देख पाती। लेकिन कोई चिन्ता नहीं। अभी थोड़ी और तपस्या की आवश्यकता है। वह जब पूरी हो जायगी......तब। देखा जायगा। तुम अब क्या करोगे ललित?"

"मैं तो थोड़ी सी और अवारागर्दी ही करना चाहता हूँ।"

"ठीक है, यही करो। ईमानदारी से, बहादुरी से जो कुछ भी करोगे, वही तुम्हारा धर्म है, वही जीवन का प्रकृत पथ है। और वह प्रत्येक कार्य, जिसमें चारित्रिक दृढ़ता नहीं है, पाप है, कलुष है, अधर्म है।"

"और तुम क्या करोगी मालती?"

"मैं? मैं भी कुछ वैसा ही करूँगी। रोगियों की सेवा करने की मेरी इच्छा हो रही है। चलो, हम दोनों ही अपने पवित्र कर्त्तव्य में लीन हो जायँ। किन्तु याद रखना, तपस्या जब तक पूरी न होगी, हम दोनों आपस में मिल न सकेंगे। बोलो, स्वीकार है?"

"है।"

"तब चलो, उठो।"

"चलो।"

दोनों ही श्वेत बालुका-राशि के विस्तीर्ण मार्ग पर कुछ दूर चल कर अलग हो गए। आकाश में उस समय चन्द्रमा एक रहस्यपूर्ण हँसी हँस पड़ा।

छ

दो वर्ष बाद।

महामारी का प्रकोप था। सारा शहर वीरान हो रहा था। गर्मी भी वैसी ही भयानक पड़ रही थी। अभागे मनुष्य रोग की यन्त्रणा और गर्मी की असह-नीयता से व्याकुल होकर, छटपटा कर प्राण दे रहे थे। कोई किसी की बात पूछने वाला न था। शहर भर में त्राहि-त्राहि मची हुई थी। किन्तु ऐसे समय भी एक तरुणी सेविका बिजली की भाँति सारे शहर के बीमारों की देख-रेख कर रही थी। वह कभी इस घर में दीख पड़ती, कभी उस। कभी वह किसी रोगी को पानी पिलाती, कभी किसी को दवा खिलाती और कभी किसी के गन्दे कपड़े और बिछौने साफ़ किया करती थी। उसे एक क्षण का अवकाश न था। मशीन की तरह वह अपने शरीर की ममता छोड़ कर रोगियों की परिचर्या कर रही थी।

जिन लोगों पर रोग का आक्रमण नहीं हुआ था, जिनके शरीर में कुछ शक्ति थी, वे शहर छोड़ कर बाहर चले गए थे—फूस की झोपड़ियाँ लगा कर दिन काट रहे थे। किन्तु कुछ समय बाद वहाँ भी रोग का आक्र-मण हुआ। रक्षा का और कोई उपाय न देख कर लोग सब कुछ भोगने-सहने के लिए तैयार हो बैठे।

इसी तरह की एक झोपड़ी में एक दिन आग लग गई। धू-धू करके आग की लपटें आसमान को छूने लगीं। स्त्रियों, बच्चों और रोगियों के आर्तनाद से दिशाएँ गूँज उठीं। देखते ही देखते कितनी झोपड़ियाँ जल कर राख हो गईं। रोग की यन्त्रणा से छटपटाते हुए कितने ही अशक्त और दुर्बल रोगियों ने भी न जाने किस शक्ति से प्रभावित होकर और भाग कर इस आकस्मिक विपत्ति से

अपनी रक्षा की। कौन कह सकता है कि अनेक अभागों को काल की उस लपलपाती हुई प्रलयङ्करी जिह्वा ने अपनी तृष्णा की भेंट न कर दिया होगा?

एक अधेड़ था और उसकी स्त्री। घर में एक बच्चा भी था। आसमान में उठती हुई आग की लपटें देख कर दोनों पति-पत्नी बाहर निकल आए थे। बच्चा भीतर खटिया पर पड़ा सो रहा था।

सहसा हवा का एक प्रचण्ड झोंका आया। आग की एक लपलपाती हुई लपट ने अधेड़ के घर के छप्पर को चूम लिया। देखते ही देखते भक-भक करके सारा छप्पर लहक उठा। दोनों पागल से होकर ताकते रहे, चिल्लाते रहे, रो-रोकर सहायता के लिए पुकारते रहे। लेकिन उस विपत्ति में उनकी दुर्बल आवाज़ सुनने वाला कौन था?

आग की गर्मी से झुलसता हुआ बचा अन्दर तड़प रहा था, चीत्कार कर रहा था। किन्तु अन्दर जाकर उसे उठा लाने का साहस कोई न कर सका।

तीर की तरह भागता हुआ एक युवक आया। बिना किसी ओर देखे वह आग में घुस गया, बच्चे को छाती से चिपटा कर बाहर निकला। उसी समय जला हुआ छप्पर उसकी पीठ पर आ रहा।

बच्चे की रक्षा हो गई, युवक आहत हुआ, आग जल कर बुझ गई।

दूसरे दिन। युवक बेहोश पड़ा था। उसके शरीर पर छाले पड़ गए थे। अधेड़ वहीं बैठ कर उसकी शुश्रूषा कर रहा था।

और घरों से होती हुई तरुणी परिचारिका यहाँ भी आई। उसने सब देखा। उसकी आँखों में आँसू थे और उनमें घृणा तथा तिरस्कार के भाव। अधेड़ की ओर उसने देखा। बोली—इसे पहिचानते हो?

"नहीं। यह कौन है बेटी?"

"यह वही अवारा ललित है, जिसे तुम लोगों ने शहर में रहने तक न दिया था। और मैं हूँ, कलङ्किनी मालती जिसे मार कर तुमने घर से निकाल दिया था। याद है?"

मालती के पिता को यह सारी बातें स्वप्न सी जान पड़ीं। वह अवाक् होकर, विस्मित होकर, मालती की ओर ताकने लगे। मालती क्षण भर का विलम्ब किए बिना वहाँ से बाहर हो गई।

ज

इस यात्रा में ललित की रक्षा नहीं हो सकी। लगातार कई दिनों तक असह्य-यातना भोगने के बाद, वह संसार के दुःख-कष्टों से सदा के लिए मुक्त हो गया।

अँधेरी रात थी। क्षीण धारा वाली नदी के तट पर ललित की चिता जल कर बुझ चुकी थी। एक आध अङ्गारे जब-तब जली हुई हड्डियों के बीच में चमक उठते थे। मालती उस समय भी वहीं थी।

मालती सोचने लगी—सपने की तरह वह आया था और यौवन की तरह चला गया। दुनिया जिन कारणों से उससे घृणा करती थी, ठीक उन्हीं कारणों से वह मेरा प्यारा था। उसके जिन कार्यों का समाज तिरस्कार करता था, जिन्हें वह अनुचित और पाप समझता था, वही उसके उत्थान और विजय के चिन्ह थे। हाय! दुनिया मनुष्य को पहिचानने में इतनी ग़लती क्यों करती है?

ललित की करुण स्मृति से मालती का हृदय भर उठा। ज़मीन पर सिर टेक कर उसने एक बार ललित को प्रणाम किया, फिर चिता-भस्म लेकर सिर पर लगा लिया।

उस समय, अर्ध-रात्रि के सघन अन्धकार में उस पार के झाऊ के वृक्ष झुक-झुक कर झूम रहे थे। उदास दक्खिनी वायु का एक झोंका उनके ऊपर से सरसराता हुआ निकल गया।

पण्डितराज जगन्नाथ और उनका काव्य

[श्री० रामकुमार जी शास्त्री]

प्राचीन समय के साहित्यिक अपने सम्बन्ध में इतने लापरवाह और निश्चिन्त रहे हैं कि अनेक बार उनके कार्यकाल का निर्णय करना हमारे लिए आसान नहीं रह जाता। अनेक कवियों और लेखकों ने तो अपने ग्रन्थों में अपने माता-पिता, स्थान और जन्म-काल का भी उल्लेख नहीं किया। ऐसी स्थिति में केवल कल्पना अथवा जनश्रुति के द्वारा उनके सम्बन्ध में निश्चय रूप से कुछ कहना कठिन हो जाता है। कवि-कुल-गुरु कालिदास ने तो अपने ग्रन्थों में अपना नाम तक नहीं दिया। यदि उन्होंने नाटक न लिखे होते तो शायद उनके नाम का भी आज पता न चलता।

सबसे पहले 'श्रीकण्ठ-चरित', 'हर्ष-चरित' और 'विक्रमाङ्कदेव चरित' नामक ग्रन्थों में क्रम से उनके लेखकों—मङ्खक, बाण और विल्हण आदि—ने अपना संक्षिप्त इतिहास लिखा है। इस प्रकार, ग्रन्थों में अपने सम्बन्ध में लिखने की शैली का प्रचलन करने में ये ही तीन कवि अग्रगण्य माने जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त श्रीहर्ष तथा भवभूति आदि कवियों ने भी अपने सम्बन्ध में अपने ग्रन्थों में थोड़ा-बहुत उल्लेख किया है, लेकिन उससे जो कुछ भी जाना जा सकता है वह बिलकुल अधूरा और अपर्याप्त है। उस अपूर्ण ज्ञान के बल पर निश्चित रूप से कोई ख़ास बात नहीं कही जा सकती।

'भोज प्रबन्ध' नाम के संस्कृत ग्रन्थ में यद्यपि इस विषय पर बहुत कुछ लिखा गया है, किन्तु उसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विश्वसनीय रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' संस्कृत साहित्य की अद्वितीय वस्तु है, उसके जोड़ की दूसरी कोई गद्य-पुस्तक उस साहित्य में नहीं है। किन्तु यदि तत्कालीन चीन देशीय 'हुएनसाँग' नामक यात्री हमारे देश में न आता और श्रीहर्ष के सम्बन्ध में बहुत सी बातें वह न लिख गया होता, तो सम्भवतः हम आज बाणभट्ट के नाम से भी परिचित न होते। कादम्बरी का विद्वान और अद्वितीय लेखक आज हमारे लिए अन्धकार में होता। हमारे चरित-नायक पण्डितराज जगन्नाथ के सम्बन्ध में भी ऐसी ही बात है। न तो उन्होंने स्वयं ही अपने सम्बन्ध में कुछ लिखा है और न तत्कालीन किसी अन्य लेखक ने ही उनके जीवन पर कुछ प्रकाश डालने की चेष्टा की है। ऐसी अवस्था में उनके सम्बन्ध की जनश्रुति और उनके ग्रन्थों के आधार पर जो कुछ जाना जा सका है, उसे ही मैं पाठकों के सम्मुख उपस्थित करूँगा।

पण्डितराज जगन्नाथ का जन्मस्थान कहाँ था, इसका निर्णय करना आसान नहीं है, किन्तु अनुमानतः कहा जा सकता है कि उनकी जन्मभूमि तैलङ्ग रही होगी। इसके प्रमाण में 'रसगङ्गाधर' का यह श्लोक उपस्थित किया जा सकता है:—

पाषाणादपि पीयूषं स्यन्दते यस्य लीलया।
तं वन्दे पेलुभट्टाख्यं लक्ष्मीकान्तं महागुरुम्॥

इनके बनाए हुए 'प्राणाभरण' नामक ग्रन्थ में भी इसी प्रकार का एक श्लोक मिलता है:—

तैलङ्गान्वय मङ्गलालय महालक्ष्मी ललाटन्तयः
श्रीमत्पेरमभट्टसूनुरनिशं विद्वल्ललाटन्त यः।
सन्तुष्टः कमताधिपस्य कवितामाकर्ण्य तद्वर्णनं
श्रीमत्पण्डितराज पण्डितजगन्नाथो व्यधासीदिदम्॥

इन श्लोकों से यह मालूम होता है कि ये तैलङ्ग थे। इनके पिता का नाम पेलुभट्ट अथवा पेरमभट्ट और माता का नाम लक्ष्मी था। इन्होंने अपने पिता से ही दीक्षा ली थी और ये अत्यन्त विद्वान थे। इन्होंने काशी में रह कर अनेक उद्भट विद्वानों से शास्त्रानुशीलन किया था।

कहा जाता है कि जब ये पूर्णरूप से शिक्षा प्राप्त कर चुके तो तञ्जोर नामक स्थान में जीविका ग्रहण कर निवास करने लगे। किन्तु वहाँ उनका आदर नहीं

हुआ। इससे उस स्थान को छोड़ कर उत्तर प्रान्त के भिन्न-भिन्न भागों में परिभ्रमण करते हुए ये दिल्ली आए। दिल्ली में एक मुसलमान विद्वान से इनकी मुलाक़ात हुई और धार्मिक विषयों पर उससे इनका विवाद भी हुआ। इनका वाक्‌चातुर्य देख कर वह अवाक रह गया और अन्त में उसे इनका लोहा मान लेना पड़ा। इस प्रकार धीरे-धीरे दिल्ली में इनकी ख्याति बढ़ती गई और वह बादशाह के कानों तक पहुँची। बादशाह ने इन्हें बुला कर अपने पास रक्खा और इन्हें अपने दरबार में महान पद प्रदान किया।

पण्डितराज बड़े विलासी और रसिक पुरुष थे। उनके सम्बन्ध में प्रचलित अनेक किम्बदन्तियों तथा उनकी कविता के द्वारा इस बात का पर्याप्त परिचय मिलता है। ये फ़ारसी भी जानते थे और कहा जाता है कि इन्होंने फ़ारसी मिश्रित कई ग्रन्थ भी लिखे हैं।

बादशाह की राजपूत रानी से जन्मी हुई एक अत्यन्त रूपवती और तरुणी लवङ्गी नाम की कन्या थी। पण्डितराज ने किसी प्रकार उसे देख लिया और उस पर आसक्त हो गए। खिलने वाली नलिनी के समान मनोहर और आकर्षक वह तरुणी भी पण्डितराज को देख कर स्थिर न रह सकी। उनकी विद्वत्ता और कवित्व-शक्ति का परिचय वह पहले ही पा चुकी थी। उसने भी अज्ञात में ही अपना सर्वस्व इन पर न्यौछावर कर दिया।

एक बार ये बादशाह के साथ शतरञ्ज खेल रहे थे। खेलते-खेलते बादशाह को प्यास लगी। उन्होंने पानी माँगा तो लवङ्गी अपने सिर पर एक छोटी कलसी लेकर उस कक्ष में आई। उसे देख कर पण्डितराज मोहमुग्ध हो गए और एकटक उसकी ओर ताकने लगे। बादशाह उस समय मदिरा की तरल तरङ्गों में डूब-उतरा रहे थे। पण्डितराज को इस प्रकार एकटक लवङ्गी की ओर देखते हुए देख कर उन्होंने उसीके सम्बन्ध में कुछ सुनाने की फ़रमाइश की। कवि ने तत्क्षण ही यह श्लोक सुनाया:—

इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तकुम्भा
कुसुम्भारुणं चारु चैलं वसाना।
समस्तस्य लोकस्य चेतः प्रवृत्तिम्
गृहीत्वा घटे न्यस्य यातीव भाति॥

अर्थात्—यह सुन्दर स्तनों वाली, जिसने मस्तक पर घड़ा धारण कर रक्खा है, जिसका मुँह कुसुम के फूल के समान लाल है और जो सुन्दर वस्त्र पहने हुई है, समस्त लोकों की चित्तवृत्ति को चुरा कर घड़े में ले जाती हुई सी शोभित होती है।

यह स्वाभाविक, सुन्दर और आश्चर्यजनक वर्णन सुन कर बादशाह फड़क उठे। उन्होंने पण्डितराज से इच्छित वस्तु माँगने को कहा। पण्डितराज अविलम्ब बोल उठे:—

न याचे गजालिं न वा वाजिराजम्
न वित्तेषु चित्तं मदीयं कदाचित्।
इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तकुम्भा
लवङ्गी कुरङ्गी दृगङ्गी करोतु॥

अर्थात्—मैं हाथियों का झुण्ड नहीं चाहता और न मुझे श्रेष्ठ घोड़े ही चाहिए। धन में भी मेरी बिलकुल प्रवृत्ति नहीं है। किन्तु यह सुन्दर स्तनों वाली, सिर पर घड़ा धारण करने वाली, मृगा सी आँखों वाली लवङ्गी मुझे अङ्गीकार करे।

इसके बाद उन्होंने बादशाह को एक और भी श्लोक सुनाया, जिससे उनकी रसिकता और विलासिता का ख़ासा परिचय मिलता है। उन्होंने कहा:—

यवनी नवनीतकोमलाङ्गी
शयनीये यदि लभ्यते कदाचित्।
अवनीतलमेव साधु मन्ये
नवनी माधवनी विलासहेतुः॥

अर्थात्—नवनीत के समान कोमलाङ्गी यवनी यदि मुझे पलँग पर मिले तो मैं इस भूतल को ही परम सुख-कर समझूँ। इस सुख के सामने इन्द्र के नन्दनवन में विलास करना भी मुझे तुच्छ मालूम पड़े।

पण्डितराज की इस अद्भुत याचना को सुन कर बादशाह अवाक रह गए। उन्होंने कभी इस बात की कल्पना भी न की थी कि यह पागल हिन्दू कवि ऐसी अद्भुत याचना कर बैठेगा। लेकिन जब वचन दे चुके थे तो पण्डितराज की याञ्चा स्वीकार करनी ही पड़ी। पण्डितराज ने धर्म परिवर्तन करके लवङ्गी का पाणिग्रहण किया।

काशी के पण्डितों को जब यह बात मालूम हुई तो उनमें बड़ी हलचल मची। उन लोगों ने पण्डितराज को

जातिच्युत कर दिया। लेकिन अभिमानी और लापरवाह कवि को इसकी चिन्ता ही क्या थी? वे जानते थे कि प्रेम का दायरा उतना तङ्ग और सङ्कीर्ण नहीं है, जितना समाज ने उसे बना दिया है। एक रसिक और प्रेमी कवि के लिए उसके अन्दर से होकर गुज़रना आसान नहीं है।

इन कविश्रेष्ठ के काल-निर्णय में मतभेद चला आता है। अभी तक कुछ निर्णय नहीं हो सका। कुछ लोगों का मत है कि ये अकबर के समय में थे, लेकिन दूसरे शाहजहाँ के शासनकाल में इनका होना बतलाते हैं। जहाँ ऐसे बहुत से प्रमाण मिलते हैं, जिनके कारण शाहजहाँ के समय में ही इनका होना अधिक युक्तिसङ्गत मालूम पड़ता है, वहाँ अकबर के समय में होने के पक्ष में कोई प्रबल प्रमाण नहीं दीख पड़ता। अतः यह मान लेना चाहिए कि ये शाहजहाँ के शासन-काल में हुए थे।

बम्बई से प्रकाशित होने वाली 'काव्यमाला' नामक पुस्तक में इनके निम्न-लिखित ग्रन्थों की चर्चा की गई है:—

(१) रस गङ्गाधर (२) यमुनावर्णन चम्पू (३) रतिमन्मथ नाटक (४) वसुमती परिणय नाटक (५) जगदाभरण काव्य (६) प्राणाभरण काव्य (७) पीयूष लहरी (८) अमृत लहरी (९) सुधा लहरी (१०) करुणा लहरी (११) लक्ष्मी लहरी (१२) भामिनी विलास (१३) मनोरमा कुच मर्दन (१४) अश्वघाटी काव्य।

पं० लक्ष्मणचन्द्र राव वैद्य ने इनके द्वारा निर्मित 'आसफ़ विलास' नामक एक और पुस्तक का ज़िक्र किया है, किन्तु काव्यमाला में उसका कहीं उल्लेख नहीं है। सम्भव है, उन्हें वह पुस्तक उपलब्ध न हुई हो।

'जगदाभरण' में शाहजहाँ के बेटे दाराशिकोह का वर्णन है और 'प्राणाभरण' में कामरूप के राजा प्राण-नारायण की यश-प्रशंसा। पियूष, अमृत, सुधा, करुणा और लक्ष्मी लहरी में क्रमशः गङ्गा, यमुना, सूर्य, विष्णु और लक्ष्मी की स्तुति है। 'अश्वघाटी' में पण्डितराज ने अपने पौत्र राम को सदुपदेश दिया है। 'यमुनावर्णन' 'चम्पू', 'रतिमन्मथ' नाटक, 'वसुमती परिणय' नाटक और 'मनोरमा कुच मर्दन' आदि ग्रन्थों के सम्बन्ध में अपना व्यक्तिगत ज्ञान न होने के कारण हम कुछ कह नहीं सकते।

इनके और ग्रन्थों में 'रसगङ्गाधर' नामक साहित्य-ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रशंसनीय है। इसमें अलङ्कार आदि विषय बड़ी उत्तमता और नवीन रीति से समझाए गए हैं। इनके पहले यह चलन थी कि लक्षण-ग्रन्थों के प्रणेता लक्षण अपना और उदाहरण पुराना देते थे। लेकिन इन्हें यह बात कुछ जँची नहीं। इस ग्रन्थ में इन्होंने लक्षण और उदाहरण, सभी के लिए अपनी ही रचना का उपयोग किया है। 'रसगङ्गाधर' के प्रारम्भ में इन्होंने कहा है:—

निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं
काव्यं मयाऽत्र निहितं न परस्य किञ्चित्।
किं सेव्यते सुमनसां मनसाऽपि गन्धं
कस्तूरिका जनन शक्तिभृता मृगेण॥

अर्थात्—इस ग्रन्थ में अपने बनाए हुए नवीन उदाहरणों का ही सन्निवेश है, दूसरे की कविताओं से मैंने कुछ नहीं लिया। जिस मृग में कस्तूरी पैदा करने की शक्ति है वह क्या कभी फूलों की गन्ध सूँघने की इच्छा भी करेगा?

कितनी प्रबल दर्पोक्ति है! कितनी विकट अहम्मन्यता! किन्तु ये वाक्य पण्डितराज के ही मुँह से शोभा देते हैं।

'रसगङ्गाधर' में 'गङ्गा-लहरी' के भी कुछ पद्य आ गए हैं। इसके अतिरिक्त अपने प्रतिपक्षियों तथा विरोधियों की भी इस ग्रन्थ में इन्होंने अच्छी तरह ख़बर ली है। 'कुवलयानन्द'कार अप्पय दीक्षित उनके प्रसिद्ध प्रतिपक्षी थे। इस पुस्तक में उनके प्रति अनेक कुवाच्य कहे गए हैं और कई स्थलों पर 'कुवलयानन्द' का खण्डन भी किया गया है। 'सिद्धान्त कौमुदी' के प्रसिद्ध प्रणेता भट्टोजी दीक्षित पर भी इन्होंने बड़ा कटाक्ष किया है।

इनके 'भामिनी विलास' नामक ग्रन्थ के सम्बन्ध में हम कुछ कहना नहीं चाहते। काव्य-प्रेमी विद्वज्जन उसका रसास्वादन करके ही उसके सम्बन्ध में कुछ समझ सकते और विवेचना कर सकते हैं।

यह ग्रन्थ प्रास्ताविक, शृङ्गार, करुणा और शान्त, इन चार विलासों में विभक्त है। इस पुस्तक के प्रत्येक छन्द में जो अर्थप्रदता, गम्भीरता और मनोहरता है, वह अद्वितीय है। इस पुस्तक के प्रत्येक छन्द अलग-अलग हैं,

एक दूसरे से कोई ख़ास सम्बन्ध नहीं रखते। प्रसङ्ग के अनुसार जब तब कहे हुए पद्यों का संग्रह सा मालूम पड़ता है। कुछ लोगों का कहना है कि अपनी स्त्री के नाम पर इन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की और किसी-किसी के मत से 'रसगङ्गाधर' के उदाहरणों के लिए इस ग्रन्थ की सृष्टि हुई है।

जगन्नाथ पण्डितराज के ग्रन्थों के अनुशीलन से उनकी विद्वत्ता और कवित्व-शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। संस्कृत कवियों में इनकी तुलना कालिदास, भारवि और भवभूति से की जा सकती है। इनकी भाषा ज़ोरदार और तुली हुई होती थी। इनके भाव सजीव, तेजस्वी और गम्भीर होते थे। वास्तव में इनकी रचनाएँ संस्कृत साहित्य में अनुपम काव्य-चमत्कार का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

ऐसे महाकवि और सरल प्रेमी के जीवन का अन्तिम भाग बड़ा ही करुणापूर्ण बीता है। कहते हैं कि जीवन के अन्तिम दिनों में इन्हें कुष्ठ हो गया था, जिससे इन्हें बड़ी पीड़ा भोगनी पड़ रही थी। अन्त में गङ्गातट पर जाकर इन्होंने 'गङ्गालहरी' नामक गङ्गा जी का स्तोत्र बनाया और भगवती भागीरथी की कृपा से रोग-दोषों से मुक्त हुए।

यह भी कहा जाता है कि जब गङ्गातट पर बैठ कर ये 'गङ्गालहरी' का एक-एक श्लोक पढ़ते जाते थे, गङ्गा जी भी क्रम से एक-एक सीढ़ी ऊपर चढ़ती आती थीं। अन्त में जब उन्होंने बढ़ कर इनका शरीर स्पर्श कर लिया, तब इनका कुष्ठ दूर हो गया!

हमें इन बातों के सत्यासत्य-निर्णय का प्रयोजन नहीं है। प्रायः सभी बड़े और प्रसिद्ध व्यक्तियों के सम्बन्ध में ऐसी अलौकिक घटनाएँ कही-सुनी जाती हैं। उनमें सत्य का कितना अंश है, यह ढूँढ़ना ज़रा मुश्किल काम है, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि इनके जीवन का अन्तिम भाग दुःखों और पीड़ाओं में बीता था, परन्तु उस समय भी उनकी कविता की प्रगति पूर्ववत् ही तीव्र रही थी।

प्रतीक्षा-निरत

[श्रीनिवास गुप्त]

(१)

उस असीम के प्राङ्गण में मैं—
देख रहा हूँ तेरी बाट।
खुले-अधखुले नयन बिछे हैं,
देख रहे हैं तेरे ठाट॥

(२)

दिया दिखाई बहुत निकट ही,
पास न आया तू फिर भी।
तेरे आलिङ्गन के हित मैं
अति अशान्त हूँ, अस्थिर भी॥

(३)

जैसे-जैसे समय बीतता,
व्याकुलता बढ़ती जाती।
निष्ठुर तेरी निश्चलता वह
एक अपूर्व भाव लाती॥

(४)

इतने निकट देख कर भी मैं
तुझे प्राप्त कर सका नहीं!
इस अभाग्य में यही बहुत है,
जाना पर अन्यत्र नहीं!!

प्रयाग का कृषि-विद्यालय

[श्रीमती एम०एस० हेच]

त शताब्दी के—रेल, तार, टेलीफ़ोन, रेडियो और वायुयान के आविष्कारों की ओर देखने पर हमें बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ता है। इन अनुसन्धानों ने मानव-जाति के दैनन्दिन जीवन में कितना महान परिवर्तन उपस्थित कर दिया है ! एक प्रकार से दुनियाँ की काया पलट ही कर दी है।

इधर खेती के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसे ही आविष्कार हुए हैं, जिनसे अनाजों की क़िस्म की और पैदावार की तरक़्क़ी होने में बहुत मदद मिली है। इन अनुसन्धानों में जो सबसे बड़ी तारीफ़ की बात है, वह यह कि इनमें से बहुतों का प्रयोग देश के ग़रीब किसान भी कर सकते हैं और इनसे वे उतना ही लाभ उठा सकते हैं, जितना कोई धनी ज़मींदार।

प्रायः पचीस वर्ष पहले की बात है, डॉक्टर साम हिगिनबॉटम उन दिनों प्रयाग के ईविङ्ग क्रिश्चियन कॉलेज में अर्थशास्त्र के अध्यापक थे। उनका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने सोचा, कोई ऐसा काम करना चाहिए जिससे हिन्दुस्तान के लाखों ग़रीबों को भरपेट भोजन मिल सके और जीवन की दूसरी ज़रूरतों के अभाव में भी उन्हें दुःख न भोगना पड़े। वे जानते थे कि देश की अधिकांश जनता खेती-बारी से अपना निर्वाह करती है और भविष्य में आने वाले बहुत वर्षों तक वह यही व्यवसाय करने के लिए विवश है। उन्हें यह भी मालूम था कि आजकल किसानों की दशा
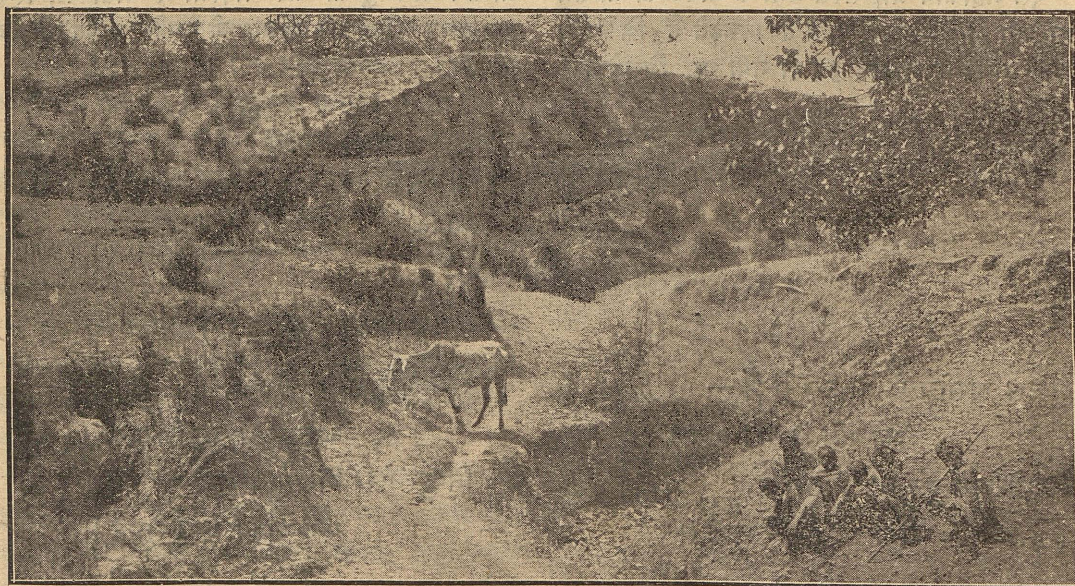
यही वह ज़मीन है, जिस पर विद्यालय ने पहले पहल कार्य आरम्भ किया था। यह गड्ढों और नालियों से इस बुरी तरह भरी हुई थी कि इस पर मनुष्य या जानवर किसी के भी काम लायक़ कोई चीज़ पैदा न होती थी।
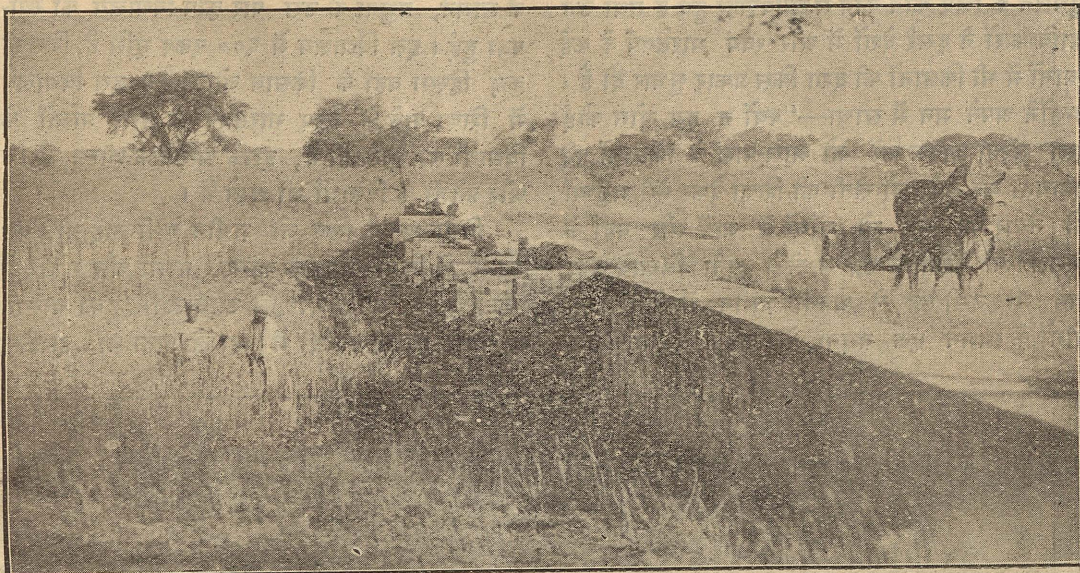
खेत को उपजाऊ बनाने वाला बाँध। विद्यालय ने ऐसे बाँध बाँध कर अपनी ऊसर और बञ्जर ज़मीन को भी अत्यन्त उपजाऊ बना लिया है।

विद्यालय के समीपवर्ती किसान अपने खेत में जौ और चने की फ़सल काट रहे हैं। इस ज़मीन में सिंचाई न होने के कारण गेहूँ नहीं पैदा होता। लेकिन ठीक इसी तरह की ज़मीन में कृषि-विद्यालय गेहूँ भी पैदा कर लेता है।

सुधारने के लिए कौन-कौन से आविष्कार हुए हैं तथा उन आविष्कारों ने दूसरे देशों में और स्वयं भारतवर्ष के कई स्थानों में भी किसानों की दशा किस प्रकार सुधार दी है। उन्होंने अपने मन में सोचा—"क्यों न हम लोग कोई ऐसी संस्था क़ायम करें जो आस-पास के किसानों की सहायता कर सके, जो खेती की शिक्षा देकर ऐसे मनुष्यों को तैयार कर सके, जो गाँवों में जायँ और वहाँ के किसानों को वैज्ञानिक ढङ्ग से खेती करना सिखावें तथा स्वयं भी उसी ढङ्ग से अपनी ज़मीन में खेती करके लोगों के सामने एक नमूना पेश करें।" उन्होंने इस विषय में अमेरिकन प्रिस्बिटेरियन मिशन के अपने साथियों से भी परामर्श किया।

हिगिनबॉटम सपना देखने वाले आदमी हैं; किन्तु साथ ही साथ वे कर्मशील भी हैं। उन्होंने विशेष रूप से कृषि सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने तथा इस प्रकार की एक संस्था के निर्माण के लिए धन एकत्रित करने की इच्छा से अमेरिका की यात्रा की। उनकी इस यात्रा तथा उनके सपनों और प्रार्थनाओं का परिणाम यह हुआ कि आज से १६ वर्ष पहले, ख़ास प्रयाग नगर के सामने, यमुना के उस पार कृषि-विद्यालय की स्थापना हुई। इस विद्यालय में ६०० एकड़ भूमि है, जिसका कुछ हिस्सा वहाँ के किसान जोतते हैं। इस विद्यालय में शिक्षा पाने के लिए भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के विद्यार्थी तो आते ही हैं, इसके अतिरिक्त फ़ारस, ईराक़ और फ़ीज़ी के विद्यार्थी भी आते हैं।

विद्यालय के लिए जो ज़मीन चुनी गई थी, वह यमुना के किनारे होने के कारण, नालों और गड्ढों से भरी हुई थी। उसके ऊपर की उपजाऊ मिट्टी को बरसात का पानी हर साल नदी में बहा ले जाता था। इसलिए वह ज़मीन खेती के काम लायक़ बिलकुल न रह गई थी। उसमें 'खस' और 'कुश' नाम की दो घासें, जिनकी जड़ मिट्टी में दूर तक धँसी होती है, बहुतायत से जमी हुई थीं। वहाँ की मिट्टी इतनी सख़्त और बञ्जर थी कि वहाँ के बाशिन्दे कहा करते थे कि किसी भी आदमी ने उसमें कभी हल चलते देखा ही नहीं। वहाँ के किसानों का ख़्याल था कि उस ज़मीन के ज़्यादा हिस्से में विद्यालय कोई फ़सल नहीं उगा सकेगा। और यही पहली बात थी, जिसमें विद्यालय को नए आविष्कारों के लाभ दिखाने

विद्यार्थी घास जमा करने के गड्ढे में घास भर रहे हैं। ये गड्ढे एक प्रकार के घास के बैङ्क हैं, जिनमें से ज़रूरत के समय घास निकाल कर काम चलाया जा सकता है।
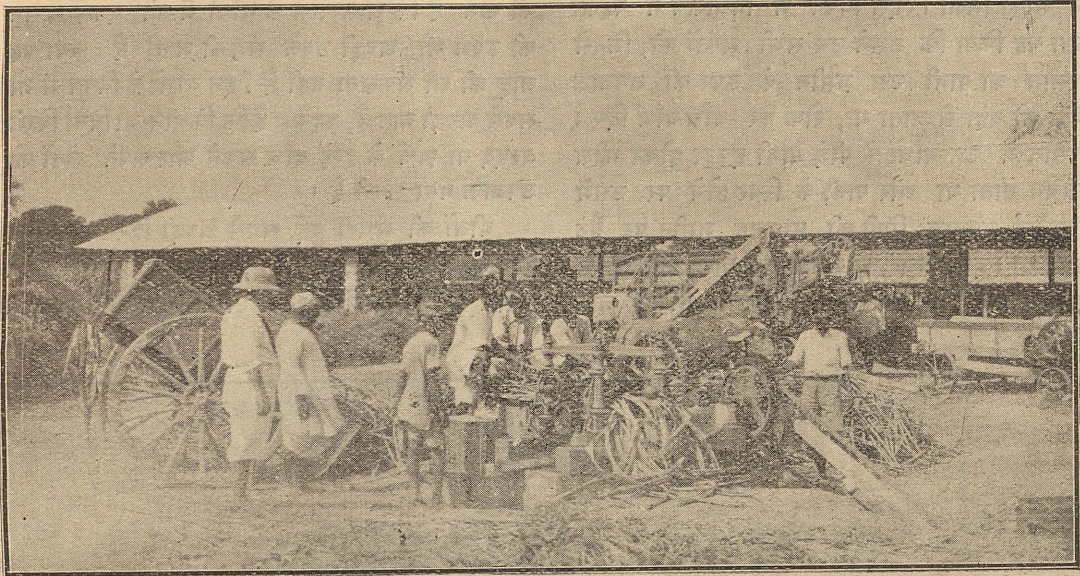
विद्यार्थी मशीन से गन्ना पेर रहे हैं।

इस ज़मीन में एक साल में चार पैदावारें होती हैं—दो घास की, उसके बाद एक आलू की, फिर एक मकई की। इसी ज़मीन में, जब तक विद्यालय ने इसे समतल करवा कर सिंचाई का प्रबन्ध नहीं किया था, मकई की तो कौन कहे, आलू और घास की भी अच्छी उपज नहीं होती थी।

का मौक़ा मिला। इस विषय में विद्यालय ने पहला काम यह किया कि उसने उन सभी रास्तों को, जिनसे बरसात का पानी उस ज़मीन के ऊपर की उपजाऊ मिट्टी को बहा ले जाता था, रोक कर बाँध बाँध दिए। बरसात में उन बाँधों के पीछे पानी इकट्ठा होकर झील सा बन जाता था और पानी के स्थिर होने पर उसमें घुली हुई उपजाऊ मिट्टी की एक तह ज़मीन पर बैठ जाती थी। इस प्रकार, आजकल वहाँ बारह फ़ीट से भी ज़्यादा गहरी मिट्टी बैठ गई है। बरसात निकल जाने

विद्यार्थी नवीन ढङ्ग के हलों से खेत जोतना सीख रहे हैं। देखिए, एक ही चास में यह हल ज़मीन को कितनी गहराई तक खोद देता है।

पर पानी बहा दिया जाता और उस ज़मीन में अच्छे क़िस्म के गेहूँ का बीज बोया जाता था। इससे कुछ सालों को छोड़ कर, प्रायः प्रति वर्ष ही अच्छी फ़सल हुई। जो ज़मीन कुछ ही समय पहले बिलकुल निकम्मी और खेती के लिए बेकार थी, इन प्रयोगों से वही ज़मीन सबसे ज़्यादा उपजाऊ हो गई है। चित्र में बाँध के पीछे जो ज़मीन दिखलाई पड़ती है, पहले वह बिलकुल ऊसर थी, लेकिन अब उसी में २२ मन से भी कुछ अधिक प्रति एकड़ के हिसाब से गेहूँ पैदा होता है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि आस-पास के गाँवों में फ़ी एकड़ ८ मन की उपज भी अच्छी उपज समझी जाती है। क्या यह जादू की सी सफलता नहीं है? इन बाँधों के विषय में जो सबसे अच्छी बात है, वह यह है कि किसान भी बिना किसी तरद्दुद या ख़र्च के इन्हें बाँध सकते और अपने खेतों को उपजाऊ बना सकते हैं।

बीजों की सुधरी हुई, सबसे अच्छी क़िस्म ही शायद कृषि-सम्बन्धी पहली चीज़ है, जिसका उपयोग पुराने ख़्याल के किसान भी करते हैं। प्रति वर्ष अड़ोस-पड़ोस के किसानों में बहुतेरे इस प्रकार के सुधरे हुए बीज बोते हैं। वे लोग अब नवीन ढङ्ग के हलों का भी उपयोग करने लगे हैं। ये हल पुराने हलों की तरह केवल मिट्टी को खुरच कर ही नहीं रह जाते, किन्तु उसे ख़ूब गहराई से उखाड़ कर अच्छी तरह उलट-पलट देते हैं, जिससे खेत की उपज कहीं ज़्यादा बढ़ जाती है।

किसानों के लिए उस प्रकार के गड्ढे तैयार कर लेना भी मुश्किल नहीं है, जैसा कृषि-विद्यालय में बना हुआ है। ये गड्ढे बहुत उपयोगी साबित हुए हैं। इनमें जान-

डेरी क्लास में विद्यार्थी मक्खन बनाना तथा मशीन की सहायता बोतलों में दूध भरना सीख रहे हैं।
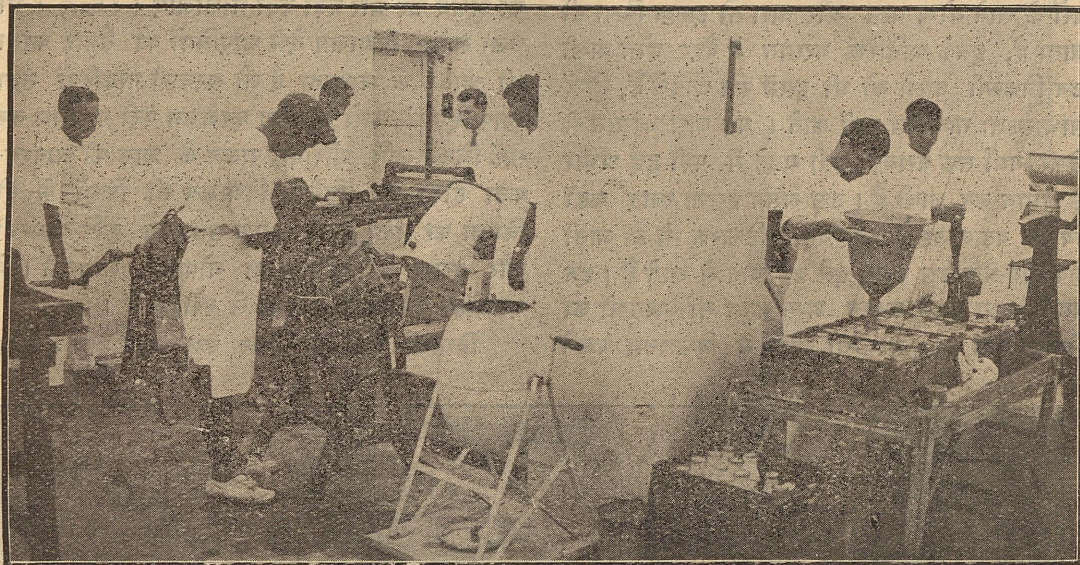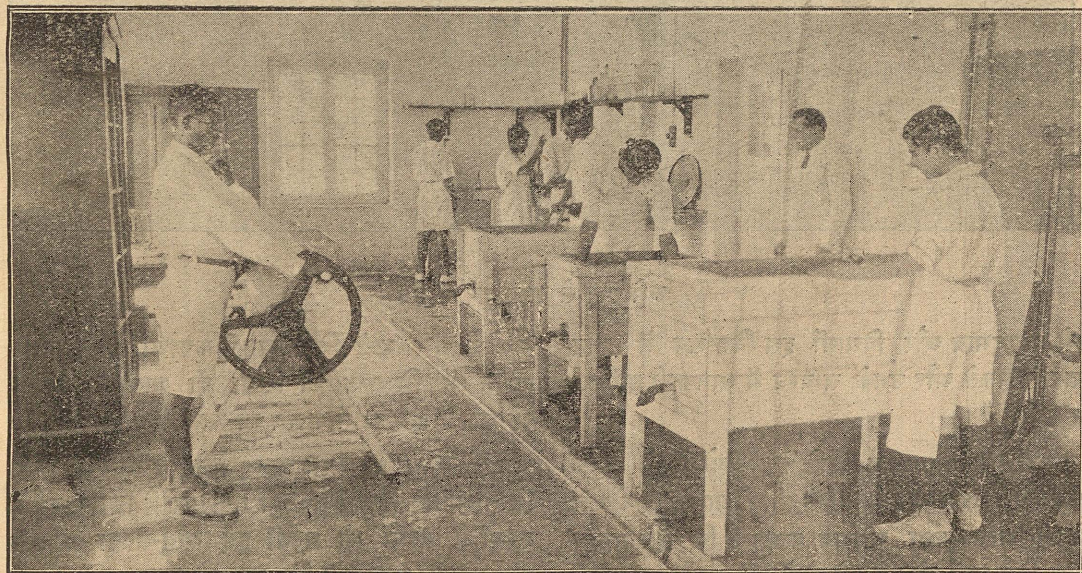
विद्यार्थी पनीर बनाना सीख रहे हैं।

वरों के खाने योग्य घास और चारा तो इकट्ठा किया ही जाता है, इसके अतिरिक्त बरसात में पैदा होने वाली उन निकम्मी घासों को भी इसमें रख छोड़ते हैं, जिन्हें साधारणतः गाय-बैल नहीं खाते। यह घास बरसात से लेकर गर्मी तक बराबर उसी गड्ढे में पड़ी हुई अचार के समान बन जाती है। उस समय इसका स्वाद कहीं ज़्यादा बढ़ जाता है और यह पुष्टिकारक भी हो जाती है। गाय-बैल उस समय इसे बड़े चाव से खाते हैं। इन गड्ढों तथा इनके समान अन्य बहुत सी वस्तुओं को किसान तथा कृषि-सम्बन्धी बातों में दिलचस्पी रखने वाले महानुभाव और विद्यार्थी इस विद्यालय में आकर देख-सुन सकते और उनके सम्बन्ध में जानकारी हासिल कर सकते हैं।

जैसे यह आवश्यक है कि इन प्रयोगों को करके जनता को दिखलाया जाय वैसे ही विद्यालय इस बात की भी आवश्यकता अनुभव करता है कि ऐसे मनुष्य तैयार किए जायँ जो बड़े-बड़े खेतों का प्रबन्ध कर सकें, जो स्वयं अपनी ज़मीन में नए ढङ्ग से खेती कर सकें और दूसरों को भी ऐसा करना सिखा सकें, जो गाय-बैलों का पालन करें और बड़ी-बड़ी गोशालाएँ (Dairy) भी चला सकें; विद्यालय ऐसे आदमियों को तैयार करना भी आवश्यक समझता है जो सरकारी नौकरियों तथा व्यापारिक संस्थाओं में प्रवेश करके उन पदों पर काम कर सकें जिनमें कृषि और पशु-पालन के ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसीसे विद्यालय की शिक्षा के दो विभाग कर दिए गए हैं—एक साधारण कृषि-सम्बन्धी और दूसरा डेरी-फ़ार्मिङ्ग या गोपालन सम्बन्धी। ये दोनों ही पाठक्रम गवर्नमेण्ट से स्वीकृत हैं।

विद्यार्थी खेतों में जाकर स्वयं अपने हाथ से काम करते हैं और उन्हें विद्यालय की कक्षाओं तथा प्रयोगशाला में सिद्धान्तों की शिक्षा दी जाती है, जिनके अनुसार वे खेती या गोपालन का काम करना सीखते हैं।

अमेरिका से लाए हुए साँड़।

गोपालन का पाठक्रम—जिसे इम्पीरियल डेरी डिप्लोमा कोर्स कहते हैं—दो वर्षों का है। भारतवर्ष के शहरों में बच्चों की बढ़ती हुई मृत्यु-संख्या का एक बड़ा कारण यह भी है कि एक तो इन नगरों में शुद्ध और ताज़ा दूध मिलता ही नहीं, यदि मिलता भी है तो इतने मँहगे दाम पर कि ग़रीब आदमी उसे ख़रीद नहीं

डॉक्टर साम हिगिनबॉटम

[आप प्रयाग कृषि विद्यालय के प्रिन्सिपल हैं। आपका हृदय दीन और दुखियों के प्रति अगाध करुणा से ओत प्रोत है। प्रयाग का कुष्ठ चिकित्सालय भी आप ही की तपस्या का फल है]

नवीन संशोधित संस्करण !

विधवा-विवाह-मीमांसा

[ले० श्री० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए०]

यह महत्वपूर्ण पुस्तक प्रत्येक भारतीय गृह में रहनी चाहिए। इसमें नीचे लिखी सभी बातों पर बहुत ही योग्यतापूर्ण और ज़बरदस्त दलीलों के साथ प्रकाश डाला गया है :—

(१) विवाह का प्रयोजन क्या है ? मुख्य प्रयोजन क्या है और गौण प्रयोजन क्या ? आजकल विवाह में किस-किस प्रयोजन पर दृष्टि रक्खी जाती है ? (२) विवाह के सम्बन्ध में स्त्री और पुरुष के अधिकार और कर्त्तव्य समान हैं या असमान ? यदि समानता है, तो किन-किन बातों में और यदि भेद है, तो किन-किन बातों में ? (३) पुरुषों के पुनर्विवाह और बहुविवाह धर्मानुकूल हैं या धर्म-विरुद्ध ? शास्त्र इस विषय में क्या कहता है ? (४) स्त्री का पुनर्विवाह उपर्युक्त हेतुओं से उचित है या अनुचित ? (५) वेदों से विधवा-विवाह की सिद्धि (६) स्मृतियों की सम्मति (७) पुराणों की साक्षी (८) अङ्गरेज़ी क़ानून (English Law) की आज्ञा (९) अन्य युक्तियाँ (१०) विधवा-विवाह के विरुद्ध आक्षेपों का उत्तर—(अ) क्या स्वामी दयानन्द विधवा-विवाह के विरुद्ध हैं ? (आ) विधवाएँ और उनके कर्म तथा ईश्वर-इच्छा (इ) पुरुषों के दोष स्त्रियों को अनुकरणीय नहीं (ई) कलियुग और विधवा-विवाह (उ) कन्यादान-विषयक आक्षेप (ऊ) गोत्र-विषयक प्रश्न (ऋ) कन्यादान होने पर विवाह वर्जित है ? (ॠ) बाल-विवाह रोकना चाहिए, न कि विधवा-विवाह की प्रथा चलाना (ऌ) क्या विधवा-विवाह लोक-व्यवहार के विरुद्ध है ? (ॡ) क्या हम आर्यसमाजी हैं, जो विधवा-विवाह में योग दें ? (११) विधवा-विवाह के न होने से हानियाँ— (क) व्यभिचार का आधिक्य (ख) वेश्याओं की वृद्धि (ग) भ्रूण-हत्या तथा बाल-हत्या (घ) अन्य क्रूरताएँ (ङ) जाति का ह्रास (१२) विधवाओं का कच्चा चिट्ठा।

इस पुस्तक में १२ अध्याय हैं, जिनमें क्रमशः उपर्युक्त विषयों की आलोचना की गई है। कई सादे और तिरङ्गे चित्र भी हैं। इस मोटी-ताज़ी सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रु० है, पर स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य अर्थात् २।) रु० में दी जाती है, पुस्तक में दो तिरङ्गे, एक दुरङ्गा और चार रङ्गीन चित्र हैं !

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय चन्द्रलोक, इलाहाबाद

सकते और देश में ग़रीबों की ही सबसे बड़ी संख्या है। अतः यह विद्यालय इस बात का प्रयत्न कर रहा है कि गायों की ऐसी नस्लें पैदा की जायँ, जिनसे थोड़े ही ख़र्च से शुद्ध और पुष्टिकारक दूध काफ़ी परिमाण में मिल सके। इस व्यवसाय को सिखाने वाली भारतवर्ष में केवल दो ही संस्थाएँ हैं, जिनमें यह विद्यालय एक है।

अमेरिका के मित्रों ने विद्यालय को अच्छे वंश वाले कई सुन्दर साँड़ दिए हैं। ऐसी आशा की जाती है कि इन साँड़ों के द्वारा, भारतीय गौओं से उत्पन्न होने वाली बछियाँ, इस देश की गायों के मुक़ाबले दुगुने से पाँच-गुना तक दूध दे सकेंगी। अभी इस प्रयोग का आरम्भ ही हुआ है। इसलिए अभी तक इसमें अधिक सफलता नहीं मिली है। परन्तु जितनी सफलता मिली है, वह निराशाजनक नहीं है। हमारी नई नस्ल की सबसे अच्छी गाय ने प्रथम दुहान में अर्थात् बछड़ा पैदा होने के समय से दूध बन्द हो जाने के समय तक ८,००० पाउण्ड दूध दिया है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि पहले दुहान का समय पिछले दुहानों के समय से बराबर छोटा हुआ करता है। गवर्नमेण्ट की फ़ौजी डेरियों में नई नस्ल की कई गायों ने एक दुहान में १५,००० से लेकर २०,००० पाउण्ड तक दूध दिया है। इस प्रकार की गायों की एक अच्छी नस्ल पैदा कर लेना कोई आसान या जल्दी हो जाने वाला काम नहीं है, परन्तु इस प्रयोग को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने से निस्सन्देह मनुष्य जाति का बहुत कल्याण हो सकता है।

अमेरिकन साँड़ों द्वारा भारतीय गौओं से उत्पन्न हुई बछियाँ।

इन दो पाठ-क्रमों के अतिरिक्त—जो कॉलेज में प्रवेश करने की योग्यता रखने वाले विद्यार्थियों के लिए है—एक तीसरा पाठ-क्रम भी है, जिसे फ़ार्म मैकेनिक्स ऐपरेण्टिस कहते हैं। इसमें ऐसी कारीगरी के काम सिखाए जाते हैं, जिनका सम्बन्ध खेती से होता है, जैसे बढ़ई, लोहार, फ़िटर (जो मशीनों की मरम्मत करता है) इत्यादि का काम। यह कोर्स तीन वर्ष का है। इतने दिनों में खेती के काम में आने वाले मशीनों को बनाने, उनकी मरम्मत करने तथा उन्हें चलाने का ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद ये बालक खाने-पहनने लायक़ अच्छी आमदनी करने की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार की शिक्षा पाए हुए बच्चे देहातों में बड़ा काम कर सकते हैं। विद्यालय में इन बच्चों को बढ़ईगिरी, लोहारी और साधारण

बिजली के कामों के अतिरिक्त, सन्ध्या को होने वाले क्लासों में भी, इस सम्बन्ध की ज़रूरी बातें बतलाई जाती हैं। इस पढ़ाई को समाप्त करके दो-तीन साल के भीतर ही अनेक लड़के ४०-५० और इससे भी अधिक रुपए प्रति मास की आमदनी कर चुके हैं। यहाँ शिक्षा प्राप्त करने वाले आत्मनिर्भर और योग्य लड़कों के लिए अपने जीवन को उन्नत बनाने की अनेक सुविधाएँ तथा सुनहले मौक़े हैं।

विज्ञानशाला और छात्रावास के अतिरिक्त विद्यालय में कृषि-सम्बन्धी मशीनें, प्रयोगशाला, गोशाला, खलियान और कार्यकर्ताओं के रहने के मकानात भी हैं। इन मकानों में से प्रायः सभी अमेरिका के उन प्रेमी और उदार मित्रों के द्वारा दी गई र म से बनाए गए हैं, जो भारत की दारिद्रय-समस्या के विरुद्ध युद्ध करने में सहायता देने के लिए सदा ही उत्सुक रहते हैं।

विद्यालय का मासिक ख़र्च जितना है, विद्यार्थियों की फ़ीस से उसका एक बहुत ही मामूली हिस्सा उसे मिलता है। किन्तु आशा की जाती है कि इस देश में ज्यों-ज्यों कृषि-विज्ञान की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित होता जायगा, त्यों ही त्यों वे अधिक से अधिक संख्या में आर्थिक सहायता के द्वारा विद्यालय को प्रश्रय देने के लिए अग्रसर होंगे और साथ ही वे इस संस्था के कामों में भी दिलचस्पी दिखाएँगे तथा ईश्वर से इस बात की प्रार्थना करेंगे कि वह इस संस्था को भारतवर्ष की सेवा करने के लिए दिनोंदिन अधिकाधिक उपयोगी बनावे। कुछ ही समय पहले महात्मा गाँधी यहाँ आए थे और यहाँ की मुख्य-मुख्य चीज़ों का उन्होंने निरीक्षण किया था। खेती करने की नवीन पद्धति और उन्नत साधनों को देख कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

विज्ञानशाला का एक भाग।

यह विद्यालय जहाँ कृषि-विज्ञान की उन्नति के लिए उत्सुक है, जहाँ यह इस बात का प्रयत्न कर रहा है कि पहले जिस खेत में एक मन अन्न उपजता था, उसी में अब दो मन उपजाया जा सके, वहाँ इसे इस बात का भी गर्व है कि इसका ध्यान अपने छात्रों के चारित्रिक विकास की ओर भी कम नहीं है। यहाँ व्याख्यानों और कक्षाओं में नैतिक और आध्यात्मिक विषयों पर भी वादविवाद हुआ करता है। अनेक छात्र—पहले जिनके विचार अत्यन्त सङ्कुचित और स्वार्थपूर्ण थे—यहाँ आकर उदार और

परोपकारी बन गए हैं। इस प्रकार खेती से सम्बन्ध रखने वाले आश्चर्य-जनक उन्नतियों के साथ ही साथ मानव-स्वभाव को भी उन्नत करने की चेष्टा यहाँ की जा रही है। यहाँ के विद्यार्थियों ने 'समाज-सेवा-सङ्घ' (Social Service League) नामक एक संस्था क़ायम और मनोरञ्जन का प्रबन्ध करने में उनकी सहायता करते हैं। वे प्रति रविवार को अपनी समिति का एक अधिवेशन करते हैं, जिसमें ईश्वर, बन्धुत्व, प्रेम, त्याग, उदारता तथा इसी प्रकार के अन्यान्य विषयों पर विवाद हुआ करता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि डॉ० साम हिगिन-

विद्यालय का छात्रावास, जिसमें १२४ विद्यार्थियों के रहने की जगह है।

की है। इसके सदस्य मज़दूरी करके पैसे इकट्ठा करते हैं और उससे ग़रीब बालकों की बीमारी में उन्हें दूध ख़रीद कर देते हैं। वे आसपास के गाँवों में भी जाते हैं और ग्रामीण लोगों की शिक्षा के विकास, स्वास्थ्य की उन्नति बॉटम और उनके भारतीय तथा अमेरिकन सहयोगियों के त्याग और सेवा का भाव विद्यार्थियों के हृदय में प्रवेश कर जाता है और वे भी ईश्वर तथा मानव-जाति की सेवा करने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं।

आदेश

[श्री० गङ्गाशरणसिंह]

बनो, बनो, पागल बन जाओ, एक ध्येय का ध्यान धरो।
हृदयहीन जग के बन्धन की कुछ भी मत परवाह करो॥
मिले यन्त्रणा, हो निन्दा, हँस दो तुम सिर्फ़ उपेक्षा से।
हों जितने दारुण आघात सभी सह लो तुम स्वेच्छा से॥
समय आएगा पथ का भीषण अन्तराल मिट जावेगा।
निश्चय ही तेरे चरणों पर यह जग शीश झुकावेगा॥

राजू की बिटिया

[श्री० गोपालचन्द्र जी पाण्डेय]

दिन भर की करारी मिहनत के बाद राजू घर आकर अभी खाट पर बैठा ही था कि उसकी लड़की द्रौपदी रोती हुई उसके निकट आ खड़ी हुई। राजू ने उसे रोते देख पूछा—क्यों बेटी, रोती क्यों है?

"छोटी माँ ने मुझे मारा है।"—लड़की ने कहा।

"क्यों? मारा क्यों?"

द्रौपदी की छोटी माँ, राजू की स्त्री, पास ही रसोई-घर में थी। लड़की की रोनी आवाज़ सुन कर वह झपट कर बाहर आ खड़ी हुई। बोली—"उनसे क्या कहने गई है? वह क्या मेरा सिर काट लेंगे? ले, उनके सामने ही मारती हूँ, देखूँ वह मेरा क्या कर लेते हैं?" राजू की स्त्री ने तड़ातड़ दो-तीन चपतें लड़की के गाल पर जड़ दीं। राजू हाँ-हाँ करता ही रह गया।

लड़की चिल्ला कर रोने लगी। वह भागती हुई राजू की गोद में जा छिपी।

राजू ने कहा—तुम इसे बचने दोगी या नहीं? कहो तो मैं घर छोड़ कर कहीं चला जाऊँ? जब से आई हो, कभी लड़की को ज़रा भी दुलारते नहीं देखा। क्या इसे मार कर ही दम लोगी?

"तुम क्यों जाने लगे, जाती मैं हूँ, जो इस घर की कोई नहीं हूँ। बाप रे बाप, ऐसा सीलफेरन भी कहीं किसी ने देखा है। सुनो तो, मैंने कभी भी इनकी बेटी को प्यार नहीं किया।"

"तो आज किसलिए इसे मार डालने पर उतारू हुई हो?"

"बड़ी भूल हुई जो मारा, तनिक अपनी कुल-लच्छमी से ही क्यों नहीं पूछते?"

"क्यों बेटी, क्या हुआ था?"—राजू ने द्रौपदी से पूछा।

"कहती क्यों नहीं? क्या मुँह में गोबर भरा है? इतनी बड़ी हो गई, किन्तु आज तक किसी से बोलने का सहूर न हुआ। आज मन्नू की बहिन को, उसके मुँह पर ही, न जाने क्या-क्या कह बैठी। उसी पर मैंने ज़रा डाँटा कि बस शास्तर ही अशुद्ध हो गया। अब सुना?"

जब राजू की बड़ी स्त्री सावित्री मृत्यु-शय्या पर पड़ी थी, उस समय एक दिन उसने अपने पति को अपने निकट बुला कर कहा—"देखो, मैं तो अब केवल घड़ी दो घड़ी की मेहमान हूँ, लेकिन मैं अपनी बच्ची को तुम्हारे ही भरोसे छोड़े जाती हूँ। देखना, उसे अच्छी तरह रखना। मैं अपनी बेटी को जितना प्यार करती थी, तुम भी उसे उतना ही प्यार करना, जिसमें उसे माँ का अभाव मालूम न पड़े। एक बात और—मैं इस जीवन में तो तुम्हारी सेवा अधिक न कर सकी। आशीर्वाद दो, जिससे अगले जन्म में तुम्हारा ऋण चुका सकूँ।" वह बहुत दुर्बल हो गई थी, अधिक न बोल सकी। हाँफने लगी।

राजू उसकी बातें सुन कर रोने लगा। आज ६ वर्ष हुए, वह सावित्री को अपने घर लाया था, किन्तु एक दिन भी किसी प्रकार का रञ्ज उसके मन में पैदा नहीं हुआ था। सावित्री सचमुच सावित्री ही थी। स्वामी के सुख की ओर सदैव उसकी सचिन्त दृष्टि रहती थी। राजू को रोते देख उसने कहा—छिः! तुम रोते हो! देखो, तुम्हें रोते देख कर द्रौपदी भी रोने लगेगी। तुम मर्द होकर भी यदि धैर्य धारण न कर सकोगे तो भला हमारी क्या दशा होगी?

उसी दिन शाम को दिनमणि के साथ ही साथ सावित्री भी इस संसार से विदा हो गई। वह द्रौपदी को पति के हाथ सौंप कर निश्चिन्त हो चुकी थी।

राजू की छोटी स्त्री चम्पा का स्वभाव बहुत रूखा था। गाँव की दो-एक स्त्रियों के अतिरिक्त किसी से उसकी पटती न थी। सावित्री की मृत्यु के बाद जब चम्पा का मामा अपनी इज़्ज़त रख लेने के लिए राजू के

सामने गिड़गिड़ाने लगा तो राजू उसे टाल न सका। एक तो लड़की छोटी थी—उसकी देख-रेख के लिए घर में एक स्त्री की आवश्यकता थी दूसरे एक कुटुम्ब को लौटा देना भी उसने उचित न समझा।

चम्पा जब ससुराल आई तो राजू ने जो कुछ सोचा था, ठीक उसके विपरीत हुआ। नई दुलहिन ने द्रौपदी को एक बार भी प्यार-भरी आँखों से न देखा। शायद उसने सोचा कि लड़कियों को प्यार करने के बदले पीटना ही अधिक चाहिए, क्योंकि प्यार से लड़कियाँ बिगड़ जाती हैं। इस घटना को लेकर स्वामी-स्त्री में बराबर कलह हुआ करता था।

२

"क्या हुआ, कुछ ठीक कर आए कि नहीं?"—राजू की स्त्री ने पूछा।

"कोई अच्छी ख़बर नहीं है"—कुर्त्ता उतारते हुए राजू ने कहा—"दो जगह तो गया था, किन्तु कहीं भी मेरे पसन्द का लड़का नहीं मिला। जिसके विषय में महराज जी से बात हुई थी, वह तो लड़का नहीं है, लड़के का दादा है। उम्र कोई पचास की होगी। तीन शादी हो चुकी हैं, अब चौथे पर तुला हुआ है। तीनों में एक को भी सन्तान नहीं है। धन-सम्पत्ति है, बूढ़ा सन्तान का भूखा है, भोगने वाला तो चाहिए!" अन्यमनस्क होकर राजू ने कहा।

"तो ब्याह दो न, मज़े में रहेगी।"

"तुम्हें क्या विचार छू तक नहीं गया है? मैं उस बूढ़े से अपनी बेटी ब्याह दूँ? लड़की क्वाँरी रह जाय सही...।"

"अजी ठहरो भी। तुम्हारी लड़की भी कोई इन्दरासन की परी है, जो इतना उछल रहे हो! फिर उम्र भी तो हुई—कितनी है? इस साल कातिक में दसवाँ चढ़ेगा।"

"कुछ भी हो, मैं तो भरसक चेष्टा करूँगा अपने दिल की करने की—आगे ईश्वर जानें।"—कहते हुए राजू चारपाई पर लेट गया।

दूसरे दिन सवेरे फिर वह वर की खोज में निकल गया। शाम को लौटा तो उसके चेहरे पर कुछ शान्ति की झलक थी। चम्पा ने कहा—आज जान पड़ता है, काम बना आए।

"हाँ, एक प्रकार बना ही आया। वह कोई अट्ठारह का होगा, लेकिन माँगता बहुत है—पूरे ढाई सौ।"

"ढाई सौ!"—आँखें तरेरती हुई चम्पा बोली—"तो बात पक्की कर आए क्या?"

"हाँ, बात तय ही है।"

"तो रुपए कहाँ से लाओगे?"

"ज़मीन पर रुपए लेने पड़ेंगे और लाऊँगा कहाँ से?"

"और दोनों जून कैसे चलेंगे?"—भोजन करने का अभिनय करती हुई चम्पा बोली।

"जैसे मालिक चलावें!"

"रुपए पर गहने भी देने पड़ेंगे या सिर्फ़ रुपए ही?"—चम्पा ने फिर पूछा।

"अच्छी रही! लड़की की शादी और बिना गहने के? तुम भी क्या बात करती हो? वह न भी माँगें, लेकिन हमें तो देना उचित है।"—स्त्री की ओर देखते हुए राजू ने कहा।

"उचित तो बहुत-कुछ है, एक ज़मीन्दारी दे दो न, लेकिन हो भी तो! ज़मीन पर ही तुम्हें कौन लाख दो लाख मिल जायँगे? ख़र्च भी तो कुछ कम नहीं बताते।"

"सब हो जायगा। गहने तुम्हारे हैं ही। बाक़ी ख़र्च के लिए भी रुपए कहीं से जुटा लेंगे।"

"क्या कहा? मेरे गहने? चाहे शादी हो या न हो, मेरी बला से; मैं अपने गहने क्यों देने लगी?"—जलती हुई वाणी में चम्पा ने कहा।

"तो क्या घर भी जल गया? इसे ही बेच लूँगा।"

"इसके पहले मुझे मैके रख आओ। जब इतना देने-लेने की ताक़त ही न थी तो सम्बन्ध पक्का क्यों कर आए? मुझे जलाने के लिए?"—रोषभरी आवाज़ में चम्पा बोली।

राजू ने कुछ उत्तर न दिया। मन ही मन सोचा—ब्याह तो इस साल करना ही पड़ेगा, फिर चाहे जैसे भी हो।

३

नियत समय पर द्रौपदी का विवाह हो गया, किन्तु शान्तिपूर्वक न हो सका। शायद अपने समाज की

वैवाहिक रीति ही ऐसी हो। बात यह हुई कि अनेक चेष्टा करने पर भी राजू काफ़ी रुपए जुटा न सका। बारात वालों का सत्कार, लड़की के आभूषण तथा अन्यान्य ख़र्च तो थे ही, दहेज के ढ़ाई सौ नगद रुपए अलग थे। इतना राजू से हो न सका। बस फिर क्या, सब के सब बिगड़ गए। वर को लेकर लौट जाने की तैयारी करने लगे। गाँव वालों ने बहुत आरज़ू-मिन्नत की—राजू ने गले में अँगौछा डाल कर समधी से प्रतिज्ञा की कि जैसे भी हो, पन्द्रह दिन के अन्दर आपके रुपए चुका दूँगा। तब कहीं जाकर शान्ति हुई।

वर के पिता ने कहा—ख़ैर, मैं लड़के का विवाह तो किए लेता हूँ—लड़की तो अब हमारी हुई—लेकिन मैं भी अच्छी सीख दूंगा।

*   *   *

दो वर्ष बाद।

सन्ध्या हो चुकी थी। राजू एक चारपाई पर चुपचाप बैठा था। रसोईघर की क्षीण आलोक-रश्मि उसके करुण मुखमण्डल पर पड़ कर उसे और भी करुण बना रही थी। हठात् किसी ने पुकारा—भैया घर पर हैं ?

किन्तु उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना दूसरे ही क्षण आगन्तुक आँगन में आ खड़ा हुआ। राजू ने कहा—कौन, लखन ? आओ भैया, क्या समाचार है ?

लखन ने कहा—समाचार तो कोई वैसा नहीं। हाँ, उधर वीरपुर गया था तो सोचा द्रौपदी से ज़रा भेंट कर लूँ, सो भाई क्या कहूँ ? ऐसे भी आदमी होते हैं ! ज़रा भेंट तक न करने दिया, ऊपर से उलटी-सीधी बहुतेरी सुनाईं। मैं चुपचाप सिर झुकाए खड़ा था। आख़िर सहने की भी सीमा होती है, मैंने भी कह दिया—समधी जी, आपही ने कौन इन्सानियत का बर्ताव उनके साथ किया है ? बाप-माँ का अरमान भी कभी नहीं पूरा करने दिया। कितनी बार वे बेटी को विदा कराने आए, लेकिन आप रुपए को ही पहचानते हैं, आदमी को नहीं। हाँ, ख़ूब सुना दिया।

कुछ देर के पश्चात् आगन्तुक फिर कहने लगा—आने के समय पीछे से किसी ने धीरे से आवाज़ दी—लखन चाचा ! फिर कर देखा, द्रौपदी थी। उफ़् ! उसकी कैसी दशा हो गई है, शरीर सूख कर कङ्काल रह गया है। मुझे देख कर रोने लगी। मैंने बहुत समझाया, कहा अबकी होली में तुम्हें ज़रूर लिवा जाऊँगा। द्रौपदी, रोओ मत बिटिया।

द्रौपदी ने कहा—चाचा यह मुझे मार डालेंगे; बाबू जी से कहना वे मुझे विदा करवा ले जायँ। घर के सभी मुझसे न जानें क्यों जलते रहते हैं। बात-बात पर उलहने सुनना पड़ता है। क्या करूँ चाचा, लोहू का घूँट पीकर सब कुछ सह लेती हूँ।

इसी तरह की दो-एक बातें और हुईं। अन्त में मैंने कहा—तो अब जाता हूँ बेटी !

"हाँ चाचा, मुझे भी वे खोजते होंगे। मालूम है न तुम आए हो। किसी से मिलने तक की मनाही है।"—कह कर आँखों के आँसू पोंछती हुई द्रौपदी चली गई। मैंने भी घर का रास्ता पकड़ा।

लखन चला गया। राजू ज्यों का त्यों बैठा-बैठा चिन्ता-सागर में डुबकियाँ ले रहा था।

४

राजू की स्त्री चम्पा बैठी बाल सँवार रही थी। पीछे से राजू ने पुकारा—"चम्पा !" स्वर में गहरी वेदना भरी हुई थी—"चम्पा, ओ चम्पा !"

"क्यों माथा खाए जाते हो ?"—चम्पा ने झुँझला कर कहा।

"अपने गहनों में से दो-एक उधार दोगी चम्पा ? तुम्हें फिर गढ़वा दूँगा।"

"एक ही बात बार-बार दुहराते तुम्हें शर्म नहीं आती ? सब खो चुके तो अब मेरे गहनों पर नज़र लगाया है। एक दिन तो कह चुकी—ज़ेवर मैं हरगिज़ न दूँगी, हरगिज़ न दूँगी, चाहे......"

"मुझसे शपथ करवा लो.....तुम उसे पहनती भी तो नहीं चम्पा !"

"पहनती नहीं तो क्या हुआ ? चीज़ मेरी है। मैं कहती हूँ, न दूँगी, न दूँगी।"

रह-रह कर एक पितृहृदय रो उठता था। हाय ! उसकी प्रतिज्ञा ! सावित्री को वह क्या उत्तर देगा ? नहीं, सावित्री तो मर गई है ! किन्तु वह प्रतिज्ञा, वह शपथ, जो उसके सामने की थी ! उसकी आत्मा शायद उसे कोसती होगी—"हाँ, हमने थाती की तो ख़ूब रक्षा की !" आज यदि वह होती......!

राजू आजकल कुछ पागल सा हो गया है, जिसे देखता है उसीके सामने हाथ पसार देता है—"कुछ रुपए दो भाई। बिटिया को ले आऊँ।" लोग उसे देखते ही रास्ता काट कर चले जाते हैं।

कुछ देर के पश्चात् वह उठ खड़ा हुआ और बाहर चला गया। चम्पा चिल्लाती रह गई—खा लो न, जा कहाँ रहे हो? परसों से उपवास कर रहे हो—कुछ खा लो तो जाना......।

५

"मुझे विदा कर दीजिए, बाबू जी आपके रुपए ज़रूर चुका देंगे, मैं उनसे जाकर कह दूँगी......ज़रूर कहूँगी ...लखन चाचा, ज़रा ठहरना......आती हूँ...अभी आती हूँ...कहूँगी......" रोग-शय्या पर पड़ी-पड़ी द्रौपदी प्रलाप कर रही थी। उस दिन लखन के चले जाने के बाद, बिना कुछ खाए-पिए ही, अपनी अँधेरी कोठरी में बैठ कर रात भर द्रौपदी रोती रही। सवेरा होने के पहले उसे बड़े ज़ोर का ज्वर चढ़ आया। तब से वह उसी ज्वर की बेहोशी में पड़ी प्रलाप कर रही है। उसके पति नन्दलाल के सिवा उसकी ओर ध्यान देने का किसी को अवकाश नहीं है।

सन्ध्या हो चली थी। सूर्य की क्षीण-किरण-माला दूर के तरु-शिखरों पर चमक उठी थी। सहसा दरवाज़े पर किसी ने धमकी दी। पुकारा—"समधी जी! नन्दू बाबू, ओ नन्दू बाबू!"

नन्दलाल अपनी पत्नी के निकट बैठा था। आवाज़ सुन कर बाहर निकला। बाहर एक कङ्काल-मूर्त्ति खड़ी थी। "आप कौन हैं?" सहसा नन्दलाल उसे पहचान न सका। कुछ रुक कर बोला—"ओ आप......" झुक कर उसने प्रणाम किया। आगन्तुक राजू था।

* * *

रात के बारह बज रहे थे।

"चम्पा, किवाड़ खोलो"—रुँधे हुए स्वर में राजू ने पुकारा—"चम्पा, देखो कौन आया है।"

"क्यों मुझे जलाते हो?......"—चम्पा ने आलस्य भरे स्वर में उत्तर दिया।

"बिटिया......"—एक क्षीण स्वर सुन पड़ा।

"क्या बिटिया आई है?"—चौंक कर चम्पा ने कहा। टिमटिमाती हुई रोशनी में उसे राजू का कङ्कालसार मुँह बड़ा भयानक मालूम पड़ा। उसकी आँखें धँस गई थीं, मुँह काला पड़ गया था, दृष्टि में भयानक उन्माद के चिन्ह लक्षित हो रहे थे।

निकट ही एक बैलगाड़ी खड़ी थी। गाड़ीवान एक ओर सिर झुकाए बैठा था।

चम्पा घूँघट निकालती हुई गाड़ी की ओर बढ़ी। धीरे से पुकारा—द्रौपदी!

"उसे सोने दो..."—राजू ने बाधा देते हुए कहा—"वह अब न जागेगी। उसे चुपचाप सोने दो।"

चम्पा ने देखा, कोई लम्बा-लम्बा आदमी गाड़ी में सो रहा है। पैर पकड़ कर उसने हिलाया—यह क्या! इतना ठण्ढा! इतना कठिन!! जैसे बर्फ़!!!

चम्पा ने पुकारा—द्रौपदी!

"वह सो गई है, उसे छेड़ो मत। मैं आखिर उसे लेकर ही आया हूँ।"—राजू पागल की तरह अट्टहास कर उठा।

इसी समय कर्कश स्वर में टर्राता हुआ एक निशिचर पक्षी राजू के सिर पर से होकर निकल गया।

दाह

[श्री० सत्यव्रत शर्मा 'सुजन']

कभी देखता हूँ, निशीथ के नीरव अञ्चल में छिप कर।
चुपके से चित चुरा भाग जाते हो तुम शशि के रथ पर॥
सिहर जाग उठता हूँ, नभ से झाँक चिढ़ाते हैं तारे।
हँस-हँस कर इस लुटे हृदय पर हाय! चलाते हैं आरे॥
आहों के जलते अङ्गारे तप्त उसासों में मिल कर।
हिमकर को भी जला बना देते हैं रवि उत्तप्त प्रखर॥

स्वाभिमानी वीर बल्लू जी चाँपावत

[श्री० विश्वेश्वरनाथ जी रेऊ]

ये रणसी गाँव (मारवाड़ में) के ठाकुर गोपालदास जी के पुत्र बड़े ही स्वतन्त्र प्रकृति के पुरुष थे। एक दिन मारवाड़-नरेश महाराजा गजसिंह जी सभा में बैठे हुए इधर-उधर की बातचीत कर रहे थे। युवक बल्लू जी भी वहीं पर उपस्थित थे। ऐसे समय किसी पण्डित ने प्रसङ्गवश एक श्लोक पढ़ा, जिसका उत्तरार्ध यह था :—

स्थान भ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशाः नखाः नराः।

अर्थात्—अपने स्थान से दूर हो जाने पर दाँतों, केशों, नखों और पुरुषों की शोभा बिगड़ जाती है।

यह बात बल्लू जी को अच्छी न लगी। इसलिए इन्होंने इसका प्रतिवाद कर कहा कि यह बात अधिकांश में ठीक होने पर भी सर्वांश में मान्य नहीं कही जा सकती। वास्तव में यह प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति की योग्यता पर ही निर्भर है। देखिए, हाथी के दाँत जब तक अपने स्थान पर रहते हैं तब तक मिट्टी और पत्थरों से टकराते हैं, परन्तु वहाँ से अलग होते ही सुहाग की चूड़ियों का रूप धारण कर, रानियों तक के हाथों की शोभा को बढ़ाते हुए अपनी भी श्रीवृद्धि करते हैं। सुरागाय की पूँछ के बाल जब तक अपने स्थान पर रहते हैं, तब तक मिट्टी में सने रह कर सिवाय मक्खियों और मच्छरों के उड़ाने के किसी काम नहीं आते, परन्तु वहाँ से दूर होते ही सुवर्ण के दण्डों से भूषित होकर देवताओं और सम्राटों के मस्तकों तक पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार सिंह के नख भी अपने स्थान पर तो नित्य ही मांस और रुधिर से सने रहते हैं, परन्तु वहाँ से हटते ही सुवर्ण में मँढ़े जाकर श्रीमानों के बालकों के कण्ठाभरण का रूप धारण कर लेते हैं।

बल्लू जी अभी इतना ही कह पाए थे कि पण्डित झल्ला कर बोल उठे—"ख़ैर, ये बातें तो आपने कहीं सो ठीक हैं, परन्तु क्या पुरुष भी अपने स्थान से गिर कर शोभा पा सकता है?" यह सुन बल्लू जी की स्वतन्त्र प्रकृति जग उठी। इसलिए इन्होंने उत्तर दिया कि औरों के विषय में तो मैं कुछ भी कहना नहीं चाहता, परन्तु मैं स्वयं इसी समय मारवाड़ की जागीर छोड़ कर आपकी इस शङ्का के निवारण का प्रयत्न करूँगा। इतना कह कर यह सभा से उठ गए और अपने कुछ विश्वस्त साथियों के साथ बीकानेर की तरफ़ चल दिए।

उस समय हिन्दुस्तान पर मुग़लों का शासन था। वीर योद्धा, तेज़ घोड़े और बढ़िया शस्त्र की सब जगह क़दर थी। इससे जब यह बीकानेर पहुँचे तब इनकी वीरता से परिचित होने के कारण वहाँ के महाराज ने इनका बड़ा आदर-सत्कार किया। उनका इरादा इनको जागीर देकर अपने यहाँ रखने का था। परन्तु इसी बीच एक रोज़ महाराज ने एक उम्दा तरबूज़ इनके लिए भेज दिया। मारवाड़ी भाषा में तरबूज़ को 'मतीरो' कहते हैं; जिसका उसी भाषा में दूसरा अर्थ 'मत रहो' भी होता है। इस सौगात को देख बल्लू जी वहाँ से तत्काल रवाना हो गए। इसकी सूचना मिलने पर महाराज ने आदमी भेज कर इन्हें बहुत-कुछ समझाया और हर तरह से इनकी तसल्ली करने की कोशिश की। परन्तु यह किसी भी प्रकार अपना विचार त्यागने को तैयार न हुए।

यहाँ से इन्होंने आँबेर की तरफ़ प्रस्थान किया। यह अपनी मनस्विता के लिए तो प्रसिद्ध हो ही चुके थे। इससे जैसे ही ये वहाँ पहुँचे वैसे ही वहाँ के नरेश ने भी इनकी बड़ी आवभगत की और एक अच्छी जागीर देकर इन्हें अपने पास रख लिया। कुछ दिन बाद एक रोज़ आँबेर-नरेश शिकार को निकले। उस समय बल्लू जी भी उनके साथ थे। जब ये लोग नदी किनारे के एक गाँव में पहुँचे तब वहाँ की फ़सल को देख कर महाराज ने उस गाँव के स्वामी का नाम जानना चाहा। इस पर साथ के सरदारों ने बल्लू जी की तरफ़ इशारा कर दिया। यह देख महाराज ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए वहाँ की फ़सल की बड़ी

तारीफ़ की। अगले गाँव में पहुँचने पर भी यही क़िस्सा हुआ। परन्तु बल्लू जी कुछ न बोले। वहाँ से आगे बढ़ने पर ये सब एक तीसरे गाँव में पहुँचे। यह गाँव भी बल्लू जी की ही जागीर का था और नदी के किनारे होने के कारण यहाँ की खेती भी ख़ूब लहलहा रही थी। यह देख महाराज ने अपनी उदारता जताने के लिए फिर बल्लू जी से वहाँ की फ़सल की तारीफ़ की। परन्तु इस बार इनकी स्वतन्त्र प्रकृति भड़क उठी। इसलिए इन्होंने तत्काल उक्त जागीर का पट्टा (दस्तावेज़), जो इनके परतले (तलवार के पट्टे) में था, निकाल कर आँबेर-नरेश के सामने रख दिया और वहाँ से उठ कर रवाना हो गए। यह देख जब महाराज ने इसका कारण पूछा, तब इन्होंने निवेदन किया कि मैं तो स्वयं ही आपकी उदारता और गुणग्राहकता का आभारी था। परन्तु आपने अपने ही मुख से एहसान जता कर उस पर पानी फेर दिया। ऐसी हालत में अब मेरा यहाँ रहना निरर्थक है। यह सुन यद्यपि महाराज ने इनके रोकने के अनेक उपाय किए, तथापि ये वहाँ से मेवाड़ की तरफ़ चल दिए।

इन्हें आया देख वीर-शिरोमणि महाराना ने इनका और भी अधिक आदर-सत्कार किया। कुछ दिन बाद बल्लू जी बीमार हो गए। जब इसकी सूचना महाराना को मिली तब एक दिन वह शिकार से लौटते हुए इनके निवासस्थान पर पहुँचे। इधर-उधर की बातचीत में शिकार का भी ज़िक्र आ जाने से महाराना के साथ के सरदारों ने हाल ही की कुछ घटनाओं का वर्णन छेड़ दिया। परन्तु बल्लू जी को उनकी अभिमान भरी बातें अच्छी न लगीं। इससे यह चुप हो रहे। अन्त में जब महाराना ने इनके मौन का कारण पूछा तब इन्होंने नम्रता से उत्तर दिया—"श्रीमान्! यदि इतने बड़े-बड़े सरदारों ने मिल कर सिंह को मार ही लिया तो कौन सा आश्चर्य का कार्य कर दिया!" यह बात महाराना के साथ वालों को और स्वयं उनको भी बुरी लगी। परन्तु उस समय वे सब चुप हो रहे।

कुछ दिन बाद जब वीर बल्लू जी स्वस्थ हो गए और फिर सिंह के शिकार का मौक़ा आया तब सारे सरदारों ने मिल कर उनसे उस दिन के अपमान का बदला लेने का विचार किया। इसीसे जिस समय सब लोग जङ्गल में पहुँचे, उस समय उन्होंने महाराना से निवेदन किया कि बल्लू जी अपने मेहमान हैं, इसलिए आज के शिकार का मौक़ा इन्हीं को देना चाहिए। यह सुन बल्लू जी सारी बातों को भाँप गए। इसलिए जैसे ही हाके वालों ने सिंह के निकट आने की सूचना दी, वैसे ही इन्होंने घोड़े पर से कूद कर सारे शस्त्र खोल दिए और केवल बाँए हाथ पर कमरबन्द का कपड़ा लपेट सिंह के सामने चले। यह देख महाराना सहित सारे उपस्थित सरदार चकित होगए और इनसे ऐसा करने का कारण पूछने लगे। इस पर इन्होंने उत्तर दिया—"इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है! क्या सिंह के पास कोई सवारी या शस्त्र है जो मैं भी उन्हें लेकर उसके सामने जाऊँ। धर्म-युद्ध तो यही है कि जिस हालत में शत्रु हो उसी हालत में स्वयं भी जाकर उससे युद्ध करे।" इतना कह कर यह आगे बढ़ गए। इन्हें सामने आया देख सिंह भी इन पर टूट पड़ा। परन्तु इन्होंने फुरती से कपड़ा लपेटा हुआ बायाँ हाथ उसके मुख में देकर दाँए हाथ से उसके कान के पास इस ज़ोर का घूँसा लगाया कि वह इस मर्मस्थल की चोट को न सँभाल सकने के कारण पृथ्वी पर गिर पड़ा और फिर पलक झपकते उठ कर भाग खड़ा हुआ।

इस घटना को देख दूर खड़े हुए सब सरदार आप ही आप इनकी तारीफ़ करने लगे। परन्तु बल्लू जी ने लौट कर महाराना से निवेदन किया कि—"गिरे या भागे हुए शत्रु को मारना राजपूत का धर्म नहीं है। इसलिए अब मैं तो उसका पीछा करना उचित नहीं समझता। परन्तु यदि आप या आपके सरदार चाहें तो जाकर उसे मार सकते हैं।" इतना कह कर इन्होंने महाराना से विदा की आज्ञा चाही।

यद्यपि इस घटना के पहले तक स्वयं महाराना और उनके सरदार उस दिन के अपमान के कारण मन ही मन इनसे कुछ अप्रसन्न से हो रहे थे, तथापि आज की इस घटना को देख उनका सारा मनोमालिन्य दूर हो गया। इससे महाराना ने इनको अपने पास रखने की बहुत-कुछ चेष्टा की। परन्तु वीर बल्लू जी ने निवेदन किया कि—"जहाँ राजपूत की क़दर न हो वहाँ पर उसका रहना बिलकुल निरर्थक है। हाँ, यदि आपको मेरी परीक्षा ही करनी थी तो मुझे किसी शत्रु के मुक़ाबले में भेजना था। राजपूत की वीरता की परीक्षा उसे एक

हिंसक जन्तु से लड़ा कर नहीं की जा सकती। बहुत सम्भव था कि मैं इस युद्ध में व्यर्थ ही मारा जाता।" इतना कह कर ये वहाँ से विदा हो गए।

इसके बाद इन्होंने आगरे जाने का विचार किया। वहाँ पहुँचने पर बादशाह शाहजहाँ ने इन्हें शाही सेनानायकों में भरती कर लिया और कुछ ही दिनों में मनसब देने का भी वादा किया। परन्तु इसी बीच वि० सं० १७०१ की सावन सुदी २ (ई० स० १६४४ की २५ जुलाई) को जोधपुर-नरेश स्वर्गवासी महाराजा गजसिंह जी के ज्येष्ठ पुत्र राव अमरसिंह जी आगरे के क़िले में मारे गए। इस घटना की सूचना* पाते ही इनकी रगों का ख़ून खौल उठा और इन्होंने शाही मनसब की आशा छोड़ अपने स्वामि-पुत्र का† बदला लेने का निश्चय कर लिया। इनका इरादा राव जी के मारने में सम्मिलित हुए अर्जुन गौड़ को मारने का था। परन्तु इस कार्य के पूरा होने के पहले ही गौड़ों ने घबरा कर इसकी सूचना बादशाह को दे दी। इससे तत्काल एक शाही सेना इनके मुक़ाबले को आ पहुँची।

कहते हैं कि जिस समय वीर बल्लू जी युद्ध-यात्रा के लिए तैयार हो रहे थे, उसी समय मेवाड़ के महाराना जगतसिंह जी का भेजा हुआ एक आदमी सवारी का एक अत्युत्तम घोड़ा लेकर वहाँ आ पहुँचा। यह घोड़ा कुछ ख़ास विशेषता रखता था। इसीसे महाराना ने इसे बल्लू जी जैसे वीर के लायक़ समझ इनके पास भेज दिया था। इन्होंने भी उसे देख कर महाराना के प्रति अपनी बड़ी कृतज्ञता प्रकट की और उसी पर सवार होकर शाही सेना से जा भिड़े। राव अमरसिंह जी के बचे हुए योद्धा भी इनके साथ हो गए थे। इससे कुछ देर के लिए भयङ्कर मार-काट मच गई। परन्तु मुट्ठी भर राठोड़ विशाल यवन-समूह का कब तक सामना कर सकते थे? थोड़ी ही देर में इनकी संख्या अल्प से अल्पतर होने लगी। अन्त में ये सब अनेक शाही सैनिकों को मार कर वीरगति को प्राप्त हो गए। इन्हीं में वीर चाँपावत बल्लू जी भी थे।*

वीर बल्लू जी ने युद्ध के लिए जाते हुए जो सन्देश सतियों के द्वारा राव जी के पास भेजा था, उसका वर्णन किसी कवि ने इस प्रकार किया है :—

बल्लू कहै गोपालरो सतियाँ हाथ सँदेश।
पतसाही घड़ मोड़ने आवाँछाँ अमरेश॥

मारवाड़ के हरसोलाव, बापोड़, धामली, लोरोली, खोखरी आदि के ठाकुर शायद इन्हीं के वंशज हैं।†

* कहीं-कहीं वीर बल्लू जी का कुछ दिन तक राव अमरसिंह जी के पास रहना भी लिखा मिलता है।

† कहीं-कहीं ऐसा भी लिखा मिलता है कि राव अमरसिंह जी की रानियों ने जब राव जी के क़िले में मारे जाने का सम्वाद सुना तब बल्लू जी से कहलाया कि हम राव जी के पीछे सती होना चाहती हैं। आप भी राठोड़ हैं, इससे आपका कर्त्तव्य है कि स्वयं जाकर क़िले से राव जी का शव ले आवें। इसीसे बल्लू जी ने क़िले में घुस कर मार-काट मचाई और शाही सैनिकों को पीछे ढकेल, राव जी का शव तो सतियों के पास भेज दिया और ख़ुद सम्मुख रण में वीरगति प्राप्त की।

* बादशाह नामा, भा० २, पृ० ३८३-३८४

† इस चरित्र के लिखने में इतिहासों और दन्त-कथाओं दोनों से ही सहायता ली गई है।
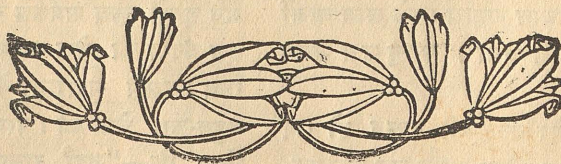
वञ्चित

[श्री० केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', बी० ए०]

(१)

उस निशीथ की नीरवता में,
क्षणभङ्गुर सुख स्वप्न समान;
कब आए कब चले गए तुम
सत्वर गति से हे छविमान !

(२)

कब तुमने अपना प्रकाश
मेरी कुटिया में फैलाया ?
कब मेरी सञ्चित आशा को
प्रेम-सुधा से नहलाया ?
कब तुमने अपनी तन्त्री पर
गाया अपना नीरव गान ?
कब आए कब चले गए तुम
सत्वर गति से हे छविमान !

(३)

सोया था अज्ञात-सुप्ति में,
आँखों ने न किया दर्शन ;
तेरे पैरों पर न चढ़ा पाया
चिर-सञ्चित अश्रु-सुमन ।
आशा की अधखिली कली का
हाय ! हो गया द्रुत अवसान ;
कब आए कब चले गए तुम
सत्वर गति से हे छविमान !

(४)

कितनी मधुर लालसा, कितनी
भव्य भावनाएँ सुन्दर—
छिपी हुई थीं इस छोटे से
मूक हृदय में कोमलतर ।
मैं यों वञ्चित रह जाऊँगा,
इसका मुझे न था कुछ ज्ञान ;
कब आए कब चले गए तुम
सत्वर गति से हे छविमान !

(५)

सोते में आओगे, यदि कोई
मुझको यह बतलाता ;
तो मैं रात बिता देता
गिन तारे, हाय ! न सो जाता ।
अब तो जीवन भर सहना—
रह गया, व्यथा का शूल महान ;
कब आए कब चले गए तुम
सत्वर गति से हे छविमान !

श्रद्धा और बुद्धि

[श्री० चन्द्रराज भण्डारी, विशारद]
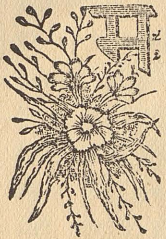
मनुष्य-प्रकृति के अन्तर्गत श्रद्धा और बुद्धि ये दो गुण ऐसे हैं जो मनुष्य को अन्य प्राणियों से अलग करते हैं। इन दोनों गुणों से मनुष्य अपने समाज की रचना और रक्षा करता है। इन्हीं दोनों गुणों के कारण वह अखिल प्राणि-जगत पर तथा प्रकृति पर भी अपना साम्राज्य स्थापित करता है और इन्हीं के द्वारा वह अपनी इहलौकिक तथा पारलौकिक उन्नति सम्पादन करता है। ऐसे तो मनुष्य-प्रकृति में प्रेम, दया, दाक्षिण्य, विचार, गम्भीरता, दूरदर्शिता, आदि और भी सैकड़ों गुण-दोष हैं, पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करने से प्रतीत होगा कि इन सब गुण-दोषों की उत्पत्ति प्रधानतया दो ही स्थानों से होती है, या तो मस्तिष्क से या हृदय से। मनुष्य-शरीर के अन्तर्गत यही दो स्थान प्रधान हैं। श्रद्धा और बुद्धि ये दोनों ही इन दोनों स्थानों के प्रधान गुण हैं। अतः यह कहना अत्युक्त न होगा कि इन्हीं दोनों गुणों से मनुष्य-प्रकृति-गत अन्य सब गुणों की उत्पत्ति होती है।

श्रद्धा की उत्पत्ति हृदय से होती है और बुद्धि की मस्तिष्क से। अतएव उत्पत्ति-स्थानों के स्वभावानुसार ही इन दोनों का स्वभाव भी होता है। श्रद्धा सुन्दर है, बुद्धि सत्य है। श्रद्धा भाव है, बुद्धि विचार है। श्रद्धा प्रेम और विश्वास की जननी है, बुद्धि विज्ञान और विवेक की माता है। श्रद्धा सरल है, बुद्धि चतुर है। श्रद्धा प्रेय है, बुद्धि श्रेय है। श्रद्धा चन्द्रमा की शीतल चाँदनी है, बुद्धि सूर्य का प्रचण्ड प्रताप है। श्रद्धा के कोष में विचार और तर्क को स्थान नहीं है, बुद्धि के राज्य से विवेकहीन विश्वास का बहिष्कार है।

मनुष्य-समाज की उन्नति के लिए सुन्दर और सत्य, भाव और विचार, श्रेय और प्रेय, विश्वास और विवेक, प्रेम और विज्ञान चन्द्र और सूर्य, दोनों प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता है। अतएव यह स्वयं सिद्ध है कि श्रद्धा और बुद्धि, ये दोनों ही गुण मनुष्य-समाज के लिए उपादेय हैं। जिस प्रकार केवल ऑक्सिजन से या केवल नाइट्रोजन से मनुष्य जीवित नहीं रह सकता, उसके जीवन की रक्षा के लिए इन दोनों ही की एक नियमित मात्रा में आवश्यकता होती है, उसी प्रकार केवल श्रद्धा से या केवल बुद्धि से मनुष्य-समाज जीवित नहीं रह सकता, उसके स्वास्थ्य के लिए इन दोनों गुणों की एक नियमित परिमाण में आवश्यकता रहती है। ये दोनों ही गुण जब तक नियमित मात्रा में रहते हैं, तब तक मनुष्य-समाज उन्नत, अभीष्ट और प्रगतिशील रहता है। पर ज्योंही इनके परिमाण में कमी-बेशी या विशृङ्खला उत्पन्न हो जाती है, त्योंही मनुष्य-समाज का जीवन भँवर में पड़ जाता है, उसमें किसी भयङ्कर अनर्थ का सूत्रपात हो जाता है।

श्रद्धा और बुद्धि ये दोनों ही गुण एक-दूसरे पर इतने अधिक निर्भर हैं कि जब तक ये साथ रहते हैं, तभी तक श्रेष्ठ और सुन्दर रहते हैं। जहाँ ये एक-दूसरे से अलग हुए कि दोनों ही महा भयानक रूप धारण कर लेते हैं। बुद्धि के अलग होते ही श्रद्धा का विश्वास अन्ध-विश्वास में, प्रेम मोह में, भावुकता मूर्खता में, और धर्म मज़हब में बदल जाता है। इधर श्रद्धा के अलग हो जाने से बुद्धि की भी बड़ी दुर्गति होती है। उसका तर्क कुतर्क में, विवेक धूर्तता में और विज्ञान नास्तिकता में परिवर्तित हो जाता है। केवल श्रद्धा की शीतलता में मनुष्य-समाज ठिठुर कर निर्जीव हो जाता है और केवल बुद्धि के भीषण-ताप से वह जल कर भस्म हो जाता है। जिस प्रकार विवेक-हीन विश्वास मनुष्य-जाति के लिए भयङ्कर है, उसी प्रकार विश्वासहीन विवेक भी मनुष्य-जाति का परम शत्रु है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि समाज के लिए इन दोनों गुणों के सम्मिश्रण की आवश्यकता है।

जब श्रद्धा में से बुद्धि का अंश निकल जाता है, तब वह "अन्धश्रद्धा" कहलाती है। यह अन्धश्रद्धा विचार और विवेक की शत्रु होती है, सोचने और

विचार करने का तथा सत्यासत्य का निर्णय करने का मनुष्य को जो एक स्वाभाविक अधिकार होता है उस अधिकार को यह उससे छीन लेती है। क्या इष्ट है और क्या अनिष्ट, क्या न्याय है और क्या अन्याय, इन बातों का निर्णय करने के लिए वह मनुष्य को अवकाश ही नहीं देती। वह बलात्कार मनुष्य-समाज पर अपना एकाधिपत्य स्थापित करती है।

अन्धश्रद्धा का सबसे बड़ा और अनिवार्य नैतिक दुष्परिणाम यह होता है कि समाज सिद्धान्तवाद की उदार उपासना को छोड़ कर व्यक्तिवाद का उपासक हो जाता है। व्यक्तिवाद का यह भूत उसकी राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति आदि सब नीतियों में घुस जाता है। किसी भी सिद्धान्त की आत्मा को छोड़ कर समाज उसके जड़ चोले को पकड़ लेता है। परिणाम यह होता है कि उसकी राजनीति से उच्छृङ्खला और अत्याचारी राजसत्ता की, धर्मनीति से भयङ्कर मज़हब की और समाजनीति से भीषण जाति-प्रथा की उत्पत्ति हो जाती है और अन्त में समाज का जीवन दुर्भाग्य के भीषण चक्र में फँस जाता है।

इसी प्रकार अन्धबुद्धिवाद से भी समाज के अन्तर्गत भीषण नास्तिकता, अमानुषिकता, अविश्वास आदि दुर्गुण समष्टिगत हो जाते हैं, जिससे समाज में हत्या, रक्तपात और हिंसात्मक भावों का कोलाहल मच जाता है।

अब हम आगे यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि अति श्रद्धा और अति बुद्धि के समष्टिगत होने पर समाज की राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थिति में क्या-क्या परिवर्तन होते हैं।

राजनीति में अन्धश्रद्धा

(१) राज्य की उत्पत्ति और उसका विकास क्यों और कैसे हुआ, यह बड़ा ही गम्भीर विषय है। फिर भी यदि संक्षेप में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि मनुष्य-प्रकृति की स्वाभाविक विषमता पर नियन्त्रण रख कर, उसके द्वारा समाज में जो अव्यवस्था उत्पन्न होती है उसे रोक कर, समाज में सुव्यवस्था रखने के लिए ही राज्य की उत्पत्ति हुई है। उत्पत्ति का उद्देश्य एक होने पर भी भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के अनुसार राज्य के अनेक रूप हो गए, कहीं राजतन्त्र, कहीं प्रजातन्त्र, कहीं प्रतिनिधितन्त्र, इत्यादि।

प्रणाली चाहे जैसी हो, जब तक उसकी नींव शुद्ध विवेक और शुद्ध विश्वास पर रहती है, तब तक वह श्रेष्ठ और उन्नति के लिए इष्ट रहती है। पर ज्यों ही उसके अन्तर्गत अन्धविश्वास और अशुद्ध विवेक का समावेश हो जाता है, त्योंही वह उद्देश्य से भ्रष्ट और समाज के लिए भयङ्कर हो जाती है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे भारतीय इतिहास में स्पष्ट शब्दों में अङ्कित है।

भारतवर्ष में यहाँ की परिस्थिति के अनुसार राजतन्त्री राज्य की स्थापना हुई, समाज की सुव्यवस्था के लिए राजा की आयोजना हुई। जिस सिद्धान्त पर राजा की रचना हुई, वह सिद्धान्त बहुत ही ऊँचा था, उस सिद्धान्त के अनुसार राजा प्रजा की केवल इहलौकिक उन्नति का ही ज़िम्मेदार नहीं समझा जाता था, प्रत्युत उसकी पारलौकिक सद्‌गति का भी वह ज़िम्मेदार समझा जाता था। प्रजा के अन्दर यदि कोई भूखा, प्यासा या असमर्थ पाया जाता तो उसकी ज़िम्मेदारी भी उस पर समझी जाती थी, यहाँ तक कि अकाल मृत्यु और महामारी का ज़िम्मेदार भी वही होता था। वह राजा प्रजा की स्त्रियों को माँ और बहिनों के समान, वृद्धों को पिता के समान और छोटों को पुत्र के समान समझता था।

इस कल्पना के अनुसार राजा की उत्पत्ति हुई और वह राजा समाज के अन्तर्गत ईश्वर का अंश समझा जाने लगा। इस सिद्धान्त का कि ऐसा राजा ईश्वर का अंश समझा जाय, विवेक भी समर्थन करता है। पर यह प्रतिष्ठा या यह सम्मान उस सिद्धान्त को प्राप्त है, जोकि व्यक्ति को राजा बनाता है, न कि उस व्यक्ति को जो राजा के रूप में राज्यासन पर प्रतिष्ठित है। विवेक और सिद्धान्त के अनुसार यदि वह राजा उस आदर्श से तनिक भी भ्रष्ट हो जाय तो वह उस पद और सम्मान का अधिकारी नहीं रहता। दैवी सम्पद्युक्त समाज में ऐसा होता भी था।

पर जब समाज में अन्धश्रद्धा का प्रभुत्व हो गया तब सिद्धान्त-पूजा की जगह व्यक्ति-पूजा का प्रारम्भ हुआ। हम पहले ही कह आए हैं कि अन्धश्रद्धा में विचार और विवेक को स्थान नहीं रहता। अतएव इसका यह परिणाम होना स्वाभाविक था। राजा का आदर्श क्या है, उसे

ईश्वर का अंश क्यों कहा गया है, उसके आचरण कैसे होना चाहिए, ये सब बातें बुद्धि से सम्बन्ध रखती हैं। अतएव इन बातों पर विचार करने का समाज को अवकाश न था। इसलिए इन सब बातों को उसने छोड़ दिया। केवल "राजा ईश्वर का अंश है", इस परिपाटी को उसने मज़बूती से पकड़ लिया। क्योंकि इसको मानने में केवल थोड़े से विश्वास ही की आवश्यकता थी। विवेकप्रधान समाज में यदि राजा से कुछ भी भूल हो जाती तो ब्राह्मण उसे उचित दण्ड देते थे। पर इस (अन्धश्रद्धा-प्रधान) काल के समाज की दृष्टि में राजा, चाहे वह कैसा ही अत्याचारी, अविवेकी और व्यभिचारी क्यों न हो, ईश्वर का अंश समझा जाता था। प्रजा उसके अत्याचारों से चाहे त्राहि-त्राहि करने लग जाय, चाहे सती स्त्रियाँ अपने सतीत्व की रक्षा के लिए आत्मघात करने पर उतारू हो जायँ, पर राजा के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं निकाला जाता था, क्योंकि वह ईश्वर का अंश था!

राजनीतिक अन्धश्रद्धा का यही स्वाभाविक परिणाम है। इसका अन्तिम फल यह होता है कि राजाओं के अत्याचार आज़ादी पाकर भड़क उठते हैं। वे (राजा) लोग अकर्मण्य, मूर्ख और विलासी हो जाते हैं, जिससे राज्य की शक्तियाँ शिथिल हो जाती हैं। अन्त में ऐसे राजे स्वयं किसी विदेशी राज्य-सत्ता के द्वारा नष्ट होते हैं, और अपने नाश के साथ-साथ प्रजा के पैरों में भी एक अनिश्चित काल के लिए ग़ुलामी की ज़न्जीरें डाल जाते हैं।

(२) युद्धनीति भी राजनीति का एक अङ्ग है। इस युद्धनीति पर भी अन्धश्रद्धा का बड़ा भयङ्कर परिणाम होता है। युद्ध-कला में भी व्यक्तिवाद का भूत घुस जाता है। एक सेनापति या एक झण्डे के ऊपर सारे युद्ध का दारमदार रहता है। समीपवर्ती जय के समय, यदि दैवयोग से सेनापति या विजय-पताका का पतन हो जाता है तो सारे युद्ध का पासा पलट जाता है। विजय पराजय में बदल जाती है। राजा दाहिर, राणा साँगा, दाराशिकोह आदि योद्धाओं के पतन इस भयङ्कर युद्ध-नीति के ज्वलन्त प्रमाण हैं।

पराजित शत्रु के साथ सज्जनोचित व्यवहार करना प्राचीन युद्धनीति का एक नियम था। पर इस नियम के पीछे शत्रु की पात्रापात्रता पर विचार करने का अपवाद छिपा हुआ था। यह नियम उसी स्थान पर काम में लाया जाता था जब दोनों पक्ष समकक्ष, उदार और एक ही नीति को मानने वाले होते थे। इस नियम का मतलब मनुष्य के साथ मनुष्यत्व का व्यवहार करना था, न कि पशु या मनुष्यत्वहीन मनुष्य के साथ उदार व्यवहार करना। सिकन्दर ने पोरस के साथ और चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस के साथ सज्जनोचित व्यवहार किया। उनका यह व्यवहार अवश्य स्तुत्य था। क्योंकि वह व्यवहार समकक्ष और मनुष्यत्वयुक्त शत्रु के साथ था। इस नियम में भी अन्धश्रद्धा का प्रवेश हुआ। लोगों ने "शत्रु के साथ सज्जनोचित व्यवहार करना चाहिए", इस ढाँचे को तो पकड़ लिया, पर इस ढाँचे की आत्मा को, जोकि शत्रु की पात्रापात्रता की परीक्षा करने पर ज़ोर देती है, छोड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि पृथ्वीराज ने मुहम्मद ग़ोरी के समान नृशंस शत्रु को बार-बार पकड़ कर भी छोड़ दिया, और अन्त में स्वयं अपने तथा अपने देश के पैरों में ग़ुलामी की ज़ञ्जीरें डलवा लीं। भीमसिंह ने अलाउद्दीन के समान नरपशु को राजमहल में लाकर पद्मिनी का रूप दिखाया, फिर स्वयं उसको पहुँचाने उसके ख़ीमे में गए और इस प्रकार हज़ारों हत्याओं और राज्य-पतन के कारण बने।

(३) इसी प्रकार किसी प्रकार के राजनैतिक आन्दोलन में भी अन्धश्रद्धा की वजह से व्यक्तिवाद का सिद्धान्त घुस जाता है। कोई भी राजनैतिक नेता यदि मैदान में आगे बढ़ता है तो लोग उसके व्यक्तित्व के उपासक हो जाते हैं। जिन सिद्धान्तों की वजह से वह व्यक्ति पूजा जाता है, कुछ समय के पश्चात लोग उसके व्यक्तित्व की धुन में आकर उन सिद्धान्तों को भूल जाते हैं और उसके व्यक्तित्व की पूजा करने लगते हैं। यदि वह कुछ ग़लत बातें भी कहता है तो लोग भेड़ियाधसान की तरह उसके पीछे लग जाते हैं। इसका कारण यह कि लोग विचारों की पूजा की अपेक्षा व्यक्ति-पूजा ही को अधिक महत्व देने लगे हैं। अन्धश्रद्धा का यह स्वाभाविक और विषमय परिणाम है।

समाजनीति में अन्धश्रद्धा

(१) समाज की रक्षा के निमित्त जिस शास्त्र की योजना होती है, उसे समाजशास्त्र कहते हैं। समाजशास्त्र

के विधान को समाजनीति कहते हैं। भिन्न-भिन्न समय के सामाजिक नेता अपने समय की परिस्थिति के अनुसार इन नियमों में परिवर्तन और परिवर्द्धन (नवीन नियमों की रचना) करते रहते हैं। समाजशास्त्र-सम्बन्धी नियम इतने अधिक परिवर्तनशील होते हैं कि यदि समय-समय पर शीघ्रता के साथ उनमें परिवर्तन न कर दिया जाय तो वे समाज के लिए भयङ्कर और घातक हो उठते हैं।

किसी भी नियम या सिद्धान्त में परिवर्तन करना विवेक और बुद्धि का काम है। विवेकप्रधान समाज में ये परिवर्तन समय-समय पर घटित होते रहते हैं। पर जब समाज में अन्धश्रद्धा का प्रादुर्भाव हो जाता है तब यह परिवर्तन बन्द हो जाता है, और समाज एक ही प्रकार के नियमों को पकड़ कर उन्हें हर काल और हर परिस्थिति में चरितार्थ करना चाहता है। परिणाम यह होता है कि उस समय के पोषक नियम इस समय शोषक हो जाते हैं और समाज सर्वनाश के अतल गह्वर की ओर प्रगतिशील होता है। न मालूम किस परिस्थिति और किस काल में मनु महाराज ने कह दिया होगा कि

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा............॥

बस इससे उनका 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति'—यह विधान हमेशा के लिए विधिवाक्य हो गया ! आज इस स्वतन्त्रताप्रधान युग में भी हम इस प्रकार के असामयिक श्लोकों की दुहाई देकर अपने समाज की जड़ में कुल्हाड़ा मार रहे हैं।

(२) इसी प्रकार व्यक्तिवाद की उपासना के कारण समाज में सैकड़ों भिन्न-भिन्न जातियाँ बन जाती हैं। एक-एक व्यक्ति के नाम से एक-एक जाति चल निकलती है। इन जातियों में रोटी-बेटी का भेदभाव होने के कारण जातीय कलह उत्पन्न हो जाता है। इन जातियों की उत्पत्ति किन्हीं ख़ास सिद्धान्तों पर नहीं, प्रत्युत व्यक्तियों के नाम पर होती है। इसी प्रणाली के कारण भारत में आज १८,००० जातियाँ विद्यमान हैं। इसी प्रकार विवाह-प्रणाली और अन्य रीति-रिवाजों में भी अन्धश्रद्धा की वजह से भयङ्कर विश्रृङ्खला उत्पन्न हो जाती है।

(३) प्राचीन काल में—जिस समय के सामाजिक नियमों को मानने का हम दावा करते हैं—धर्म-परिवर्तन का कोई प्रश्न समाज में उपस्थित न था। उस समय ईसाई, मुसलमान आदि मिशनरी धर्मों का भारत में प्रवेश नहीं हुआ था। अतएव यदि उस समय के विधानों में शुद्धि का कोई विधान न मिले तो कोई आश्चर्य नहीं। उसके बहुत दिनों पश्चात भारत में इस्लाम धर्म का प्रवेश हुआ। मुसलमानों ने धड़ाधड़ हिन्दुओं को मुसलमान बनाना प्रारम्भ किया। हिन्दुओं के बड़े-बड़े सामाजिक नेता इस भीषण दृश्य को हाथ पर हाथ धरे देखते रहे, पर उसका कोई प्रतिकार न कर सके, क्योंकि मनु महाराज ने या पराशर ऋषि ने अपनी स्मृतियों में शुद्धि की कोई व्यवस्था न दी थी। और मनु तथा पराशर के सिवा किसी तत्कालीन नेता की व्यवस्था उन्हें मान्य न थी। इस प्रकार व्यक्तिवाद के पञ्जे में पड़ कर धीरे-धीरे सारा देश ग़ुलामी के पाश में बद्ध हो गया और पवित्र आर्य-भूमि पर चिरकाल के लिए इस्लाम धर्म के पैर मज़बूती से जम गए।

(४) यही हालत विवाह-प्रणाली की भी हुई। अन्धश्रद्धाप्रधान समाज को बाल-विवाह मञ्ज़ूर, वृद्ध-विवाह-मञ्ज़ूर, अनमेल-विवाह मञ्ज़ूर, पर विधवा-विवाह मञ्ज़ूर नहीं ! विधवा के साथ व्यभिचार कर लेना मञ्ज़ूर, उसके ओठ से ओठ मिलाना भी मञ्ज़ूर, पर उसके हाथ का खाना मञ्ज़ूर नहीं ! गुप्त रूप से भ्रूण-हत्या मञ्ज़ूर, पर प्रगट में विधवा के सन्तान होना मञ्ज़ूर नहीं ! ये सब बातें अन्धश्रद्धा ही के भयङ्कर परिणाम हैं।

धर्मनीति में अन्धश्रद्धा

(१) राजनीति और समाजनीति की अपेक्षा धर्म-नीति में घुसी हुई अन्धश्रद्धा और भी अधिक भयङ्कर होती है। धर्मनीति के अन्तर्गत अन्धश्रद्धा का समावेश हो जाने से मज़हब की उत्पत्ति हो जाती है, जिसके फल-स्वरूप समाज में क़ौमी जहालत—जोकि अन्य सब जहालतों से भयङ्कर है—उत्पन्न हो जाती है।

डॉ० टैगोर ने एक स्थान पर लिखा है—"जब धर्म एक आध्यात्मिक बात न होकर बाहरी तथा ऊपरी आचार-विचार की बात हो जाती है, तब उसके बराबर अशान्ति फैलाने वाली दूसरी कोई बात संसार में नहीं होती। उस समय धर्मनीति के सम्बन्ध में "पेनी वाइज़, पाउण्ड फ़ूलिश" (Penny wise, pound foolish) वाली

कहावत चरितार्थ होने लगती है। उसका फल यह होता है कि जितनी कड़ी ऐंठन पड़ती जाती है, गिरह उतनी ही ढीली होती जाती है।" ठीक यही स्थिति धर्म के अन्तर्गत अन्धश्रद्धा या व्यक्तिवाद के घुस जाने से उत्पन्न होती है।

राजनीति और समाजनीति ये ऐसी वस्तुएँ हैं, जो एक प्रत्यक्ष सिद्धान्त से सम्बन्ध रखती हैं। इनका शुभाशुभ परिणाम हम लोगों को हाथोंहाथ देखने को मिल जाता है। अतएव इनके अन्तर्गत घुसी हुई अन्ध-श्रद्धा चाहे दीर्घ काल तक रहे, पर अति दीर्घ काल तक बलवती नहीं रह सकती। पर धर्मनीति एक ऐसी वस्तु है जो किसी प्रत्यक्ष सिद्धान्त से सम्बन्ध नहीं रखती, प्रत्युत वह एक अप्रत्यक्ष, अगोचर और अदृश्य सिद्धान्त से सम्बन्ध रखती है। इहलौकिक सुख-दुःख से उसका अधिक सम्बन्ध नहीं रहता, प्रत्युत उसका सम्बन्ध एक ऐसे स्थान से रहता है जहाँ का सच्चा इतिहास आज तक दुनिया को मालूम नहीं हुआ। अतएव इसके अन्दर घुसी हुई जहालत भी अमर हो जाती है।

(२) धार्मिक अन्धश्रद्धा के परिणाम-स्वरूप धर्म के अन्तर्गत भी व्यक्तिवाद का उदय हो जाता है। यह धार्मिक व्यक्ति कहीं ईश्वरीय दूत के नाम से, कहीं पैग़म्बर के नाम से और कहीं अवतार के नाम से पुकारा जाता है। असल में ये पूजनीय पुरुष बहुत महान और उदाराशय रहते हैं, पर इनके उपासक इनके वास्तविक रूप को बिगाड़ कर इन्हें अपनी मौरूसी जायदाद बना लेते हैं। सब मज़हबों का इस विषय में एक ही सिद्धान्त रहता है, पर अविवेक और अन्धविश्वास के कारण इन भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के उपासकों में भयङ्कर मतभेद खड़ा हो जाता है और ये लोग धर्म के नाम पर हमेशा एक दूसरे का सिर तोड़ने को तैयार रहते हैं।

मतलब यह कि मज़हब की स्थिति ही अन्धश्रद्धा पर है। कोई भी मज़हब अपनी आज्ञाओं के लिए बुद्धिग्राह्य युक्तियाँ नहीं बतला सकता। इसके लिए उन्हें धर्म-ग्रन्थों, ईश्वर के कहे हुए वाक्यों तथा पुजारियों के आदेशों का सहारा लेना पड़ता है। और जब ज्ञान का इस प्रकार बहिष्कार किया जाता है तो कोई आश्चर्य नहीं कि मज़-हबवादियों के कार्य भी ज्ञान से शून्य और पशुवत हों। इसी ज्ञान के बहिष्कृत होने की वजह से मज़हब के आदेशों में और मज़हबवादियों के आचरण में इतना विरोध दिखलाई देता है। अन्धविश्वास पर स्थित होने के कारण ही, नैतिक सिद्धान्तों को मानते हुए भी, मज़-हब उन पर व्यवहार नहीं करता। ईश्वर की एकता तथा मनुष्य-मात्र के भ्रातृत्व को मानते हुए भी मज़हब ने असंख्य निरपराधों का ख़ून किया है, इतने लोगों की हत्या की है कि उनकी हड्डियाँ एकत्रित होने पर संसार के सभी मीनारों से ऊँची हो जायँगी, लोगों को इतनी यन्त्रणाएँ पहुँचाई हैं कि उनके सामने मज़हब-कल्पित नरक की यन्त्रणाएँ भी शायद फीकी पड़ जाती हैं।

संसार के इतिहास में जितना रक्तपात, जितनी ख़ून-ख़राबी, जितने युद्ध-कोलाहल मज़हबी जहालत की वजह से हुए हैं, उतने शायद किसी दूसरे कारण से न हुए होंगे। "डॉगमा" अर्थात शास्त्र-मत को बाह्य दृष्टि से देखने के कारण ही यूरोप का इतिहास ख़ून से रँगा हुआ है। आज से चार सौ वर्ष पहले का यूरोप का इतिहास भयङ्कर क़ौमी-जहालत का इतिहास है, जिसके पन्ने रोमन कैथौलिकों और प्रोटेस्टेण्टों के ख़ून से रँगे हुए हैं। इस्लाम धर्म के हज़ार वर्षों का इतिहास भी क़ौमी-जहालत के रक्तपात में ओतप्रोत है, जिसके अन्दर "एक हाथ में क़ुरान और दूसरे हाथ में तलवार" वाले मनुष्यत्व और तर्क-विहीन सिद्धान्त को आश्रय दिया गया है। सारांश यह कि दुनिया का जितना बड़ा अनिष्ट धर्म में अन्धश्रद्धा के घुसने की वजह से हुआ है, उतना किसी दूसरे कारण से नहीं हुआ।

(३) धर्मनीति के अन्तर्गत अन्धविश्वास के घुस जाने से एक और बड़े भारी अनर्थ का सूत्रपात हो जाता है। समाज के गले में मानसिक ग़ुलामी के—जोकि अन्य सब प्रकार की ग़ुलामियों से अधिक भयङ्कर है—बन्धन पड़ जाते हैं। समाज मानसिक ग़ुलामी के कीचड़ में आकण्ठ मग्न हो जाता है। उसकी तर्कशक्ति और विवेक-शक्ति लुप्त हो जाती है। उसे ऐसी बातें मानने के लिए मजबूर होना पड़ता है, जो उसके विचार और विवेक के बिलकुल ख़िलाफ़ होती हैं। पर पाप के डर से उसे वे सब बातें मानना ही पड़ती हैं।

मनुष्य की सृष्टि किस प्रकार हुई ? पुराण कहते हैं कि शेषशायी भगवान के कमलनाल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, उन्हीं ब्रह्मा ने मनुष्य जाति की उत्पत्ति की। इस पर

कोई शङ्का करे तो वह नास्तिक, उसके लिए स्वर्ग का द्वार बन्द। क़ुरान और बाइबिल कहते हैं कि छः हज़ार वर्ष पहले ख़ुदा ने छः दिन तक कड़ी मेहनत करके सब जीवों की सृष्टि की और सातवें दिन इतवार को छुट्टी मनाई। इस पर यदि कोई शङ्का करे तो वह काफ़िर, उसके लिए जन्नत का रास्ता बन्द। तीर्थङ्कर भगवान जब पैदा हुए, उसके पहले उनके माता-पिताओं के यहाँ छः मास तक रत्न-वृष्टि हुई और उनके पैदा होते ही इन्द्र उन्हें कैलास पर्वत पर ले गए। वहाँ एक योजन लम्बे, एक योजन चौड़े और एक योजन गहरे—ऐसे-ऐसे १००८ कलशों से उन्हें स्नान करवाया। क्या तुम्हें शङ्का होती है कि इतने अधिक जल को तुरन्त के पैदा हुए बालक ने कैसे सहन किया होगा? यदि होती है तो तुम अविश्वासी हो, दस जन्मों तक तुम्हें तिर्यग्योनि में भटकना होगा।

यदि हम कहें कि ब्राह्मण के लोटे का पानी गन्दा है, पीने के योग्य नहीं, और शूद्र के लोटे का पानी निर्मल है, वह पिया जा सकता है, तो लोग कहेंगे कि बेहूदा बकता है, यह बात शास्त्र के सिद्धान्तों से उलटी है। यदि हम कहें कि उलटी है तो हुआ करे, हम इसी को मानते हैं, तो हुक़्क़ा-पानी बन्द, ब्याह-शादी बन्द, यहाँ तक कि मरने पर कोई श्मशान ले जाने वाला भी न मिले!

अन्धश्रद्धा के युग में पाप करना जितना आसान है, पाप से छूटना भी उतना ही आसान है! लाख पाप कर लो—चोरी कर लो, व्यभिचार कर लो, विश्वासघात कर लो—एक बार गङ्गा जी में स्नान किया नहीं कि सब धुल कर साफ़, एक बार ब्रा ण-भोजन कराया नहीं और सब स्वाहा। जन्म के पापी को मरते वक़्त एक बार राम का नाम सुना दो, थोड़ा सा गोबर और तुलसी के पत्ते उसके मुख में डाल दो, बस बैकुण्ठ का मार्ग उसके लिए साफ़ हो गया।

मज़हब ही के प्रताप से भिन्न-भिन्न देशों और भिन्न-भिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के ईश्वर की कल्पना हुई। कैसा आश्चर्य है कि एक ही ईश्वर अनेक मतों को उत्पन्न करके संसार के असीम दुःख और हानि का कारण बन गया। अन्धश्रद्धा के प्रताप से प्रत्येक जाति का अलग-अलग ईश्वर हो गया और उसने पृथक-पृथक रीति-रिवाजों पर अपनी मुहर लगा दी।

बातें अवश्य कुछ कड़वी और नवीन मालूम होंगी, और सम्भव है, कुछ पाठक इसको पढ़ कर हम पर नास्तिकता का भी आरोप करने लगें, पर हमें जो सत्य दिखलाई दे रहा है उसे कहने में हम कभी कुण्ठित न होंगे। हमारी समझ है कि ईश्वर की इन भिन्न-भिन्न कल्पनाओं से संसार का हित-साधन तो बहुत कम हुआ है, पर अनिष्ट-साधन बहुत अधिक हो रहा है। किन्तु इनके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने का साहस कोई नहीं करता। अगर कोई करे तो वह समाज के कोप का भागी होगा, उसके द्वारा उत्पीड़ित होगा। भला ईश्वर के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई जाय, और वह भी एक मनुष्य के द्वारा! कायरता की यह दीवार एक चराचर व्यापी भय के ऊपर चुनी हुई है। इसके प्रताप से सोते-जागते, खाते-पीते, हमेशा मनुष्य के सामने एक हौआ उपस्थित रहता है। जब से इस कल्पना का उदय हुआ है, तब से शायद एक दिन भी मनुष्य जाति सुख की नींद न सोई होगी। सारी मनुष्य जाति इस मानसिक ग़ुलामी की दृढ़ ज़ञ्जीरों से जकड़ी हुई है। मानसिक स्वाधीनता की आनन्दमयी किरण के दिव्यदर्शन उसने आज तक नहीं किए। बैर, विद्वेष, रक्तपात और हत्याकाण्ड तो इस (ईश्वर) नाम की आड़ में जितने हुए हैं, उन्हें देख-सुन कर मनुष्यता की आत्मा काँप उठती है!! कहाँ तो ईश्वर का पवित्र रूप और कहाँ यह भयङ्कर हौआ!

अन्धबुद्धि के कुपरिणाम

अन्धश्रद्धा की तरह अन्धबुद्धि भी समाज के लिए बहुत भयङ्कर है। जब तक बुद्धि के अन्तर्गत सात्विक श्रद्धा का अंश रहता है, तब तक उससे समाज फलता-फूलता है। पर श्रद्धा का अंश निकल जाने पर उसका रूप बहुत भयङ्कर हो जाता है। जिस प्रकार अन्धश्रद्धा से जड़वाद और मज़हब की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार अन्धबुद्धि से समाज में नास्तिकता का प्रचार हो जाता है। अन्धश्रद्धा में तर्क, विचार और विवेक को स्थान नहीं रहता, अन्धबुद्धि सहानुभूति, आतृभाव, प्रेम और मनुष्यत्व को स्थान नहीं देती।

अन्धश्रद्धा का परिणाम है:—

राम नाम को छोड़ कर करे और को जाप।
ताके मुख में दीजिए नौसादर को भाप॥

अन्धबुद्धि का परिणाम है —

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

दोनों ही स्थितियाँ समाज के लिए अनिष्टकारक हैं।

(१) राजनीति के अन्तर्गत अन्धबुद्धिवाद के घुस जाने पर देश में राजनैतिक शान्ति एक दिन भी स्थिर नहीं रह सकती। प्रतिदिन नवीन राजा और नवीन प्रणालियों का आविष्कार होता है, मानव-हृदय में विश्वास के लिए स्थान नहीं रह जाता। इसी प्रकार राजनैतिक आन्दोलन में अन्धबुद्धिवाद के घुस जाने से आन्दोलन की सात्विकता नष्ट हो जाती है। मनुष्य के प्राणों का मूल्य बहुत ही कम हो जाता है। बात-बात में हत्या और रक्तपात के भीषण दृश्य देखने को मिलते हैं।

(२) समाजनीति में अन्धबुद्धिवाद के घुसने से व्यभिचार, पारस्परिक व्यवहार-भ्रष्टता, सामाजिक अपवित्रता आदि समाज का पतन करने वाले अनेक साधन उत्पन्न हो जाते हैं। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावत चरितार्थ होने लगती है। समाज के स्वास्थ्य, सौन्दर्य और तेज को बनाए रखने वाले कुल साधन नष्ट हो जाते हैं। सामाजिक मर्यादा का बाँध, जिस पर समाज की रक्षा अवलम्बित है, टूट जाता है।

(३) धर्मनीति में अन्धबुद्धि का प्रवेश होने पर समाज में नास्तिकता का समावेश हो जाता है। समाज का चरित्र-बल गिर जाता है। सदाचार और पाप-पुण्य के विचार—जो समाज की रक्षा के लिए आवश्यक है—नष्ट हो जाते हैं। धर्म की महत्ता, विश्वास का सौन्दर्य और कर्त्तव्य की पवित्रता खो जाती है। आध्यात्मिकता दूर हो जाती है और भौतिकवाद का जय-जयकार होने लगता है।

अन्धश्रद्धा का प्रत्यक्ष उदाहरण भारतवर्ष है। अन्धबुद्धि का कुछ अंश आधुनिक यूरोप में पाया जाता है। भारतवर्ष के पतन के मूल कारणों की गहरी खोज करते-करते जब हम तह तक पहुँचते हैं तो हमें एक ही ख़ास सिद्धान्त इसके पतन के कारणों में मिलता है। वह है अन्धश्रद्धा की अन्धी उपासना। यदि भारतवर्ष अपनी राजनीति, समाजनीति और धर्मनीति में विवेक और दूरदर्शिता को साथ रखता तो कदापि उसका पतन न होता। और आज भी यहाँ राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलनों में इच्छित सफलता न मिलने का प्रधान कारण यही है कि इस समय भी हम लोगों की नस-नस में अन्धश्रद्धा की भावना प्रवाहित हो रही है। नेता समाज की इस भयङ्कर मनोवृत्ति का अध्ययन न कर, अन्य देशों की तरह अपना आन्दोलन प्रारम्भ कर देते हैं और अन्त में असफल होकर निराशा की एक ठण्डी साँस के साथ कह देते हैं कि देश तैयार नहीं है। हमारा तो यह विश्वास है कि जब तक भारतवर्ष की मनोवृत्ति में वाञ्छनीय परिवर्तन न होगा और उससे अन्धश्रद्धा दूर न हो जायगी, जब तक लोग अन्धश्रद्धावाद की ओर से हट कर बुद्धिवाद की ओर अग्रसर न होंगे, तब तक देश में कोई भी आन्दोलन पूर्ण रूप से सफल न हो सकेगा।

वाञ्छनीय स्थिति

हम ऊपर श्रद्धा और बुद्धि दोनों की संक्षिप्त वैज्ञानिक मीमांसा कर आए हैं। हम बतला चुके हैं कि मनुष्य-समाज की उन्नति के लिए इन दोनों ही गुणों की बड़ी आवश्यकता है। साथ ही हम यह भी बतला आए हैं कि इन दोनों में से किसी एक गुण का अतिरेक हो जाने पर वह समाज के लिए कितना भयङ्कर हो जाता है और उससे समाज की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थिति में क्या-क्या अनिष्ट हो सकते हैं। अब हम यह बतला देना चाहते हैं कि समाज के लिए उत्कृष्ट और वाञ्छनीय स्थिति क्या है।

मनुष्य जाति की उन्नति के लिए एक ऐसी वस्तु की आवश्यकता है जो श्रेय और प्रेय दोनों गुणों से युक्त हो। केवल श्रेय रूखा और अरुचिकर होता है, उसे मानव जाति कड़वी औषधि के समान ज़बरदस्ती चाहे ग्रहण कर ले, पर उत्साहपूर्वक, आग्रह के साथ उसे ग्रहण नहीं कर सकती। इसी प्रकार केवल प्रेय मधुर तो होता है, पर मोहप्रदायक होता है। इसलिए वह मनुष्य जाति को आगे नहीं बढ़ा सकता। अतएव उसके लिए ऐसी वस्तु चाहिए जो श्रेय हो, पर अरुचिकर न हो, उसकी अरुचि को मिटाने के लिए उसमें प्रेय का कुछ अंश मिलाना ही पड़ेगा।

हम ऊपर कह आए हैं कि बुद्धि "श्रेय" गुण से सम्पन्न है और श्रद्धा "प्रेय" गुणयुक्त है। इन दोनों का ऐसा सम्मिश्रण समाज के मनोजगत में उत्पन्न किया

जाय, जो उक्त कथन के अनुकूल हो, तभी समाज की मानसिक दशा का सुधार हो सकेगा। जब विवेक के साथ विश्वास का और भाव के साथ विचार का एक नियमित मात्रा में मेल हो जायगा, तब विवेक की रुखाई और विश्वास की मोहकता दोनों नष्ट होकर उनके द्वारा एक गुणकारी पदार्थ तैयार हो जायगा। श्रद्धा अन्धी है और बुद्धि लँगड़ी। इनका अन्ध और पङ्गु के समान जब संयोग हो जायगा, तभी समाज की गाड़ी आगे बढ़ सकेगी।

लेकिन अभी हमारे देश के लिए दिल्ली दूर है। अभी तो हम लोग अपने बड़े-बूढ़ों की आन लेकर बैठे हैं। 'हमारे बड़े-बूढ़ों ने क्या ऐसा किया था जो हम करें?' ऐसा कहते समय हम इस बात पर ध्यान देना बिलकुल आवश्यक नहीं समझते कि यदि हमारे बड़े-बूढ़ों के सभी काम निर्दोष होते तो उनके कारण देश के पैरों में ग़ुलामी की बेड़ियाँ क्यों पड़तीं? हमारा यह आज़ाद देश उन्हीं के समय में ग़ुलाम हुआ है, अतः यह प्रत्यक्ष है कि उनके कार्यक्रम में कोई भयङ्कर त्रुटि अवश्य थी। और जब तक हम उस त्रुटि को दूर न कर लेंगे, तब तक हमारा उद्धार नहीं हो सकता। उनके सद्गुणों को ग्रहण करना विवेक है, पर भेड़ियाधसान की तरह उनके सभी अच्छे-बुरे कामों का अनुमोदन करना भयङ्कर अन्ध-विश्वास।

यह अन्धविश्वास हमारी राजनीति, समाजनीति और धर्मनीति तीनों में से दूर हो जाना चाहिए। ख़ास कर धर्मनीति से तो इसका दूर हो जाना अत्यन्त आवश्यक और अपेक्षित है। हमारे धर्म की भित्ति सदाचार की नींव पर स्थित होना चाहिए। अभी तक हमारा धर्म और हमारा ईश्वर हमारे आगे एक प्रकार का हौआ बन कर खड़ा रहता है। हम लोग पाप और पुण्य तथा स्वर्ग और नरक के प्रलोभन तथा भय से धर्म की रक्षा कर रहे हैं। यदि हम धर्म की आज्ञा के विरुद्ध कार्य करेंगे तो हमारा ईश्वर हमें दण्ड देगा, वह हमें दोज़ख़ या नरक में पहुँचा देगा, और यदि हम उसकी इच्छा के अनुसार काम करेंगे तो हमें स्वर्ग मिलेगा, इत्यादि। प्रलोभनों और भय के कारण ही हम इस ओर प्रवृत्त होते हैं। वस्तुतः हमारे मन में ईश्वर अथवा धर्म के प्रति कोई आन्तरिक सद्भावना नहीं होती। इस प्रकार की स्थिति अपेक्षणीय नहीं है। इस प्रकार का धर्म हमारे शरीर और आत्मा के ऊपर चिपका हुआ रह सकता है, पर वह उसमें ओतप्रोत नहीं हो सकता। जिस दिन हमें यह मालूम हो जायगा कि यह ख़ाली हौआ है, उसी दिन हमारा नङ्गा रूप नज़र आ जायगा और हमारे बराबर नास्तिक कोई भी न दीख पड़ेगा। इस प्रकार का धर्म बालू की दीवार की तरह क्षणस्थायी होता है। ऐसे धर्म से समाज का उपकार नहीं हो सकता। वास्तव में होना यह चाहिए कि हम धर्म के भीषण रूप को देख कर उसे ग्रहण न करें, प्रत्युत उसके सौन्दर्य को देख कर उसे ग्रहण करें, जिससे धर्म की आत्मा हमारी आत्मा में ओतप्रोत हो जाय। यह तभी हो सकता है जब धर्म की नींव किसी हौए पर नहीं; प्रत्युत सदाचार पर स्थित हो, जब लोग सदाचार की महत्ता को और उसके सौन्दर्य को हृदय से समझ जायँ। जिस दिन लोग त्याग के आनन्द को, बन्धुत्व की विशालता को, सत्य के स्वरूप को हृदय से समझ जायँगे, उसी दिन धर्म की सच्ची प्रतिष्ठा क़ायम होगी। फिर किसी दण्ड और पुरस्कार देने वाले ईश्वर की तथा स्वर्ग और नरक की आवश्यकता ही न रहेगी। उस दिन स्वर्ग स्वयं मनुष्य जाति का स्पर्श पाने के लिए, छटपटाता हुआ संसार में उतर आवेगा। उस दिन धर्म हमारी आत्मा में ओतप्रोत हो जायगा। कौन कह सकता है कि यह स्थिति केवल कल्पना ही में रहेगी या कभी उसका प्रत्यक्ष स्वरूप भी नज़र आवेगा?

आशा की किरण

पर इसके लिए निराश होने की कोई बात नहीं। आशा के चिन्ह धीरे-धीरे दिखलाई दे रहे हैं। आशा की किरण पश्चिम की विज्ञान-भूमि से उत्पन्न होकर क्रमशः समग्र संसार में फैल रही है। यूरोप की बर्फ़मयी भूमि से उत्पन्न होकर बुद्धिवाद का प्रकाशमय युग सारे संसार में अपनी प्रकाशमयी किरणें डालने लगा है। पश्चिम ने हमारा (भारत का) और संसार का चाहे जितना ही अपकार क्यों न किया हो, पर उसने यह एक बड़ा भारी उपकार किया है, और हम बड़े कृतघ्न होंगे यदि पक्षपात के मद में आकर उसके इस उपकार को स्वीकार न करेंगे।

हम जानते हैं कि पश्चिम को अभी बहुत कुछ सुधार करने पड़ेंगे। उसकी वर्तमान स्थिति अभिनन्दनीय नहीं है। इस समय वह भौतिकता के प्रवाह में बह रहा है। पर चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। एक दिन अवश्य ऐसा आवेगा जब उसे आध्यात्मिक सौन्दर्य को ग्रहण करना पड़ेगा। केवल ग्रहण ही नहीं करना पड़ेगा, बल्कि भौतिक सौन्दर्य की अपेक्षा उसे उच्च स्थान देना पड़ेगा। वह आध्यात्मिक सौन्दर्य किसी कल्पित ईश्वर का बतलाया हुआ न होगा। वह निर्विकार सत्य का अखण्डित सौन्दर्य होगा। इसलिए हमें पश्चिम की इस गतिविधि से घृणा न करना चाहिए, प्रत्युत इसका हृदय से अभिनन्दन करना चाहिए। जिस दिन पश्चिम भौतिक सौन्दर्य के साथ आध्यात्मिक सौन्दर्य को जोड़ देगा, जिस दिन वह ज्ञान और विज्ञान की एकता स्थापित कर देगा, उसी दिन पूर्व और पश्चिम का तथा भौतिकता और आध्यात्मिकता का एक महा सम्मेलन होगा। यह सम्मेलन दिखाऊ नहीं, प्रत्युत आन्तरिक होगा। वही स्थिति संसार के लिए अभिनन्दनीय होगी। उसी दिन बुद्धि की, मरुभूमि के समान उत्तप्त छाती पर श्रद्धा का शीतल झरना बहने लगेगा।

ओस

[पं० जयनारायण झा 'विनीत' विद्यालङ्कार]

(१)

स्नेहमय स्निग्ध साधना-दीप
तपस्या की पूजा अभिराम।
सजा जब विह्वल व्योम-प्रतीप
निभृत निशि मन्दिर में छविधाम॥

(२)

छिड़क देता है अपना प्यार
बना जीवन को अस्तव्यस्त।
और, वह जलजों पर सुकुमार,
भिगा देता है अवनि समस्त॥

(३)

ओस कहता उसको संसार,
उपेक्षा से करता है मोल।
देख कलुषित जग का व्यापार
हृदय हो जाता डाँवाडोल॥

(४)

उषा के स्यन्दन से अनुराग
अरुण ले लेता हाथ पसार।
समझ कर ऊषा का उपहार
उसे कर लेता वह स्वीकार॥

(५)

और वह बन रत्नाभ ललाम
तुम्हारे उर का होता हार।
प्रेम की पीली किरनें उसे
धरणि में देतीं समुद पसार॥

(६)

साधना जीवन का अनमोल
प्राण का यह प्रियतम उपहार।
वेदना के बन्धन को खोल,
इसे भी कर लो अङ्गीकार॥

(७)

बढ़ा अनुराग-अरुण-कर देव!
पुकारो इसको लेकर नाम।
छिपा लो फिर अन्तर में कहीं,
पा सके यह भी कुछ विश्राम॥

(८)

बनूँ मैं भी यदि हे समुदार!
व्योम-सा उज्ज्वल पारावार।
सदा को हो यह मेरा हृदय
तुम्हारा सिंहासन सुकुमार॥

मुक़द्दमेबाज़ी

(१)

बैठा रहा द्वार के ऊपर दीन मोअक्किल जब दिन रात,
तब वकील साहब के दर्शन मिले, हुई उनसे दो बात !
मिलता है उनका मिज़ाज ही नहीं, बिगड़ कर बारम्बार—
कहते हैं वे, "एक मिनट में कह अपनी बातों का सार" !!
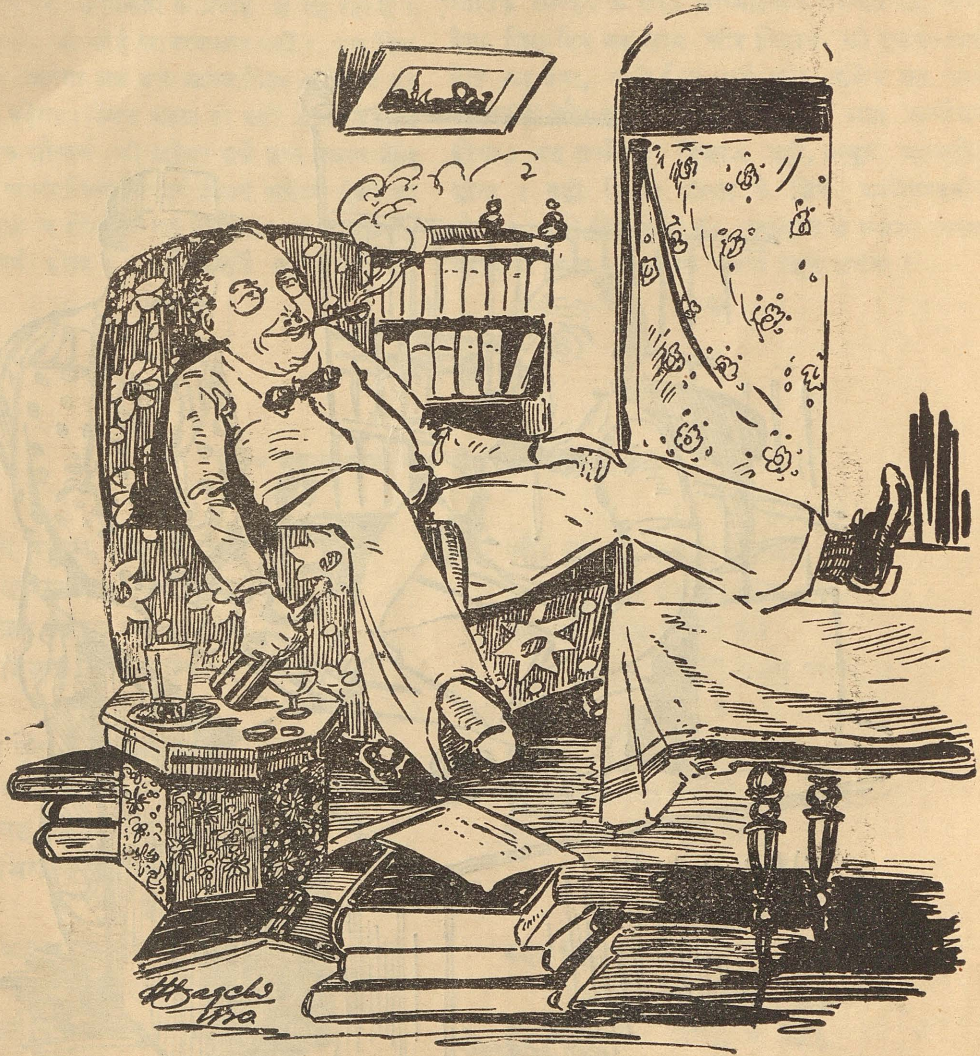
फैलाए हैं पैर, लिए हैं हाथों में बोतल प्यारी,
ऊँघ ऊँघ कर बड़े मुक़दमे की करते हैं तय्यारी !
बेसमझे सुलझा लेते हैं वे उसकी उलझन सारी,
कहना है कुछ न कुछ अदालत में, ले चुके फ़ीस भारी !
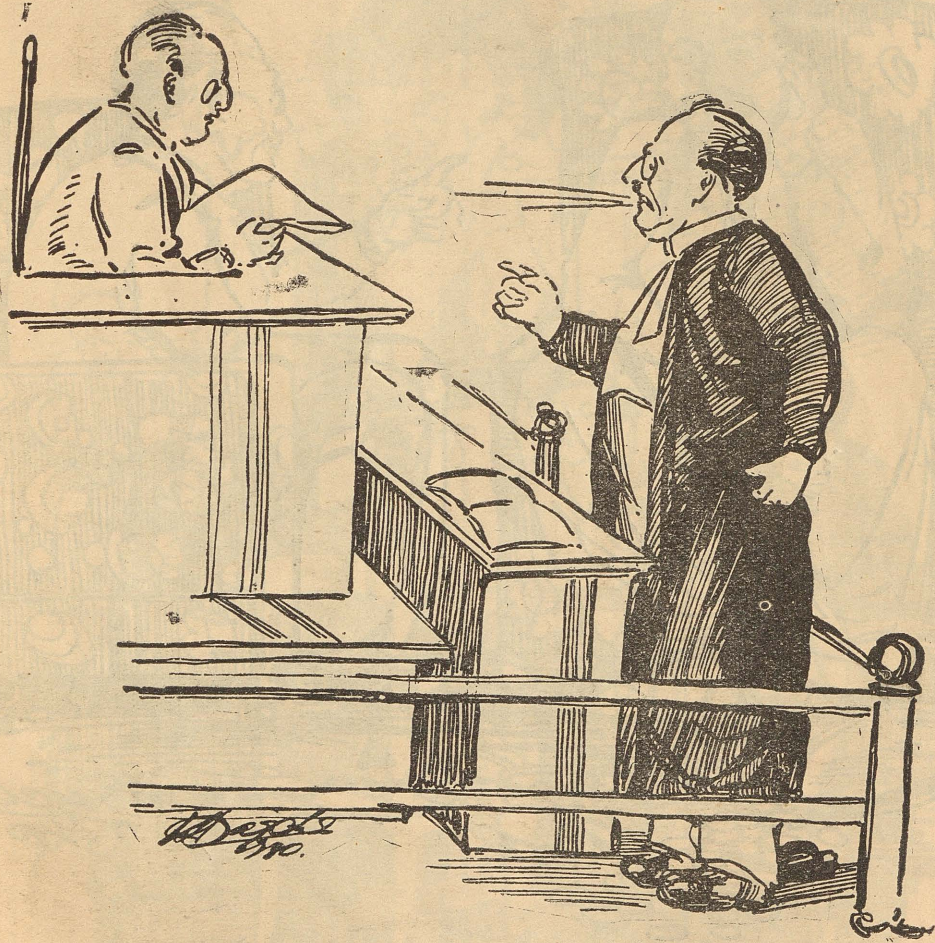
कुछ का कुछ बक गए अदालत में वे, गया मुअक्किल हार,
आकर बाहर कहा मुअक्किल से, भाई मैं था लाचार !
साहब समझे नहीं मुक़दमा, मैंने समझाया बहु बार,
सुना नहीं क्या तुमने ? उनको कितनी बतलाई फटकार ?

अजी सिड़ी था यह साहब तो, जो तुम गए मुक़दमा हार,
तुम्हें जिता दूँगा अपील में, इसका लेता हूँ मैं भार !
इतने में क्या होगा ? गहने लाओ और अधिक दस बीस,
जब जीतोगे मौज करोगे, दे दो थोड़ी तो है फ़ीस !!
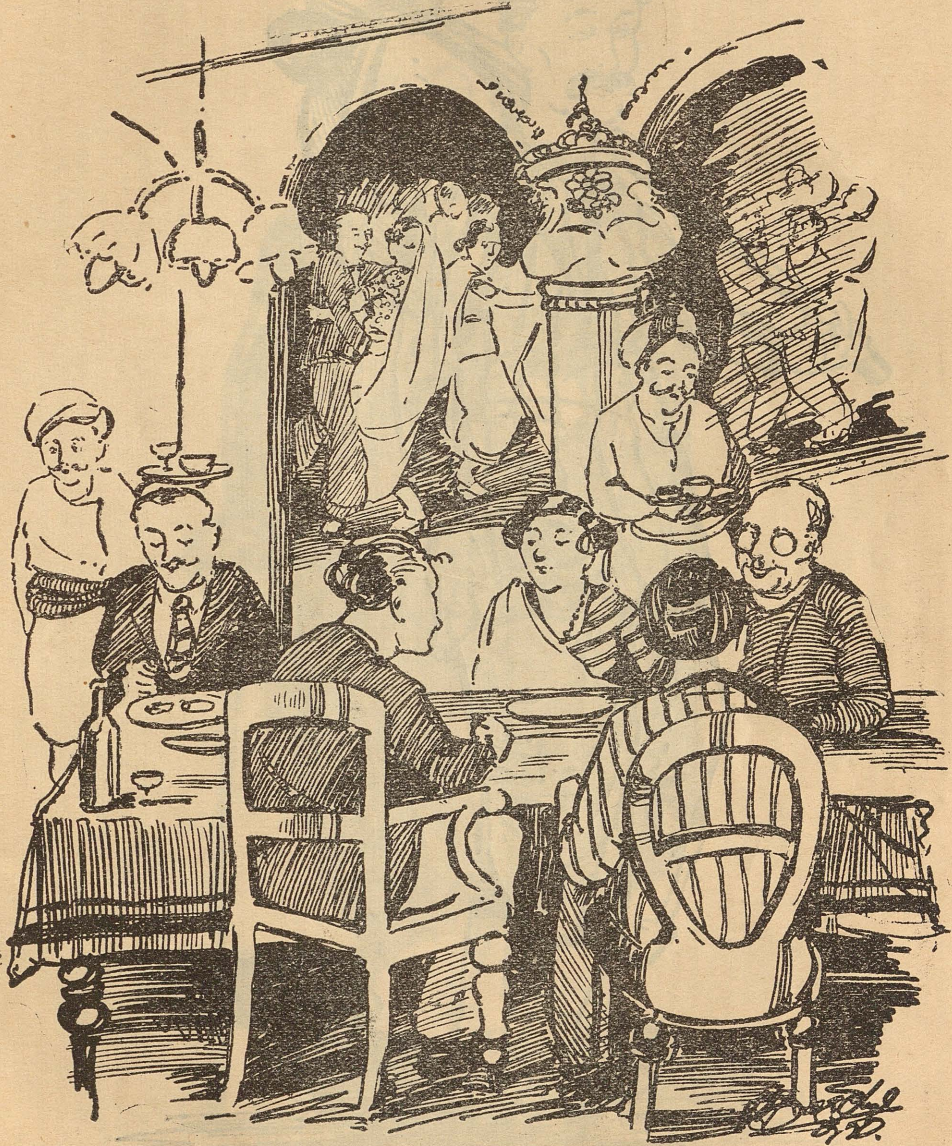
पाई फ़ीस, उन्होंने दे दी है लम्बी-चौड़ी दावत,
है शराब भी, और 'बॉल' भी, सब कुछ है, कुछ पूछो मत !
करते भी वकील साहब हैं यों अपील की तय्यारी,
और जीत जाने की है उम्मीद मोअक्किल को भारी !!

हार, भिखारी बना राह का फिरता है मारा मारा,
कर ही क्या सकता वकील का भला मोअक्किल बेचारा !
क्या जाने क्या-क्या उनको वह मन ही मन देता है श्राप,
क्यों रुपया दे दिया, लड़ा क्यों, उसके ही शिर है सब पाप !!

मस्त हुए वकील साहब हैं पाकर बड़े मौज से धन,
जितना मोटा उनका तन है, उतना ही छोटा है मन !
कैसे भी हो इस दुनियाँ में उनकी बात गई है बन,
आन-बान है, बड़ी शान है, साहब-सा है रहन-सहन !!

जितनी लगी कोर्ट-फ़ी वह तो मार ले गई है सरकार,
पाया जो वकील ने उसका वहन कर सके क्या वे भार ?
ले लेकर सामान विदेशी, भेज उसे भी दिया विदेश !
दोनों झोली मिली जॉनबुल को, इसमें सन्देह न लेश !!
यों वकील साहब लुटा रहे मुक्त हस्त से अपना देश !!
क्यों न भारतीयों को होवे उनके कारण क्लेश विशेष !!!

—आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव

कन्या का जन्म

[श्री० मदारीलाल जी गुप्त]

पढ़ते-पढ़ते आँख झपकने लगी तो गोकुलप्रसाद ने पुस्तक अलग रख दी। स्त्री से बोले—सो गई क्या ?

गनेशी ने उत्तर में कहा—हाँ, अब नींद आती है।

गोकुलप्रसाद—ज़रा पाँव दाब दो।

गनेशी—नींद आती है।

गोकुलप्रसाद—अरे ज़रा दाब दो। तुम तो......

गनेशी—कल दाब देंगे।

गोकुलप्रसाद—कल क्या.........

गनेशी—आधी रात तक तो तुम किताब देखते रहते हो, बुलाने से बोलते नहीं। अब कहते हो, पाँव दाब दो।

उसके बाद दोनों सो गए।

गोकुलप्रसाद ने देखा कि एक अच्छा बढ़िया सजा हुआ कमरा है। टेबिल है, कुरसी हैं, पलँग है, मसहरी है, पङ्खे हैं, तस्वीरें हैं, बहुत सी चीज़ें हैं। रेशम की डोरी से लटकता हुआ एक सुन्दर पालना भी है। उसमें मख़मली गद्दी बिछी है। और—और उस पर एक सुन्दर बच्चा लेटा हुआ है। हाथ-पैर पटक कर खेल रहा है। गुलाब के समान मुख और पानी से भरी ताज़ी चमकदार आँखें देख कर गोकुलप्रसाद का मन आनन्द से भर गया। फिर आँख खुल गई। सवेरा हो चुका था। सफ़ेदी अच्छी तरह फैल चुकी थी।

उन्होंने स्त्री को धीरे से जगाया—सनती हो ! ए !

गनेशी आँख खोलते ही उठ बैठी—सवेरा हो गया !

गोकुलप्रसाद ने उसे फिर लिटा कर कहा—आज एक बड़ा अच्छा सपना देखा है।

गनेशी—कैसा सपना ?

गोकुलप्रसाद—बड़ा अच्छा।

गनेशी—कहो भी।

गोकुलप्रसाद—देखा है कि राजों के ऐसा ठाट-बाट का महल है। उस महल के एक शानदार कमरे में एक सुन्दर बच्चा पालने में पड़ा झूल रहा है—ऐसा सुन्दर कि क्या बतावें ? और वह बच्चा हमारा ही है। सवेरे का सपना सच होता है न ?

गनेशी—क्या जानें, कहते तो हैं।

गोकुलप्रसाद भविष्य की आनन्दमयी कल्पना से पुलकित होकर बोले—अगर कहीं यह सच हो जाय ?

गनेशी मुस्करा कर बोली—हो जायगा।

गोकुलप्रसाद इतनी जल्दी अपनी मनोकामना की सिद्धि देख कर जैसे चकित होकर बोले—सच ?

गनेशी—सच, तीन महीने का है।

वह दिन बड़ी हँसी-ख़ुशी में बीता।

रात को गोकुलप्रसाद ने एकाएक पूछा—क्यों जी, तुमने और पहले क्यों नहीं बताया ?

गनेशी—अब तो बता दिया।

गोकुलप्रसाद—बस, मैं ईश्वर से सिर्फ़ एक लड़का चाहता हूँ। और वह लड़का ऐसा हो कि दुनिया में अपना नाम कर दे।

२

कुछ दिन बाद दोपहर को गोकुलप्रसाद जब घर आए तो मालूम हुआ कि ससुर आए हैं।

गनेशी ने कहा—छुट्टन का विवाह लग रहा है। ठीक हो गया तो बैसाख में हो जायगा। दद्दा हमको लेने आए हैं। क्या कहते हो ?

गोकुलप्रसाद—विवाह लग रहा है ? लग जाने दो, चली जाना।

गनेशी—अभी न जायँ ?

गोकुलप्रसाद—अभी जाकर क्या करोगी ?

गनेशी—दद्दा लेने आए हैं।

गोकुलप्रसाद—फिर आ जायँगे।

गनेशी—अच्छा, फिर आ जायँगे ? उतनी दूर से आए हैं, ख़ाली लौट जायँ ? फिर आवें, तुम फिर लौटा दो। हम तो जायँगे।

गोकुलप्रसाद—अभी तो जाना नहीं हो सकता। उनको पहले से चिट्ठी भेज देनी थी। हम कह देते, ले जाओ, तब आते। ऐसे ही क्यों चले आए ?

गनेशी—तुम भी तो ऐसे ही जाकर कई बार ले आए हो।

गोकुलप्रसाद—कहाँ, कई बार ? एक बार शायद गए थे।

गनेशी—अच्छा, एक ही बार सही। तो एक बार वह भी आए हैं।

गोकुलप्रसाद ने प्रेम से स्त्री का मुँह चूम कर कहा—नहीं, मेरी रानी, अभी मत जाओ। देखो, तुम चली जाओगी तो हम यहाँ अकेले कैसे रहेंगे ?

गनेशी—तुम तो बड़ी मुश्किल करते हो।

गोकुलप्रसाद—मुश्किल तुम्हीं करती हो। हमें अकेले छोड़ कर जाने कहती हो। तुम्हीं बताओ, हम अकेले यहाँ रह सकेंगे ?

गनेशी—तो तुम भी चले चलो।

गोकुलप्रसाद—न जाओ। देखो, उनसे अच्छी तरह समझा कर कह देना, जिसमें बुरा न लगने पावे।

गनेशी नहीं गई। उसके पिता लौट गए।

गनेशी ने बड़ी उमङ्ग से तरह-तरह के पकवान बनाए। फिर पति के आने की राह देखने लगी। अभी तक तो कब के आ जाते थे, आज नहीं आए। क्या बात है ?

शाम हो गई। घर में अँधेरा हो चला। गनेशी लैम्प जलाने उठी। दियासलाई न जाने कहाँ गुम हो गई थी, मिली नहीं। अभी तो चूल्हा जलाया था। कहाँ रख दी ? आख़िर उसने आलमारी खोल कर दर्जन में से दूसरी डिबिया निकाली और काम चलाया। इसी बीच रसोई-घर में कहीं से एक कुत्ता घुस गया। उसने खोज-खोज कर मनमाना भोजन किया। बर्तनों की भड़भड़ाहट से गनेशी दौड़ी। पर उस समय तक सब साफ़ हो चुका था। कुत्ता जीभ से मुँह पोंछता हुआ बाहर निकल गया। रसोई-घर की हालत देख कर गनेशी को बड़ा ग़ुस्सा आया। झुँझला उठी। पर करती क्या ? बर्तन साफ़ करके फिर से चूल्हा जलाया और खिचड़ी रख दी।

नौ बज जाने पर भी गोकुलप्रसाद नहीं आए। वे बाज़ार में सभा के बीच 'स्त्रियों के विषय में पुरुषों के विचार' पर व्याख्यान दे रहे थे। पुरुष होकर भी वे जाने कैसे और क्यों स्त्रियों के पक्ष में मिल गए थे और उनकी ओर से अपनी जाति के विरुद्ध वकालत कर रहे थे, जैसे स्त्रियों की हीन दशा के सभी दृश्य उनकी ही आँखों के आगे से होकर निकले हों और उन्हें देख कर उनके हृदय में भयानक आग धधक उठी हो। उन्होंने कहा—"कन्या के जन्म को ही लोग अशुभ समझते हैं। उसके पैदा होने पर शोक मनाया जाता है। लड़का होता तो कुछ नाम करता। अरे भाइयो, नाम करने वाले लड़कों की जननी यही लड़कियाँ ही होती हैं...।" और भी बहुत सी बातें उन्होंने कहीं। लोगों ने वाह-वाह की। मित्रों ने बधाई दी।

घर लौटते-लौटते ग्यारह बज गए। गनेशी सो गई थी। कई बार बुलाने पर भी जब उसने दरवाज़ा न खोला, तब गोकुलप्रसाद ने सन्धि में से हाथ डाल कर स्वयं ज़ञ्जीर खोल डाली। गनेशी को जगाया—उठो, ज़रा परस दो। ज़ोर से भूख लगी है।

गनेशी—कितने बजे हैं ?

गोकुलप्रसाद—ग्यारह।

गनेशी—अब आए हो ?

गोकुलप्रसाद—सभा हो रही थी। वहीं था। उठो तो, भूख लगी है।

गनेशी—जाकर परस खाओ।

गोकुलप्रसाद—उठो ज़रा। तुम तो—

गनेशी—परस लो भाई जाकर, हमको मत सताओ।

गोकुलप्रसाद—तुमने खा लिया ?

गनेशी—भूख नहीं है।

गोकुलप्रसाद—सवेरे ही खाया था, अभी तक भूख नहीं लगी ?

गनेशी खीझ कर बोली—नहीं लगी, तुम जाते क्यों नहीं ?

गोकुलप्रसाद भी कुछ बिगड़ उठे—तो तुम न उठोगी ?

गनेशी—नहीं।

गोकुलप्रसाद ने चिल्ला कर कहा—न उठोगी ?

गनेशी—नहीं।

"अच्छा !"—कह कर गोकुलप्रसाद ने कपड़े उतार और बिस्तर पर दूसरी पाटी पर करवट लेकर लेट रहे।

मन का क्रोध दूध के उफ़ान की तरह बाहर निकला पड़ता था। जब न रोक सके, तो गनेशी को एक लात मार कर कहा—उठ यहाँ से। अपना अलग बिछा कर लो।

वह चुपचाप उठ गई। अपराध उसका ही था। मन ही मन पछताने लगी, पर अभिमान के मारे कुछ बोली नहीं। उस सूने बिस्तर पर गोकुलप्रसाद को अच्छा न लगा। कुछ देर तक पड़े-पड़े जब नींद न आई तो उन्होंने उठ कर फिर कपड़े पहने और ज़ोर से किवाड़ भड़भड़ा कर बाहर निकल गए। सोचा, कहाँ जाऊँ? नाटक की याद आ गई। वहीं चले गए। तीन बजे घर लौटे। तब तक मन कुछ शान्त हो चुका था। लेटते ही नींद आ गई। सवेरे साढ़े नौ बजे तक सोते रहे। उठ कर हाथ-मुँह धोने के बाद ही गनेशी ने आकर कहा—चलो, खा लो। बन गया है।

गोकुलप्रसाद ने एक हाथ से कमीज़ के बटन लगाते हुए दूसरे से खूँटी पर से कोट उतारा। भारी गले से बोले—नहीं।

वे जाने लगे तो गनेशी ने कोट का छोर पकड़ लिया। बोली—खाते जाओ।

गोकुलप्रसाद हाथ झटक कर चले गए।

गनेशी ने पीछे से कहा—तुमको ऐसा ही करना था तो दद्दा के साथ हमें भेज क्यों न दिया?

गोकुलप्रसाद ने मुड़ कर ज़ोर से कहा—अभी लिख दो चिट्ठी, आकर ले जायँ।

गनेशी ने चिट्ठी के बदले तार दे दिया। दूसरे ही दिन उसके पिता आए और उसे लिवा ले गए।

४

पहले चार-छः दिन, जब तक क्रोध बना रहा, तब तक तो गोकुलप्रसाद को कुछ न मालूम पड़ा, पर बाद में अकेले रहना असह्य हो उठा। एक महीना बीतते न बीतते उन्होंने पत्र लिखा—यहाँ रोटी-पानी की बड़ी तकलीफ़ है, जल्दी भेजिए। वहाँ से उत्तर आया—आपके यहाँ थोड़े दिनों में बाल-बच्चा होने वाला है। वहाँ कुछ ठीक प्रबन्ध न हो सकेगा। तब तक यहीं रहने दीजिए, बाद में भेज देंगे। और लिखा था कि यहाँ का दशहरा बड़ा अच्छा होता है। चार दिन के लिए आप ज़रूर आवें।

वहाँ दशहरा करने का प्रस्ताव गोकुलप्रसाद को भी ख़ूब जँचा। तीसरे दिन वे रवाना हो गए। इस बार ससुराल में पहले की अपेक्षा उनका अधिक आदर-सत्कार हुआ। लड़के का बाप होने वाले थे न? सास-ससुर को नाती मिलना था, इसीसे। छोटी साली और उससे भी छोटा साला दिन-रात में सैकड़ों बार 'जीजा-जीजा' करते आते थे और तरह-तरह की मनोरञ्जक बातें करके गोकुलप्रसाद का मन प्रसन्न करते थे। शाम को ज़रा देर के लिए वे घूमने निकल जाते थे। बाक़ी दिन-रात घर में ही बीतती थी।

साली का नाम था गोमती। बारह-तेरह बरस की थी। साले का नाम गोपाल था। वह नौ-दस बरस का होगा। एक दिन गोमती ने कहा—जीजा, हमें क्या चीज़ दोगे?

गोकुलप्रसाद ने मतलब नहीं समझा। पूछा—क्यों?

गोमती—लड़का खेलाओगे तब न कहोगे क्यों? क्यों न छुट्टन?

गोपाल सिर हिला कर बोला—हूँ।

गोमती—बोलो, क्या दोगे?

गोकुलप्रसाद—हम ग़रीब आदमी क्या दे सकते हैं?

गोमती—अच्छा, बड़े ग़रीब आदमी!

गोपाल—ग़रीब आदमी!

गोमती—हमको एक अच्छी सी रेशमी साड़ी देना, बस।

गोकुलप्रसाद—अच्छा।

गोपाल—और हमको एक छोटी सी घड़ी देना, जीजा। यहाँ रक्खेंगे। देखो, इस जेब में।

गोकुलप्रसाद—अच्छा।

इसी तरह के मधुर वार्तालाप में मालूम ही नहीं पड़ता था कि समय कहाँ चला जाता है? बड़े मज़े के साथ दशहरा और उसके बाद बारह-पन्द्रह दिन और निकल गए।

स्त्री से उनकी बहुत कम मुलाक़ात होती थी। इतने दिनों में ज़रा-ज़रा देर के लिए कुल तीन ही बार दोनों मिले। पहिली बार की मुलाक़ात में गोकुलप्रसाद ने कहा—कहो, अच्छी तरह तो रहीं?

गनेशी—हाँ, तुम तो अच्छी तरह रहे?

गोकुलप्रसाद—अच्छी तरह।। खड़ी क्यों हो? बैठो न।

गनेशी—अब जाएँ, कोई देख लेगा।

गोकुलप्रसाद—देख लेगा तो क्या होगा? आओ बैठो।

गनेशी—नहीं, अब जाएँ। फिर आएँगे।

गोकुलप्रसाद घर लौटे तो एकदम लड़के की चिन्ता सिर पर सवार। कब होगा? पाँच महीने बीत चुके हैं। चार और बाक़ी हैं। पास-पड़ोस के और शहर के सब छोटे लड़के उनको सुन्दर जँचने लगे। सबके प्रति उनके हृदय में प्रेम उत्पन्न हो गया। किसी चञ्चल लड़के को देखते तो मन में कहते, कैसा उछलता-कूदता चलता है? मेरा लड़का भी ऐसा ही हो तो अच्छा। किसी बातूनी लड़के को देख कर कहते, कैसा अच्छा बोलता है? मेरा लड़का भी ऐसा ही निकले तो ठीक। नटखट लड़कों को देख कर वह बहुत ख़ुश होते, छोटे लड़के बदमाश होते ही हैं; पर उनकी बदमाशी में कितना रस भरा रहता है! किसी को गोद में छोटा बच्चा लिए देखते तो जी ललच कर रह जाता। इसी तरह दिन पर दिन बीतने लगे।

नौ महीने बीत जाने पर एक-एक दिन गिन-गिन कर कटने लगे। रोज़ सवेरे और शाम को गोकुलप्रसाद डाकिए की राह देखते बैठे रहते—कहो, कुछ लाए हो? डाकिया कभी नाहीं कर देता और कभी कहता—हाँ बाबू जी, एक चिट्ठी है। बड़ी आतुरता से गोकुलप्रसाद झपट कर पत्र लेते। कभी तो वह पत्र किसी मित्र का निकल जाता कभी ससुराल का भी होता तो उसमें सिर्फ़ राज़ी-ख़ुशी की बात लिखी रहती। अन्त में वह पत्र भी आया, जिसकी इन्तज़ारी थी। लिखा था, फागुन बदी तेरस को आठ बजे रात को शुभ मुहूर्त्त में कन्या का जन्म हुआ है।

पत्र गोकुलप्रसाद के हाथ से छूट गया। आँखों के सामने अँधेरा छा गया। सिर चकराने लगा। संसार जैसे सूना हो गया। ऐसी दशा हो गई, जैसे कोई विद्यार्थी कठिन परिश्रम करने पर भी, पूरी आशा रहते हुए परीक्षा में फ़ेल हो गया हो।

फ़रियादे बिस्मिल

[कविवर 'बिस्मिल']

किस तरह का है यह मज़मून समझता हूँ मैं।
आपकी बात को क़ानून समझता हूँ मैं॥

लड़ने वाले जान लें इस रङ्ग में हर्गिज़ नहीं।
मेल में जो लुत्फ़ है वह जङ्ग में हर्गिज़ नहीं॥

काम आएगा यही गुन, बस यही गुन सीखिए।
सीखनी है धुन अगर तो देश की धुन सीखिए॥

इससे हो जाती है ज़ाहिर पॉलिसी सरकार की।
पढ़ लिया करता हूँ अक्सर सुर्ख़ियाँ अख़बार की॥

हज़रते 'बिस्मिल' कहें क्योंकर कि हममें ज़ोर है।
वह लिखे हर रङ्ग में, जिसकी क़लम में ज़ोर है॥

कुमारी कृष्णा नेहरू

आप त्यागमूर्ति पण्डित मोतीलाल नेहरू की विदुषी सुपुत्री हैं। इलाहाबाद में विदेशी कपड़े की दूकानों पर पिकेटिङ्ग करने में आपने जिस अपूर्व सहनशीलता और अदम्य उत्साह का परिचय दिया है, वह स्त्री-मात्र के लिए अनुकरणीय है।

मालिका

जिसके रचयिता हैं—
हिन्दी-संसार के सुपरिचित

कवि और लेखक—पं० जनार्दनप्रसाद झा, 'द्विज' बी० ए०

यह वह 'मालिका' नहीं, जिसके फूल मुरझा जायँगे, यह वह 'मालिका' नहीं, जो दो-एक दिन में सूख जायगी ; यह वह 'मालिका' है, जिसकी ताज़गी सदैव बनी रहेगी। इसके फूलों की एक-एक पङ्खुरी में सौन्दर्य है, सौरभ है, मधु है, मदिरा है। आपकी आँखें तृप्त हो जायँगी, दिमाग़ ताज़ा हो जायगा, हृदय की प्यास बुझ जायगी, आप मस्ती में झूमने लगेंगे।

आप जानते हैं, द्विज जी कितने सिद्धहस्त कहानी-लेखक हैं। उनकी कहानियाँ कितनी करुण, कोमल, रोचक, घटनापूर्ण, स्वाभाविक और कवित्वमयी होती हैं। उनकी भाषा कितनी वैभवपूर्ण, निर्दोष, सजीव और सुन्दर होती है। इस संग्रह की प्रत्येक कहानी करुण-रस की उमड़ती हुई धारा है, तड़पते हुए दिल की जीती-जागती तस्वीर है। आप एक-एक कहानी पढ़ेंगे और विह्वल हो जायँगे ; किन्तु इस विह्वलता में अपूर्व सुख रहेगा।

इन कहानियों में आप देखेंगे मनुष्यता का महत्व, प्रेम की महिमा, करुणा का प्रभाव, त्याग का सौन्दर्य ! आप देखेंगे वासना का नृत्य, मनुष्य के पाप, उसकी घृणा, क्रोध, द्वेष आदि भावनाओं का सजीव चित्रण ! आप देखेंगे कि प्रत्येक कहानी के अन्दर लेखक ने किस सुगमता और सचाई के साथ ऊँचे आदर्शों की प्रतिष्ठा की है।

इसलिए हमारा आग्रह है कि आप 'मालिका' की एक प्रति अवश्य मँगा लीजिए, नहीं तो इसके बिना आपकी आलमारी शोभाहीन रहेगी। हमारा दावा है कि ऐसी पुस्तक आप हमेशा नहीं पा सकते। अभी मौक़ा है—मँगा लीजिए ! मूल्य केवल ४) रु०

व्यवस्थापिका, 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद
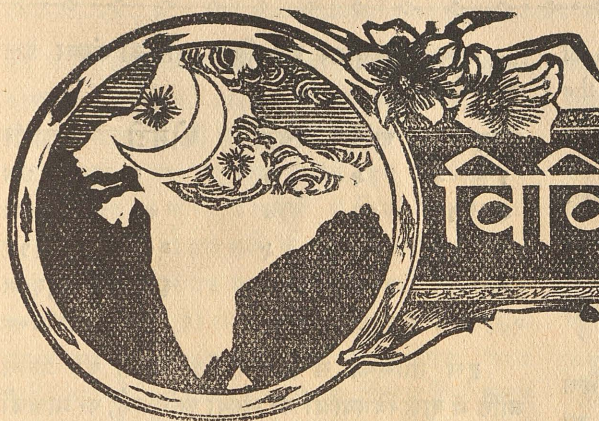
मद्रास प्रान्त में विधवा-विवाह समस्या

मद्रास प्रान्त कट्टरपन का गढ़ समझा जाता है। जात-पाँत, छुआछूत, बाल-विवाह, इत्यादि सामाजिक दोष उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में अधिक भयानक रूप से विद्यमान हैं। देवदासी प्रथा तो इसी प्रान्त की उपज है। विधवा-विवाह का विरोध भी और प्रान्तों की अपेक्षा दक्षिण में अधिक है। हमें मद्रास में रहने और उसके कई ज़िलों में घूमने का अवसर मिला है। अपने कुछ थोड़े से अनुभव के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि विधवा-विवाह की समस्या दक्षिण भारत में बड़ा विकट रूप धारण किए हुए है।

सन् १९२०-२१ की गणना-रिपोर्ट के अनुसार मद्रास प्रान्त में कुल हिन्दू स्त्रियों की संख्या १,९२,४६,१०४ थी, जिनमें विधवाओं की संख्या ३७,१२,६६५ थी। आयु के अनुसार इनकी संख्या इस प्रकार है :—

० से १ वर्ष तक	६२
१ " २ " "	४८
२ " ३ " "	१६३
३ " ४ " "	२६६
४ " ५ " "	६१२
५ " १० " "	५,६५१
१० " १५ " "	२२,२०६
१५ " २० " "	५४,६६६
२० " २५ " "	१,४२,१३७
२५ " ३० " "	२,०२,६५१

१५ वर्ष तक की विधवाओं की संख्या सन् १९०१, १९११ और १९२१ में इस प्रकार थी :—

० से ५ वर्ष तक

सन् १९०१	६१६
" १९११	६७०
" १९२१	१,१६४

५ से १० वर्ष तक

सन् १९०१	२,७३२
" १९११	४,०५३
" १९२१	५,६५१

१० से १५ वर्ष तक

सन् १९०१	१८,०१५
" १९११	१८,२५१
" १९२१	२२,२०६

ज़रा देखिए, किस प्रकार बाल-विधवाओं की संख्या सन् १९०१ से सन् १९११ में और सन् १९११ से सन् १९२१ में लगातार बढ़ती गई है। अन्य प्रान्तों में विधवा-विवाह के प्रचार के द्वारा जहाँ इन बाल-विधवाओं की संख्या को कम करने का प्रयत्न किया जा रहा है, वहाँ मद्रास प्रान्त में इनकी उत्तरोत्तर वृद्धि से क्या यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि उधर अभी इस सुधार के प्रचार की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जा रहा है? गणना-रिपोर्ट के पृष्ठ १०२ पर लिखे निम्न वाक्य से हमारे कथन की पुष्टि होती है :—

"The variation between the returns for 1911 and those for 1921 is very slight . . . . . . The

greatest difference is in the high proportion of widows found in Madras, due, of course, to the custom which in certain castes forbids the re-marriage of widows."*

अर्थात—"सन् १६११ और सन् १६२१ की गणनाओं में बहुत मामूली अन्तर है।..............परन्तु सबसे बड़ा भेद विधवाओं की संख्या में है, जोकि मद्रास में पाई जाती हैं। इसका कारण कुछ जातियों में विधवाओं के पुनर्विवाह पर रुकावट का होना है।"

दक्षिण भारत में विधवा-विवाह का सबसे अधिक विरोध ब्राह्मणों की ओर से होता है। शारदा एक्ट का भी जितना विरोध मद्रास से, और उसमें भी विशेषतः ब्राह्मणों की ओर से, हुआ उतना—बङ्गाल को छोड़—शायद अन्य किसी प्रान्त से नहीं हुआ। इन ब्राह्मणों में बाल-विवाह का अतिशय प्रचार और विधवा-विवाह का घोर विरोध है, इसीका यह फल है कि उनमें विधवाओं की संख्या मद्रास प्रान्त की अन्य जातियों की अपेक्षा सबसे अधिक है। सन् १६२१ की गणना-रिपोर्ट के अनुसार इस प्रान्त में सम्पूर्ण ब्राह्मण स्त्रियों की संख्या २,२८,१८८ थी, जिनमें विधवाओं की संख्या ५५,०२४ थी। आयु के अनुसार इन ब्राह्मण विधवाओं का व्यौरा इस प्रकार है :—

०—५ वर्ष तक	... ...	११
५—१२ ,, ,,	... ...	१५४
१२—१५ ,, ,,	... ...	५४०
१५—२० ,, ,,	... ...	१,६६२
२०—४० ,, ,,	... ...	१३,६४८

मद्रास प्रान्त की अन्य प्रधान जातिओं में विधवाओं की संख्या इस प्रकार है :—

नाम जाति	स्त्रियों की कुल संख्या	विधवाओं की संख्या
क्षत्रिय ...	६३,६११ ...	६,८१०
चैट्टी (वैश्य) ...	१८,२३१ ...	३,२३२
कोमटी (वैश्य)...	६४,१७४ ...	२२,०३१
वल्लाला (शूद्र) ...	५,१४,८२२ ...	६०,४४१

* *Census Report for Madras Presidency Part II, p. 102.*

आयु के अनुसार इन विधवाओं की संख्या इस प्रकार है :—

आयु	क्षत्रिय	चेट्टी	कोमटी	बल्लाला
१ से ५	५	०	२	४८
५ " १२	१६	७	७३	१८८
१२ " १५	८६	५	२१७	२१३
१५ " २०	३६२	४०	६६६	१,२०८
२० " ४०	२,३६८	८१२	६,१८७	२१,४०८*

इस तालिका से स्पष्ट है कि मद्रास की प्रत्येक जाति में बाल-विधवाओं की संख्या अधिक है, पर ब्राह्मणों में तो सबसे अधिक है।

इस बाधित वैधव्य का परिणाम क्या हो रहा है? वही जो सर्वथा स्वाभाविक और अनिवार्य है, अर्थात् कुलक्षय, जातिक्षय और दुराचार-वृद्धि। मद्रास प्रान्त के मालाबार प्रदेश में मुसलमानों का ज़ोर है। वहाँ पर प्रताड़िता और निराश्रया हिन्दू विधवाएँ मुसलमानों के चङ्गुल में फँस, धर्म-भ्रष्ट हो जाती हैं और मुसलमानों की संख्या-वृद्धि का कारण हो रही हैं। इस प्रान्त के अन्य तीन प्रदेशों में—अर्थात् तामिल, तेलगू (आन्ध्र) और कर्नाटक में—हिन्दू विधवाएँ ईसाई पादरियों के आश्रम में चली जाती हैं। इस प्रान्त के ईसाई और मुसलमान दोनों ही हिन्दू विधवाओं को बेधड़क उड़ाते हैं, पर किसी हिन्दू—क्या ब्राह्मण और क्या अब्राह्मण—के कान पर जूँ नहीं रेंगती। कहते हैं, प्रति वर्ष सैकड़ों हिन्दू स्त्रियाँ, जिनमें अधिकांश विधवाएँ होती हैं, मद्रास प्रान्त से भगाई जाकर निज़ाम हैदराबाद पहुँचाई जाती हैं। मद्रास में हमें एक विश्वसनीय व्यक्ति ने बताया था कि दक्षिण भारत की हिन्दू स्त्रियाँ गुण्डों द्वारा उड़ाई जाकर सीलोन (लङ्का) और रङ्गून (बर्मा) तक ले जाई जाती हैं और चूँकि इन देशों में तैलङ्गी (मद्रासी) हज़ारों और लाखों की संख्या में आबाद हैं, इसलिए वहाँ अच्छे दामों पर बेच दी जाती हैं। कुम्भकोणम—जो कुलीन ब्राह्मणों का एक बड़ा गढ़ समझा जाता है—में हमें एक सुधार-प्रेमी वकील ब्राह्मण सज्जन ने बताया कि इस नगर से हर साल दस-पाँच कुलीन ब्राह्मण विधवाएँ नदी के

* देखिए मद्रास प्रान्त की गणना-रिपोर्ट सन् १६२१, भाग २, पृष्ठ १२६।

उस पार मुसलमानों के हाथ चली जाती हैं, पर कुम्भ-कोणम के किसी भी ब्राह्मण को इस भयङ्कर जातिक्षय की ओर ध्यान देने की फ़ुर्सत नहीं है। यही ब्राह्मण, यदि इनका कोई सजातीय बोझ से दबे हुए किसी ग़रीब मजूर के सिर से बोझ उतरवाने के लिए उसका स्पर्श कर ले अथवा ब्राह्मण-रूढ़ि के अनुसार माथे से लेकर नाक के अगले भाग तक सफ़ेद-पीली रेखाओं का टीका न लगावे, तो उसे जाति से बाहर निकालने के लिए तुमुल आन्दोलन करना और पञ्चायत करना अपना "परम धर्म" समझते हैं। विधवा-विवाह का विरोध जिस प्रकार ब्राह्मण करते हैं, उसी प्रकार इस प्रान्त के अब्राह्मण भी करते हैं। जिस प्रकार ब्राह्मणों में विधवाओं का निष्कर्षण, धर्षण और प्रताड़न होता है, उसी प्रकार अब्राह्मणों में भी। इस मामले में दोनों ही समान दोषी हैं। हमें ऐसा कहने की आवश्यकता इसलिए हुई कि दक्षिण भारत में ब्राह्मण-अब्राह्मण में राजनैतिक अधिकारों और सरकारी नौकरियों की छीनाझपटी के लिए प्रायः झगड़े होते रहते हैं। परन्तु जहाँ सामाजिक सुधार का और विशेषतः विधवाओं की रक्षा और उनके विवाह का प्रश्न है, वहाँ दोनों ही रूढ़ियों के ग़ुलाम हैं। मद्रास के कुछ-एक प्रसिद्ध नेताओं से हमने इस विषय में बातचीत की और इस उदासीनता का कारण पूछा। वे कहने लगे कि मद्रास प्रान्त में अभी तक हिन्दू-मुसलिम एकता है। ऐसे प्रश्नों को उठाने से इस एकता में बाधा पड़ने का भय है। इस डरपोक और नीच मनोवृत्ति को हम क्या कहें! इनकी माँ-बहिनों को बेशक विधर्मी उड़ा ले जायँ और धर्मभ्रष्ट करें, पर वे चूँ तक न करेंगे, क्योंकि इससे हिन्दू-मुसलिम एकता नष्ट हो जायगी!! उनके इस तर्क पर हमें हँसी भी आती है और दुःख भी होता है। भला ऐसी एकता का भी कुछ अर्थ है?

इस विरोधपूर्ण और उदासीन मनोवृत्ति का ही यह फल है कि सम्पूर्ण मद्रास प्रान्त में ऐसी बहुत कम संस्थाएँ मिलेंगी जो विधवाओं की रक्षा, उद्धार अथवा उनकी शिक्षा में कुछ विशेष दिलचस्पी लेती हों। और ऐसी संस्थाएँ या आश्रम, जो खुल्लमखुल्ला विधवा-विवाह का प्रचार करते हों, सारे प्रान्त भर में आपको अँगुलियों पर गिनने लायक़ ही मिल सकेंगे। मद्रास प्रान्त के चार भाग हैं—आन्ध्र (तेलगू), तामिल, मालाबार और कर्नाटक। इनमें से विधवा-विवाह के लिए यदि कहीं कुछ प्रयत्न किया जाता है तो वह आन्ध्रप्रदेश में ही। शेष तो सुप्तप्राय ही हैं। जिस प्रकार बङ्गाल में श्रीयुत पं० ईश्वरचन्द विद्यासागर ने सबसे पूर्व विधवा-विवाह का आन्दोलन उठाया था, उसी प्रकार मद्रास प्रान्त में रायबहादुर पं० वीरेशलिङ्गम् पन्तलू इस आन्दोलन के जन्म-दाता हुए हैं। आप आन्ध्र प्रदेश के ही रहने वाले थे और कई वर्ष तक मद्रास नगर के सरकारी कॉलेज में तेलगू के अध्यापक रहे थे। इसी अवसर में आपने विधवाओं की दुर्दशा का अनुभव किया और इसके लिए लेख और वाणी द्वारा ख़ूब आन्दोलन किया। आपने अपने जीवनकाल में कुछ विधवा-विवाह भी कराए थे। आपने मृत्यु से पूर्व अपनी सारी जायदाद का एक ट्रस्ट बना दिया और इसके अधीन आन्ध्र प्रान्त के प्रधान नगर 'राजामुन्द्री' में एक विधवा-आश्रम, एक हाईस्कूल तथा अन्य एक-दो संस्थाएँ क़ायम कीं। इस ट्रस्ट का नाम आपने "हितकारिणी सभा" रक्खा। इस ट्रस्ट द्वारा पहिले तो कई प्रभावपूर्ण विधवा-विवाह हुए, पर हमें बताया गया है कि अब इस सभा के अधिकारी कुछ वर्षों से विधवा-विवाह के प्रचार की ओर विशेष ध्यान न देकर कुछ एक विधवाओं को शिक्षा देने की ओर ही ध्यान देने लगे हैं।

इस संस्था के अतिरिक्त गत ४-५ वर्ष से सर गङ्गाराम ट्रस्ट लाहौर की विधवा-विवाह-सहायक-सभा ने अपना केन्द्र मद्रास नगर में स्थापित किया है। इस केन्द्र के अधीन कई शाखा-सभाएँ मद्रास प्रान्त के भिन्न-भिन्न नगरों में हैं। इस केन्द्र द्वारा प्रति वर्ष कई विधवा-विवाह हो जाते हैं, जिनमें कुछ उच्च कुलों में भी होते हैं। सन् १९२९ में इस शाखा-सभा द्वारा ३५ के लगभग विधवा-विवाह हुए, जिनमें १५ ब्राह्मणों में हुए। इस प्रान्त की जनता यदि विरोध वा उदासीनवृत्ति छोड़ कर कुछ सहायता करे तो इस सभा का कार्य और भी अच्छा चल सकता है।

इतने बड़े प्रान्त में, जिसमें २५ वर्ष से कम उमर वाली विधवाओं की संख्या २ लाख २६ हज़ार १०६ है, जिसके आन्ध्र (तेलगू), तामिल, कर्नाटक, मालाबार, चार बड़े-बड़े प्रदेश हैं, उसमें विधवाओं की रक्षा, उद्धार और उनके विवाह का प्रचार करने वाली केवल दो-एक संस्थाओं का होना क्या इस बात का स्पष्ट प्रमाण नहीं

है कि मद्रास-निवासी हिन्दू अभी तक इस प्रश्न के महत्व को नहीं समझ सके हैं? उत्तर भारत में जहाँ जगह-जगह आर्य-समाज और हिन्दू-सभाओं के अतिरिक्त विधवा-विवाह-सहायक सभाएँ और विधवा-आश्रम इस सुधार के प्रचार में तत्पर हैं, वहाँ दक्षिण भारत में ऐसी सुधारक संस्थाओं और आश्रमों का प्रायः अभाव क्या इस परिणाम पर पहुँचने के लिए हमें बाध्य नहीं करता कि मद्रास प्रान्त अन्य प्रान्तों की अपेक्षा इस सुधार में बहुत पिछड़ा हुआ है? हिन्दू जाति की रक्षा के लिए आवश्यक है कि इस प्रान्त के नेता इस सुधार का शीघ्र और लगन से प्रचार करें। शिक्षा और राजनैतिक आन्दोलन में अग्रसर मद्रासी हिन्दू क्या विधवा बहिनों के प्रति भी अपने कर्त्तव्य का अनुभव करेंगे?

—दीनानाथ, सिद्धान्तालङ्कार

* * *

क्यों और कैसे ?

प्रत्येक मास 'चाँद' के पृष्ठों में अभागिनी बहिनों के पत्र छपा करते हैं, जिनमें स्त्रियों की विवशता और पुरुषों की बर्बरता का चित्रण होता है। सम्पादक महोदय भी उन पत्रों का यथाशक्य उत्तर देने की चेष्टा करते ही हैं, पर वास्तव में यह प्रश्न व्यक्तिगत नहीं, बहुत बड़ा सामाजिक प्रश्न है। यदि समाज इन प्रश्नों की ओर ध्यान न दे और पुरुषों की बर्बरता और स्त्रियों की विवशता तथा शक्तिहीनता को दूर करने का प्रयत्न न करे तो उसके अस्तित्व की कोई विशेष उपयोगिता हमारे जीवन के लिए न रह जायगी। प्रश्न यह है कि क्या पुरुष वास्तव में और स्वभावतः बर्बर और हृदयहीन होते हैं? क्या स्त्रियों का जीवन दुर्बलता और विवशता के सिवा और कुछ नहीं? यदि उन लोगों की यह मानसिक व्यवस्था प्रकृति-निर्मित है, तो इसमें हमारा-आपका क्या दोष? पर यदि ऐसी बात नहीं है तो समाज इसका दोषी है और उसे इस दोष का प्रतिकार करना पड़ेगा।

इस बात पर विचार करने से पता चलता है कि पुरुष उतना ही प्रेममय, श्रद्धायुक्त और सहृदय होता है जितना कि कोई स्त्री; स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान ही सबला, कार्यशीला, और स्वाभिमानिनी होती हैं। फिर हमारे वैवाहिक जीवन में ऐसी असमानता क्यों देख पड़ती है? स्त्रियाँ रोती हैं, इसलिए समाज, धर्म और रूढ़ियों ने उनके गले में अबला होने का तमग़ा डाल दिया है; पुरुष रोते नहीं, वे दुखों को दूर करने में यत्नशील होते हैं। लोग समझते हैं, पुरुष सुखी हैं—हृदयहीन होकर, सबल होकर; पर सच्ची बात यह है कि दोनों ही के मानसिक सङ्कट का पारावार नहीं है।

जीवन सुखी कैसे हो? यदि संस्कृति जीवन को सुखी बनाने में सहायक न हो सके तो इससे वही जीवन अच्छा, जब मनुष्य आनन्दपूर्वक जङ्गलों में विचरण करता फिरता था, वस्त्रों की उसे परवा न थी, फ़ैशन का भूत सवार न था, 'लूट लाना, पीस खाना' ही ध्येय था, प्राकृतिक तृष्णाओं की अबाध्य रूप से तृप्ति कर ली जाती थी। जिस प्रकार कलाओं के ज्ञान से उनके सूक्ष्मतम आनन्द का अनुभव होता है, उसी प्रकार जीवनकला या संस्कृति से जीवन के सूक्ष्मतम आनन्द का अनुभव होना चाहिए। पर होता है ठीक उल्टा, इस संस्कृति ने जीवन को घोर दुखमय बना दिया है।

जीवनकला के बहुत से अङ्ग हैं, पर मेरा मतलब यहाँ स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध से है। जिस प्रकार किसी चित्र में मुख का सौन्दर्य विशिष्ट होता है, उसी प्रकार जीवन के चित्र में स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध प्रमुख है, इससे मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक, सभी प्रेरणाओं की तृप्ति होती है, और सुख की परिणति भी यही है। मनुष्य हज़ार कष्टों को प्यार की एक चितवन पर हँसते-हँसते सह ले सकता है, एक मुस्कुराहट के लिए वह शूली को चूम लेता है, एक चुम्बन पर वह संसार का सारा राज्य न्यौछावर कर सकता है। स्त्रियों में जीवनदायिनी शक्ति होती है और इसी शक्ति का दूसरा रूप मातृत्व है। वास्तव में यदि हमारी संस्कृति ने हमें कुछ दिया है तो वह प्रेम की एक सूक्ष्म, अपूर्व अनुभूति है। पर क्या हम इस प्रेम का यथोचित प्रयोग कर रहे हैं? यदि करते तो इस हाहाकार के बदले संसार में आनन्दोल्लास सुन पड़ता।

सारे संसार में ही विवाह का प्रश्न बड़ा जटिल हो रहा है। लिङ्ग विषय पर बहुत से ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं और प्रतिदिन लिखे जा रहे हैं। वैज्ञानिक मस्तिष्क इस विषय पर अन्वेषण करने में लगे हुए हैं। हैवलॉक

एलिस ने तो इस विषय पर बहुत बड़ी पुस्तक लिख डाली है। स्टोप्स की 'मैरिड लव' (विवाहित प्रेम) भी एक गवेषणापूर्ण रचना है। इसमें वैवाहिक जीवन के सुखी होने के लिए दो-तीन बातों पर विशेष ज़ोर दिया गया है। एक तो है परस्पर का समुचित ज्ञान और विश्वास; दूसरी बात है लिङ्ग-सम्बन्धी उपचारों का सम्यक ज्ञान ; और तीसरी बात, जिस पर लेखिका ने स्त्रियों का ध्यान आकर्षित किया है, यह है कि उनका व्यवहार सदा इस प्रकार का होना चाहिए कि उनके पति बराबर उनका पीछा करते रहें; उनके पति को कभी तृप्ति न हो जाए, बल्कि उनके संसर्ग और उनसे बातचीत करने की लालसा सदा बनी रहे। उन्होंने स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध पर एक रोमाण्टिक छाप लगा दी है। यदि हम जॉन गैल्सवर्दी का अध्ययन करते हैं, वह गैल्सवर्दी जिसने अपने नाटकों और उपन्यासों में जीवन के प्रत्येक अङ्ग पर विचार किया है और जिसने यूरोप के सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक संस्थाओं का बड़ा ही अकपट और निष्पक्ष विश्लेषण किया है, तो पता चलता है कि वहाँ के सामाजिक नियमों में भी कोई सार नहीं रह गया है। उसने अपने उपन्यास 'दि फ़ारसाइट सेज' में यह प्रदर्शित किया है कि स्त्रियों को हज़ार बाहरी स्वतन्त्रता देने पर भी पुरुषों के हृदय के निगूढ़तम प्रदेश में यह भाव छिपा रहता है कि स्त्रियाँ उनकी 'सम्पत्ति' मात्र हैं।

इस उपन्यास में नवयुवती इरेन का विवाह एक बहुत ही धनी पुरुष से होता है। वह पुरुष उससे प्रगाढ़ प्रेम करता है, परन्तु उसके मन में यह भाव बैठा रहता है कि इरेन उसकी सम्पत्ति है। इससे खीझ कर इरेन एक दूसरे ग़रीब नवयुवक से खुल्लमखुल्ला प्रेम करने लगती है और समाज के लाञ्छनों को हँसते-हँसते सह लेती है। इस युवती का चरित्र-चित्रण इस सुन्दर रीति से किया गया है कि इसे कोई बुरा कहने का साहस ही नहीं कर सकता। अपने एक नाटक 'दि फ़ैमिली मैन' में गैल्सवर्दी यहाँ तक पहुँच गया है कि विवाह-सम्बन्ध को ही निषिद्ध ठहराने की उसने चेष्टा की है। उसका कहना है कि विवाह में प्यार की सीमा का अतिक्रमण हो जाता है, क्योंकि पाने की कामना में जो सुख है वह पाने में नहीं। यदि स्त्री-पुरुष परिणय-सूत्र में बद्ध न होकर केवल प्यार के ही सूत्र में बँधे रहें तो जीवन बड़ा ही सुखकर हो। इस नाटक की नायिका किशोरी एथेन अपने पिता से रुष्ट हो दूसरे शहर में रहने लगती है। एक दिन उसका पिता बिल्डर उसे मना लाने जाता है। वहाँ पहुँचने पर पिता देखता है कि एथेन एक युवक के साथ रहती है। बिल्डर मन ही मन जल उठता है, वह पूछता है—एथेन, यह क्या ?

एथेन—'यह क्या' क्या ?

बिल्डर—क्या तुमने इस—इस—के साथ विवाह किया है ?

एथेन (शान्ति से)—हाँ, कार्य-रूप में।

बिल्डर—और क़ानून के अनुसार ?

एथेन—नहीं।

पिता क्रुद्ध होकर चला जाता है। आगे चल कर एथेन अपनी दासी, बालिका एनी को भी, जो एक युवक से प्रेम करती है, इसी प्रकार की सलाह देती है :—

एथेन—मान लो, तुम उसके साथ विवाह कर लेती हो, और बाद को वह अपने घर की चारपाई, मेज़ या कुरसी के समान तुम्हें भी एक 'सामग्री' समझने लगता है, तब ?

एनी—मैं—मैं भी उसके साथ वैसा ही व्यवहार कर सकती हूँ, कुमारी !

एथेन—इस भुलावे में न पड़ो एनी !

एनी—उसका व्यवहार बहुत ही कोमल है।

एथेन—क्योंकि इस समय वह तुम्हें चाहता है; तुम्हारे प्रति उसका अनुराग कम होने दो, और तब देखना वह तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करता है। × × × एनी ! इन सब बातों का रहस्य यह है कि आज जो युवक तुम्हारे प्रेम में दीवाना बना फिरता है, वही—विवाह हो जाने पर—जब यह समझ लेता है कि तुम उससे पृथक नहीं हो सकती तो वह तुम्हारी उपेक्षा करने में भी कुण्ठित न होगा।

एथेन किसी प्रकार विवाह-सूत्र में बँधना नहीं चाहती, पर अपने प्रेमी-युवक गुई को हृदय से प्यार करती है। इसके विपरीत गुई उससे विवाह कर लेना चाहता है, क्योंकि बिना विवाह के कोई उसकी पारिवारिक स्थिति को स्वीकार नहीं करता। एक बार गुई अपनी प्रेयसी को धीरे से विवाह की अँगूठी पहना

देता है। कहता है—देखें तो, यह तुम्हारे हाथ में कैसी शोभती है?

एथेन—गुई, आग के साथ खेल न करो।

लेकिन गुई विवाह के लिए व्यग्र है; वह फिर कहता है—मनोबल! मनोबल! एथेन, कुछ मनोबल ग्रहण करो। क्या तुम इतना भी नहीं कर सकतीं?

यह कह वह विवाह का लाइसेन्स उसके सामने रख देता है। एथेन घबराती है और कहती है—मैं नहीं जानती, मैं नहीं जानती इसका परिणाम क्या होगा।

गुई—इसका परिणाम निश्चय ही मङ्गलमय होगा। तुम शीघ्रता क । जीवन में आने वाले अवसरों को हमें न चूकना चाहिए।

एथेन (उसके मुँह की ओर देखते हुए)—गुई, तुम क्या अपने अन्तःकरण से प्रतिज्ञा करते हो कि मुझे अपने मार्ग का बाधक न बनने दोगे और न स्वयं मेरे मार्ग के कण्टक बनोगे?

गुई—निश्चय ही, यह तो एक हाथ से लेना और दूसरे से देना है।

दूसरे दिन वे विवाह-सूत्र में बद्ध हो जाते हैं। इस कथानक से क्या निष्कर्ष निकलता है, यह हमारे सहृदय पाठक स्वयं विचार करें। यहाँ स्वभावतः दो प्रश्न हमारे सामने आते हैं—(१) प्यार या विवाह? (२) यदि विवाह तो किस शर्त पर?

यदि हम अपने यहाँ के वैवाहिक सम्बन्ध पर ध्यान देते हैं तो कहना पड़ता है कि यह सम्बन्ध न प्यार ही है, न विवाह ही; यह केवल अभिभावकों की मुराद है। ऐसी दशा में यदि युवक अपनी अपरिचिता परिणीता को प्यार करने में असमर्थ हो और अपने हृदय की प्यास को किसी अन्य रमणी के प्रेमामृत से बुझाने लगे तो भला उसका दोष ही क्या है? आख़िर प्रेम तो ज़ोर करने वा रोने-चिल्लाने से नहीं होता। किसी युवती ने, जब उससे पूछा गया कि वह किसी युवक-विशेष को क्यों प्यार करती है, ठीक ही उत्तर दिया था—क्योंकि वह वह है और मैं मैं हूँ। इसके सिवा, इसका और कोई कारण नहीं बताया जा सकता।

इसी प्रकार यदि कोई युवती अपने पति को प्यार न कर सके तो भला उसका क्या दोष है? यदि आज हमारी अनपढ़, भोली-भाली स्त्रियाँ अपने व्यभिचारी, नीच और दूषित पतियों को देवता समझती हैं तो इसे हम प्यार नहीं कह सकते, यह तो केवल अन्धपरम्परा का मोहमय साम्राज्य है। शान्ति तो उस अवस्था का नाम है, जब शक्ति रखते हुए विपत्ति में स्थिर रहा जाय, पर जो निराश्रय है, निरुपाय है, उसकी शान्ति ही क्या? ठीक यही दशा हमारी स्त्रियों की है। सबसे पहली बात तो उनकी शिक्षा का अभाव है। इसके कारण न तो उन्हें अपने स्वत्वों और अधिकारों का ज्ञान हो पाता है और न वे स्वतन्त्रतापूर्वक कुछ सोच-समझ ही सकती हैं। दूसरी बात यह है कि वे निरुपाय हैं, पारिवारिक सम्पत्ति में उनका कोई भाग नहीं, न वे स्वतन्त्र जीविका ही उपार्जित कर सकती हैं। यदि आज हमारी बालिकाओं को स्वतन्त्र जीविका निर्वाह की कलाएँ सिखाई जायँ तो वे इतनी दुखी न हों जितनी आज हैं। यूरोप में चाहे जितने तलाक़ होते हों, पर वहाँ की स्त्रियों का जीवन इतना कष्टमय नहीं है, क्योंकि वे दूसरों की मुहताज नहीं। वे अपनी शक्ति पर निर्भर होकर स्वच्छन्द और सुखी जीवन व्यतीत कर सकती हैं।* यूरोपियन और ऐंग्लो

---

* कभी-कभी हम स्वयं भी सोचा करते हैं कि आख़िर साधारण स्त्रियों और वेश्याओं में अन्तर क्या है। आजकल हमारे समाज में स्त्रियाँ अपने पति से जीविका पाने का हक़दार केवल इसलिए समझी जाती हैं कि वे अपने पति की स्त्री हैं, उसके भोग की सामग्री और सुख का साधन हैं। यदि हमारी स्त्रियों की जीविका का सचमुच यही आधार हो तो कहना पड़ेगा कि उनमें और बाज़ारू औरतों में (जहाँ तक जीविका का सम्बन्ध है) कोई अन्तर नहीं। बाज़ारू स्त्रियाँ अपने रूप और कौशल से बहुतों को प्रसन्न करके जीविका कमाती हैं, साधारण स्त्रियाँ केवल एक ही को प्रसन्न करके। परन्तु दोनों का साधन एक ही है—शारीरिक रूप का प्रदर्शन, हाव-भाव और कटाक्ष की बिकरी। इसलिए हम कह सकते हैं कि ऐसी गृहिनियाँ एक प्रकार की छोटी-मोटी वेश्याएँ ही हैं और वेश्याएँ ऐसी ही गृहिनियों का पूर्ण विकसित स्वरूप हैं।

यह बात सुनने में बड़ी अरुचिकर प्रतीत होगी। परन्तु थोड़ा सा विचार करने से इसकी सत्यता में सन्देह नहीं रह जायगा।

इण्डियन समाज की कोई भी बालिका, चाहे वह बड़े से बड़े घर की क्यों न हों, स्वतन्त्र जीविका निर्वाह की कला अवश्य सीखती हैं, जैसे टाइप करना, शॉर्टहैण्ड, हिसाब-किताब, पत्र-व्यवहार, दरज़ी का काम, अस्पतालों में नर्स का काम, थिएटर और सिनेमा में नाचना, गाना वा पात्रों के काम, पत्रों के सम्वाददाता के काम, इत्यादि-इत्यादि। इसका फल यह होता है कि वे किसी का बोझ बन कर नहीं रहतीं। हृदय मिल जाने पर वे विवाह करती हैं, और पीछे अनबन होने पर—क्योंकि मनुष्य आख़िर मनुष्य ही है—सर पर हाथ रख कर रोतीं नहीं, वरन स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करती हैं। स्वतन्त्र होने ही से उनकी शक्तियों के विकास का पूर्ण अवसर मिलता है। बड़े दुःख की बात है कि इसी अभाव के कारण हमारी बहिनें जो कवि होतीं, लेखिका होतीं, वीणावादिनी और नृत्यकारिणी होतीं, वीरप्रसवा वा व्याख्याता होतीं, आज सिवा पुरुषों की तुच्छ सेविका के और कुछ नहीं हो पातीं। अनेक बार प्रतिकूल परिस्थितियों के थपेड़े खाकर ज़ार-ज़ार रोती हुई वे अस्थि-पञ्जर के सिवा और कुछ नहीं रह जातीं। सुतरां यदि हम जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाना चाहते हैं तो हमें दो-एक बातों पर अवश्य ध्यान देना होगा। पहली तो यह है कि हम

मानव जाति के चरित्र पर से इस कलङ्क को दूर करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि स्त्रियों को ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे ज़रूरत पड़ने पर कोई काम करके वे स्वयं अपनी जीविका कमा सकें। जो स्त्रियाँ अपने पति के साथ रहती हैं और कोई स्वतन्त्र व्यवसाय नहीं करतीं, उन्हें भी अपने पति से केवल इसलिए जीविका नहीं लेनी चाहिए कि वह उनका पति है, बल्कि इसलिए कि वे उसके घर का प्रबन्ध करती हैं, उसके खाने-पीने और आराम के लिए सामान जुटाती हैं। इस विषय में पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध की कल्पना यह होनी चाहिए कि पति घर के बाहर परिश्रम करता है, पत्नी घर के भीतर। परन्तु पत्नी जो जीविका पाती है, वह अपने परिश्रम के लिए, न कि पत्नीत्व के लिए।

इसलिए हमारी सम्मति है कि स्त्रियों को जीविका कमाने योग्य कोई शिक्षा अवश्य देनी चाहिए।

—सम्पादक 'चाँद'

अपनी बहिनों को साधारण रूप से शिक्षिता ही न बनाएँ, वरन उन्हें स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने के योग्य भी बनावें, ताकि उनकी निराश्रयता और पराधीनता दूर होकर उनमें अपने को मनुष्य समझने की शक्ति आवे, उनके अविकसित गुणों का विकास हो और वे प्रफुल्ल और स्वतन्त्र मनुष्य की भाँति संसार में विचरण कर सकें।

इसके अनन्तर प्रश्न आता है विवाह का। विवाह हमारे जीवन के नितान्त आवश्यकीय संस्कारों में है या नहीं, यह एक विचारणीय समस्या है; पर इतना तो निश्चय है कि विवाह मनुष्य के जीवन में एक अवर्णनीय माधुर्य लाता है—ऐसा माधुर्य, जिसके बिना जीवन वास्तव में नीरस-सा प्रतीत होता है। पर आजकल के अन्धाधुन्ध विवाह से माधुर्य के बदले जीवन में विष मिल जाता है। विवाह की भित्ति सर्वथा प्रेम पर ही निर्भर होनी चाहिए। दो स्वावलम्बी, स्वतन्त्र विचरते हुए जीव जब अपने जीवन को एक-दूसरे के बिना सर्वतः रिक्त पावें, जब उन्हें अपना जीवन परस्पर प्यार बिना निरर्थक प्रतीत हो, जब एक आत्मा दूसरी आत्मा में तल्लीन हो जाने के लिए विह्वल हो उठे, वास्तव में उसी अवस्था में उनका सच्चा विवाह सम्भव है। इस अनन्त, अजेय प्रेरणा के बिना जो सम्बन्ध हो वह विवाह नहीं, बिल्कुल भ्रम है। यहाँ जात-पाँत और धर्म का कोई सवाल ही नहीं उठ सकता। यदि सच पूछा जाय तो दो विभिन्न धर्मावलम्बी स्त्री-पुरुष, यदि वे सच्चे हों तो अपना विभिन्न धर्म रखते हुए परस्पर विवाह-सूत्र में आबद्ध हो सकते हैं। मनुष्य धन बिना रह सकता है, धर्म बिना रह सकता है और अन्न बिना भी रह सकता है, पर वह प्यार बिना नहीं रह सकता। इस संसार में शायद ही कोई ऐसा हो जिसने कभी किसी वस्तु को प्यार न किया हो, और यदि जीवन के मूल तत्वों की ओर दृष्टि-पात किया जाय तो वहाँ प्यार का एक चिरन्तन स्रोत ही दीख पड़ेगा। मनुष्य निरा धन के लिए नहीं जीता, अन्न के लिए भी नहीं जीता और धर्म के लिए तो शायद ही कभी; वह जीता है तो किसी न किसी के प्यार के लिए। पर आज के सामाजिक और धार्मिक नियमों ने प्यार का गला घोंट डाला है। जिस प्रकार हम अपनी दुर्बलता और दरिद्रता दूर करने के लिए राजनीतिक स्वतन्त्रता चाहते हैं, उसी प्रकार आत्मिक

अशान्ति और कष्ट दूर करने के लिए हमें सामाजिक और धार्मिक स्वतन्त्रता चाहिए, ताकि जीवन को नए ढङ्ग से सङ्गठित करके हम इसे सम्पन्न और पूर्ण बना सकें।

—विश्वमोहनकुमार सिंह,
एम० ए०, बी० एल०

* * *

यौवन का महत्व

जहाँ शक्ति और सौन्दर्य का साम्राज्य विस्तृत है, वहाँ वैभव तथा ऐश्वर्य का स्वतन्त्र विहार है। हम शैशव को स्नेह-दृष्टि से देखते हैं, वार्द्धक्य की ओर हमारी घृणा होती है, किन्तु हम पूजा करते हैं किसकी? यौवन की। हिन्दू पौराणिकों ने जब देवलोक का सन्धान पाया तो कहा—यहाँ अपरिणत शैशव नहीं है, बुढ़ापा भी नहीं है, किन्तु है केवल यौवन की छटा। देवतागण चिर तरुण हैं, देवियाँ चिर तरुणी हैं। न जाने किस माया-मन्त्र के प्रताप से यौवन रूपी विद्युत स्वर्गलोक में अचल हो गया है।

यौवन के पुजारी तो सभी हैं, परन्तु उसके स्वरूप को कितनों ने पहचाना है? शरीर में जब मादकता की व्याप्ति होती है, जब हृदय इन्द्रियों का दास हो जाता है, उस समय स्थिर-चित्त होकर अपने भविष्य पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की शक्ति किसमें रहती है? भोग-विलास की तीव्र गति में युवक-युवतियाँ यहाँ तक प्रवाहित हो जाते हैं कि उन्हें अपने कर्त्तव्य तक का ध्यान नहीं रहता। वे संज्ञाहीन हो जाते हैं और विवेक उनसे बहुत दूर चला जाता है। हम यह समझने का कदापि प्रयत्न नहीं करते कि हम स्वयं सुन्दर हैं, शक्तिमान हैं और महत्वपूर्ण एवं उच्चतम सुख का स्रोत भी हममें ही मौजूद है। यदि हममें इतनी क्षमता होती कि हम अपने स्वरूप को पहचान लेते तो यौवन-रूपी नद में हमें कभी भी ज्वार-भाटे का सामना न करना पड़ता।

सुना है, युवकों में जागृति हुई है। और यह भी सुनने में आया है कि तरुणी-दल भी उठने का प्रबल प्रयास कर रहा है। पर यह बात बड़ी खटकती है। जागरण ही तो तारुण्य का स्वरूप है। प्रकृति की सुप्त शक्ति के पूर्ण उद्बोधन का नाम ही तो यौवन है। अतः यौवन चिर-जाग्रत है।

आधुनिक काल में यौवन का प्रवाह दूसरी ओर बह चला है। युवकों की दृष्टि में स्थैर्य, शान्ति तथा विवेक वृद्धों के गुण हैं। अतः इन महत्वपूर्ण गुणों को वे अपने निकट फटकने तक नहीं देते। उनका तो यही ख़्याल है कि यौवन भोग की अवस्था है। यही धारणा इस समय युवक भारत की उन्नति में रोड़ा अटका रही है। जो हो, हम सभी यह समझ रहे हैं कि यौवन का एकमात्र ध्येय भोग है। यही कारण है कि हमें अब तक यौवन के यथार्थ स्वरूप को पहचानने में सफलता नहीं मिली है। अतएव यौवन के दुरुपयोग करने का दायित्व हमारे ही ऊपर है। युवा भोगी है, यह बात दूसरों के मुँह से सुन कर और उस पर विश्वास करके हम लोगों ने स्वयं ही अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार ली है।

हमारी समझ है कि हमारा नवयुवक समाज यौवन को जिस रूप में देख रहा है, वह उसका वास्तविक रूप नहीं है। क्या भोग ही में यौवन की महत्ता है? क्या त्याग में वह शक्ति, वह महत्व नहीं है? आजकल एक विचित्र हवा बह चली है। जो भारतीय पाश्चात्य सभ्यता के एकनिष्ठ पुजारी हैं, और केवल वे ही नहीं, बल्कि भारतीयता के रङ्ग में रँगे होने का दावा करने वाले भी, यही कहते हैं कि धर्म-कर्म का समय तो पीछे भी मिल जायगा। यौवन भोग का काल है।

इस कथन का अनुमोदन करने वालों को शायद धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं है। इनकी स्थूल दृष्टि में, अपरिपक्व बुद्धि में, धर्म त्याज्य और यौवन भोग की वस्तु है।

यौवन आता है, किन्तु उसके एक हाथ में अमृत है और दूसरे में विष, एक ओर त्याग है और दूसरी ओर भोग। प्रकृति की अन्तःप्रेरणा से कभी-कभी उन दोनों में एकत्र सामञ्जस्य भी हो जाया करता है। परन्तु अपने को सबसे अधिक बुद्धिमान समझने वाला मनुष्य अपनी बुद्धि के अभिमान में अन्धा होकर स्वयं ही अपना सर्वनाश कर बैठता है।

देश के दुर्भाग्य से इस समय यही सङ्कट भारत पर भी उपस्थित हो गया है। यौवन को आत्मविस्मृति का युग बताने वाली मन्त्रणा का अभाव नहीं है। जो मनो-

वृत्ति यौवन को आत्मसमाहित तपस्या से विचलित करके प्रमाद के पथ की ओर अग्रसर करती है, उसी की वृद्धि आज जातीय जागरण के नाम से प्रसिद्ध हो रही है।

धर्म ने जाति की रक्षा की है और धर्म ही इसे डूबते से बचा सकता है, यह वृद्धों की प्रलापोक्ति नहीं है। जिस प्रकार यौवन में मादकता और भोग-वासना उत्पन्न होती है, उसी प्रकार धर्म की इच्छा भी प्रबल होती है। यह प्रायः देखा गया है कि भोगी लोग अपनी जाति की उन्नति के लिए कुछ भी नहीं कर सकते। यदि जाति को उन्नति-पथ पर अग्रसर करने में किसी ने कुछ भी काम किया है तो वह है त्यागी और तपस्वी। युवकों की यह विजय-श्री देखने का सौभाग्य अब हम भारतियों को नहीं रहा। यही कारण है कि इस समय भारतवर्ष जैसे धन-धान्य-पूरित देश में भी कष्ट है, दुःख है और इसे परतन्त्रतारूपी स्वर्ण-शृङ्खला में आबद्ध होना पड़ा है।

एक बार अतीत की ओर सरसरी दृष्टि दौड़ाइए। भारतवर्ष में आदर्श पुरुषों की कमी नहीं। इस समय भी प्रत्येक भारतवासी के हृदय-मन्दिर में मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी की पुनीत प्रतिमा प्रतिष्ठित है। उनके नाम की याद आते ही राम-राज्याभिषेक, चित्रकूट में श्रीराम-भरत-मिलन, श्रीरामचन्द्र के चौदह वर्ष का वनवास, आदि उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का स्मरण हो आता है। यदि हम यह कहें कि ये घटनाएँ उनके यौवन-काल में घटित हुई थीं तो क्या कोई इस पर विश्वास करेगा? रामायण का महत्व एकमात्र युवक-युवती की कठोर तपस्या पर ही अवलम्बित है। युवक राम राजकुमार होकर भी तपस्वी थे और युवती सीता, जो राजा जनक की नन्दिनी और दशरथ जैसे प्रतापी राजा की पुत्रवधू थीं—तपस्विनी थीं। भोग करने का सामर्थ्य और अवसर रहने पर भी राम और सीता ने जो वैराग्य-भाव प्रदर्शित किया था, वह अत्यन्त गम्भीर तथा महत्वपूर्ण है। वनवास-काल में राम-सीता के दाम्पत्य-जीवन के विराट गाम्भीर्य एवं मधुरता को सोचते ही लोग आत्मविस्मृत हो जाते हैं। जब लक्ष्मण का विपुल आत्मत्याग और सुदृढ़ इन्द्रिय-संयम, राजनन्दिनी उर्मिला का पाषाणी बन कर धैर्य धारण करना, आदि कथाएँ याद आती हैं, तब हम श्रद्धा और विस्मय से अभिभूत हो पड़ते हैं। राजतपस्वी भरत की कहानी पढ़ने पर तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। क्या उनके निकट भोग-वासना की सब सामग्रियाँ मौजूद नहीं थीं? परन्तु क्यों उन्होंने उन सब पर लात मार कर त्याग-मार्ग का अवलम्बन किया? एक बार विचारपूर्वक पढ़िए तरुणी माण्डवी की कथा। किसकी प्रेरणा से वह यौवन ही में योगिनी हुई? राम-सीता वन में रह कर तप में लीन थे, किन्तु राजभवन में हज़ारों भोग्य वस्तुओं के रहते

श्रीमती रोमियो

आप हाल ही में तञ्जोर ज़िले में तिरुनरुर म्युनिसिपैलिटी की सदस्या नियुक्त की गई हैं।

हुए इस तरुण दम्पति ने एकनिष्ठ वैराग्य-साधना का जो उज्ज्वल दृष्टान्त संसार के सामने उपस्थित किया, क्या उसकी समता करने वाली कोई दूसरी घटना भी किसी ने इतिहास में पढ़ी है?

सम्भव है यह इतिहास न हो, केवल कवि की कल्पना हो। परन्तु उस कल्पना में ही कितनी शक्ति है! रामायण में गार्हस्थ्य धर्म के जय-चित्रण का एकमात्र अव-

लम्बन है राजपरिवार के युवक-युवतियों की कठोर तपस्या। रामायण का यही आदर्श है ; रामायण यदि कुछ पाठ सिखाता है तो यह कि यौवन-काल भोग का नहीं, त्याग का काल है। त्याग-अस्त्र के द्वारा यौवन पर पूर्ण विजय लाभ होता है।

भारत के नवयुवको ! यदि तुम्हारी इच्छा गार्हस्थ्य-धर्म को उच्च तथा यशस्वी बनाने की है तो तुम इन व्रतचारी तपस्वी राजदम्पति की पुण्य-कथा सुनो और उन्हीं

डॉक्टर मुथुलक्ष्मी रेड्डी
गवर्नमेण्ट की वर्तमान दमन नीति के विरोध में आपने मद्रास काउन्सिल की सदस्यता और उसके वाइस-प्रेसिडेन्टशिप दोनों पदों से इस्तीफ़ा दे दिया है।

के समान त्याग-मार्ग का अवलम्बन करो। इससे तुम्हारी कामनाग्नि मिट जायगी, हृदय शक्ति और भक्ति से पूर्ण हो जायगा और गृहस्थ आश्रम में तुम्हारी आत्मविजय की मधुर रागिनी गूँज उठेगी।

हज़ारों वर्ष से भी अधिक पहले की एक और तरुण राजदम्पति की कथा याद आती है। क्या भारतवर्ष युवक सिद्धार्थ और युवती यशोधरा को कभी भूल सकेगा ? पूर्ण यौवन में किसके आह्वान ने इस राजकुमार को सांसारिक माया से दूर हटाया था ? चौबीस वर्ष की अवस्था में किसकी प्रेरणा से मानव-जाति के कल्याण के निमित्त युवक सिद्धार्थ ने त्याग-व्रत का अनुष्ठान किया था ? बारह वर्ष पश्चात जब वे तपःसिद्धि लाभ कर पिता की राजधानी में लौट आए, उस समय तरुणी यशोधरा की क्या अवस्था थी, यह अत्यन्त हृदय-द्रावक और दयनीय कथा है। तपस्विनी यशोधरा के हृदय में पति-प्रेम का प्रबल प्रवाह तीव्र वेग से प्रवाहित हो रहा था, किन्तु तो भी वह पाषाण-प्रतिमा की भाँति निश्चल थी। पुत्र राहुल ने पूछा—माँ, मेरे पिता जी कहाँ हैं ?

यशोधरा ने उत्तर दिया—देखो, जन-समाज में जिनका मस्तक सर्वापेक्षा उन्नत है, वही तुम्हारे पिता हैं।

राहुल—मैं क्या कह कर उनसे बातें करूँगा ?

यशोधरा—पिता के धन पर पुत्र का पूर्ण अधिकार है। तुम जाकर अपने पिता से पितृधन माँग लो। पुत्र ने नत-मस्तक हो पिता के निकट पितृसम्पत्ति की याचना की।

बुद्धदेव बोले—यह भिक्षापात्र ही मेरा सर्वस्व है। यही मैं तुम्हें देता हूँ।

पुत्र पिता का सर्वस्व प्राप्त कर उन्हीं के मार्ग पर चल पड़ा। यशोधरा निर्वाक हो सब देखती रही। बुद्ध जब निकट आए तो वह बोली—क्या आपकी यही इच्छा है कि मुझे जीवन-पर्यन्त विरहाग्नि से सन्तप्त होना पड़े ?

गम्भीर स्वर में उन्हें उत्तर मिला—हम दोनों की वियोग-कहानी सुन कर संसारवासी आँसू बहावेंगे। इससे उनका हृदय स्वच्छ और निर्मल होगा। हम दोनों का विरह ही उन लोगों के लिए निर्वाण का पथ-प्रदर्शक होगा। क्या तुम इस महान आत्मत्याग की महिमा अनुभव कर अपने जीवन को सार्थक नहीं कर सकती हो ?

तरुणी तपस्विनी के मुख से उत्तर में एक शब्द नहीं निकला। वह झट तरुण तापस के चरणों में गिर पड़ी।

इसके और भी कई सौ वर्ष बाद दीप्त सूर्य के समान अकस्मात एक युवक तपस्वी का आविर्भाव हुआ। भारत की उस विकट परिस्थिति में, जब बौद्ध धर्म उन्नति के शिखर पर था और सनातनधर्म का ह्रास हुआ जाता था, अचानक संन्यासिप्रवर भगवान शङ्कर का आविर्भाव हुआ। उस षोड़श वर्षीय नररत्न ने सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करके वेद की ऋचाओं से प्रत्येक दिशा को प्रति-

ध्वनित कर दिया। उस प्रतिध्वनि ने देश को उद्बुद्ध बनाया। इस महत्वपूर्ण कार्य से उसे क्षण भर का भी अवकाश नहीं था। क्या उस कर्मयोगी शङ्कर ने युवावस्था को भोग-विलास में व्यतीत किया? कदापि नहीं। उसकी चमत्कारपूर्ण सफलता का एकमात्र कारण उसकी एकान्त कर्त्तव्य-निष्ठा और त्याग ही तो था। उस महान युवक का आविर्भाव मानव-जाति के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

बङ्ग-भूमि को पुनीत करने वाले महाप्रभु चैतन्य का नाम सम्भवतः किसी भी भारतीय से नहीं छिपा है। उन्होंने युवावस्था में त्याग-धर्म का पालन कर साधारण जनता में भक्ति का जो प्रचार किया है, प्रेम के महत्व को जिस प्रकार संसार के सम्मुख उपस्थित किया है, वह अतुलनीय है। यही उनकी विमल कीर्त्ति का सुदृढ़ स्तम्भ है। उनकी पत्नी विष्णुप्रिया ने भी अपने पूज्य स्वामी का पथ अनुसरण करके हमारे सामने त्याग के अद्भुत आकर्षण का एक और उदाहरण उपस्थित कर दिया।

श्रीरामकृष्ण परमहंस एवं उनके सुयोग्य शिष्य, प्रकृत स्वदेश-भक्त, स्वामी विवेकानन्द का नाम विश्वविश्रुति है। वेदान्त-केशरी कर्मयोगी विवेकानन्द ने अपने दुन्दुभी-नाद से जगत को कम्पित कर दिया था। उनके व्यक्तित्व का ऐसा आतङ्क छाया हुआ था कि संसार की अधिकांश जातियों ने उन पर विश्वास किया और उनके उपदेशों से लाभ उठाया था। पर क्या हम यह पूछने का साहस कर सकते हैं कि उनकी इस अपूर्व विजय का आधार क्या था? उत्तर निश्चित है—यौवन में उनका त्याग।

इसी प्रकार और भी अनेक कहानियाँ हैं। जहाँ देखिए, वहीं यौवन की जय है! किन्तु उस विजय का मूल भोग नहीं, त्याग है। मनु ने कहा है—

युवैव धर्म्मशीलः स्यात्।

जो लोग युवा हैं, त्याग करने की शक्ति भी उन्हीं में है। अस्तु।

ऐसे ही ऐसे युवकों की, जो दृढ़तापूर्वक त्याग-धर्म का पालन कर सकें, इस समय देश में ज़रूरत है। भारत का उद्धार भी ऐसे ही त्यागी युवकों के हाथ में है। जननी-भूमि इस समय इन कर्मशील युवकों की प्रतीक्षा कर रही है। उसका यह आह्वान कितने लोग सुनेंगे?*

—भुवनेश्वरप्रसाद, बी० ए०

* * *

कुमारी ग्रेस वेदान्ताचारी, बी० ए०

आप हाल ही में कुरनूल म्युनिसिपैलिटी की सदस्या नियुक्त की गई हैं।

स्त्रियों के अधिकार और वेद

महर्षि व्यास ने कहा है कि यदि किसी राष्ट्र को उन्नत बनाना हो, यदि किसी राष्ट्र में क्रान्ति उत्पन्न करनी हो, और यदि किसी राष्ट्र के ऊपर घिर आने

* एक बँगला लेख के आधार पर। —लेखक

वाले विपत्ति के बादलों को दूर करना हो, तो स्त्रियों को शिक्षित बनाओ, उन्हें उन्नत करो। उनके शारीरिक और मानसिक विकास की ओर ध्यान दो। उनके तैयार होते ही सारा राष्ट्र तैयार हो जायगा, उनके उद्बुद्ध होते ही सारे राष्ट्र में चेतनता फैल जायगी और उनके द्वारा लगाई हुई क्रान्ति की आग सारे राष्ट्र में धू-धू करके ज़हक उठेगी।

श्रीमती रेवेल्लो

आप इस वर्ष के लिए कोचीन के मेटर्निटी एण्ड चाइल्ड वेलफ़ेयर एसोसिएशन की वाइस-प्रेसिडेण्ट नियुक्त हुई हैं।

महर्षि व्यास के इस बात की सचाई का अनुभव आज हम पग-पग पर कर रहे हैं। जिस किसी भी राष्ट्र के कार्य में स्त्रियों ने भाग लिया, वही राष्ट्र उन्नत हुआ, उसी राष्ट्र के बल, बुद्धि और विद्वत्ता के विकास से सारा संसार आलोकित हो उठा। बहुत दूर जाने की ज़रूरत नहीं। आज जो देश सभ्य कहे जाते हैं, संसार जिन देशों का लोहा मानता है, उन यूरोप, अमेरिका, रशिया, आदि देशों की ओर दृष्टिपात करने से ही इस बात की सार्थकता प्रमाणित हो जायगी। स्त्रियों के समुन्नत होने के कारण ही आज अफ़ीमची चीन भी स्वतन्त्र हो उठा है। लेकिन हमारा वृद्ध भारत तो आज भी सुख की नींद सो रहा है। आज भी उसकी वाणी से अस्फुट स्वरों में सुन पड़ता है—'स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्।' इसका परिणाम क्या होगा?

हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा पाश्चात्य प्रणाली से हो और वे पाश्चात्य रहन-सहन का अनुकरण करें। वह प्रणाली न तो हमारे देश के लिए उपयोगी है और न आवश्यक। किन्तु हमारे देश की स्त्रियाँ अरुण-राग-रञ्जित सूर्य-रश्मियाँ भी न देख पावें, इसका क्या अर्थ है? यह रिवाज, यह प्रचलन क्या किसी भी देश, जाति और समाज के लिए हितकर कहा जा सकता है? क्या और भी किसी देश के बर्बर समाज ने अपने आधे उत्तमाङ्ग को इस प्रकार अमानुषिक प्रथाओं के बन्धन में बाँध कर जीवन बिताने के लिए छोड़ रक्खा है? ऐसी बात भी क्या किसी ने कहीं सुनी है? लेकिन सचराचर जो बात कहीं देखी-सुनी नहीं गई, वही हमारे देश में होती है और बेचारी शक्ति-सामर्थ्य-हीन दुर्बल स्त्रियाँ मूक पशुओं की भाँति इतना अन्याय-अत्याचार चुप होकर सहती हैं।

स्त्रियाँ दुर्बल हैं, शक्तिहीन हैं, अतएव वे सताई जाती हैं, पीड़ित होती हैं और कुचली जाती हैं। समाज में उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है, उनका कोई अधिकार नहीं है। बात-बात में वेद और धर्मशास्त्रों की दुहाई देने वाले हिन्दू-समाज से हम पूछते हैं कि उसने इस सम्बन्ध में वेदों और धर्मग्रन्थों का अनुगमन कितनी दूर तक किया है?

निरुक्तकार यास्काचार्य ने 'अपत्य' शब्द का निर्वचन करते हुए स्त्रियों के अधिकारों पर अच्छा प्रकाश डाला है। कन्या दायभाग (पैत्रिक सम्पत्ति) की अधिकारिणी है या नहीं, इस सम्बन्ध में निरुक्त के चार सिद्धान्त हैं, चारों ही बड़े जटिल और विषम हैं, एक-दूसरे से मेल नहीं खाते। उनमें पहला यों है—

अविशेषेण मिथुनाः पुत्राः दायादाः।

अर्थात—पुत्र और पुत्री दोनों ही पैत्रिक सम्पत्ति के समान अधिकारी हैं।

इसी का समानार्थक एक और श्लोक हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः ।
मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥

इसका स्पष्ट अर्थ है कि पुत्र और पुत्री दोनों ही दाय के समान अधिकारी होते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में स्वयम्भु के पुत्र मनु ने यह बात कही है।

एक ओर तो ऐसे मत मिलते हैं, दूसरी ओर एक और भी सिद्धान्त है—'न दुहितर इत्येके।' अर्थात् पुत्री को पैत्रिक सम्पत्ति में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं है। ये महाशय इतना कह कर ही सन्तुष्ट नहीं होते, इसके साथ एक उपपत्ति भी जोड़ देते हैं—'स्त्रीणां दान विक्रयातिसर्गाः विद्यन्ते न पुंसः।' अर्थात् स्त्रियों दानका, विक्रय और त्याग होता है, पुरुषों का नहीं। इसलिए स्त्रियों को पैत्रिक सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं है। इस उक्ति के सम्बन्ध में हम अपनी ओर से कुछ कहना नहीं चाहते। थोड़ी बुद्धि रखने वाले लोग भी अनायास ही इसकी गहराई का पता लगा सकते हैं।

तीसरे साहब का कहना है—'पुंसोऽपि।' अर्थात यदि दान, विक्रय और त्याग के कारण ही कन्याओं को पैत्रिक सम्पत्ति का अनधिकारी कहा जाता है, तो इस प्रकार पुरुष भी अनधिकारी हैं, क्योंकि पुत्र भी क्रीतक और दत्तक होते हैं। महाभारत के शुनःशेप आख्यान में दान और विक्रय की बात स्पष्ट ही लिखी है। विश्वामित्र के द्वारा मधुच्छन्द आदि पुत्रों का त्याग भी प्रसिद्ध ही है। फिर, यदि इन्हीं कारणों से पैत्रिक सम्पत्ति का अधिकार छीनना हो तो केवल स्त्रियों से ही क्यों, पुरुषों से भी यह अधिकार छीन लेना चाहिए। नहीं तो दोनों ही समान अधिकारी हैं, हिस्सेदार हैं।

एक चौथा भी मत है। यह अपना राग अलग ही अलापता है—"अभ्रातृमती वादः।" अर्थात जो कन्या भ्रातृहीना हो, पैत्रिक सम्पत्ति उसीको मिल सकती है, दूसरी को नहीं।

यह तो निरुक्तकारों के चार सिद्धान्त हुए। अब इन परस्पर भिन्न मतों में से किसका अवलम्बन करके हमें जीवन के मार्ग में अग्रसर होना चाहिए, इसका निर्णय करने के लिए हमें थोड़ी सी अक़्ल ख़र्च करनी पड़ेगी। और इस प्रकार स्वयं ही अपने मार्ग का निर्णय करके प्रकृत पथ पर अग्रसर होना होगा।

पहला सिद्धान्त साधारणतः ही स्पष्ट और उपयुक्त है। उसमें न कोई तर्क है, न कोई उपपत्ति। सीधी तरह से एक सच्ची बात कह दी गई है। साधारण बुद्धि भी उसे समझ सकती और मान सकती है। किन्तु दूसरे

श्रीमती इन्दिरा देवी

आप गण्टूर के प्रमुख कॉङ्ग्रेस-कार्यकर्त्ता डॉ० जी० वी० ब्रह्मैय्या की भतीजी हैं। गण्टूर में ठहरे हुए सत्याग्रही स्वयंसेवकों के भोजन-व्यय के लिए आपने वहाँ की सत्याग्रह कमिटी को ११६) रु० दान दिया है।

मत के सम्बन्ध में भी ठीक यही बात नहीं कही जा सकती। स्वभावतः ही यह सन्देह उठता है कि यदि इन्हीं कारणों से स्त्रियाँ पितृ-धन से वञ्चित हैं तो पुरुष ही क्यों यह लाभ उठावें? आख़िर उनका भी तो दान होता है?

वे भी तो बेचे और त्याग दिए जाते हैं? फिर लड़कियों के लिए ही यह क्रूर क़ानून क्यों बनाया जाय?

तीसरे मत से यही सन्देह पुष्ट होता है। उनका अपना कोई मत नहीं है। वे कहते हैं यदि स्त्रियों को अधिकार नहीं है तो पुरुषों को भी नहीं है। और यदि है तो दोनों ही को है। कोई भी समझदार आदमी इस बात से इन्कार नहीं कर सकता।

अन्तर्राष्ट्रीय महिला-सम्मेलन की सभानेत्री

आप मार्क्विस ऑफ़ एबर्डीन की पत्नी हैं। स्त्रियों की स्वाधीनता के आन्दोलन में आरम्भ से ही आपने महत्वपूर्ण भाग लिया है। जब से 'चाँद' प्रकाशित हुआ है, आप इसकी ग्राहिका हैं और 'चाँद' को बड़े आदर की दृष्टि से देखती हैं।

चौथा सिद्धान्त अर्थहीन सा जँचता है। यह बात क्यों मान ली जाय कि भ्रातृहीना कन्या ही पैत्रिक सम्पत्ति की अधिकारिणी हो सकती है, दूसरी नहीं? इसके लिए न तो कोई कारण है, न प्रमाण। अतः यह बात मान लेने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

स्वभावतः ही बुद्धि इस बात को स्वीकार कर लेती है कि पैत्रिक सम्पत्ति में कन्याओं का हिस्सा बराबर होना चाहिए और यही बात शास्त्र-सम्मत है।

इसी प्रकार अन्य अधिकारों के सम्बन्ध में भी स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही हैं। स्त्रियों को यदि क्षेत्र और अवकाश मिले तो वे क्या नहीं कर सकतीं? उन्हें अशक्त और अबला समझना भूल है, और उनके विकास को रोकना है। पहले उन्हें काम करने का मौक़ा दीजिए और फिर देखिए वे प्रत्येक कार्य में हमेशा आपसे दो क़दम आगे रहती हैं या नहीं।

—रवीन्द्र शास्त्री 'विरही'

* * *

देशव्यापी क्रान्ति में स्त्रियों का भाग

आजकल स्त्री-स्वातन्त्र्य की धूम मची हुई है। स्त्रियाँ हर एक बात में पुरुषों का मुक़ाबला करना चाहती हैं। पाश्चात्य देशों में स्त्रियों ने बहुत अंशों में पुरुषों की समानता का पद प्राप्त भी कर लिया है। हमारी कुछ भारतीय बहिनें भी उनका अनुकरण कर रही हैं। वे सभाओं में व्याख्यान देती हैं, म्युनिसिपैलिटियों और काउन्सिलों के चुनाव में भाग लेती हैं, राजनीतिक अधिकारों के लिए आन्दोलन करती हैं। किन्तु जहाँ सुधार करने की ज़रूरत है, जहाँ अग्रसर होने की आवश्यकता है, उधर न तो किसी का ध्यान जाता है और न कोई उसकी उपयोगिता ही पर ध्यान देता है।

देश में स्वतन्त्रता का सङ्ग्राम छिड़ा हुआ है। देश की सारी शक्तियाँ इस सङ्ग्राम की सफलता के लिए व्यस्त हैं। प्रसन्नता की बात है, परदा की पुजारिन, अन्धविश्वासिनी, कोमल-हृदया, स्वभावतः भीरु और लज्जाशीला हमारी भारतीय बहिनें भी इस सङ्ग्राम में यथोचित भाग ले रही हैं। पुरुषों के कन्धे से कन्धा भिड़ा कर वे प्रत्येक दिशा में अग्रसर हो रही हैं। वे धरना देती हैं, व्याख्यान देती हैं, जुलूस निकालती हैं और अब तो जेल भी जाने लगी हैं। ये शुभ लक्षण हैं। इस सङ्ग्राम में स्त्रियाँ जितना अधिक पु षों का सहयोग

करेंगी, स्वतन्त्रता के राजप्रासाद का मार्ग हम उतना ही अधिक शीघ्र तय कर पावेंगे। किन्तु स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र यहीं तक परिमित नहीं है। हमारा जीवन इससे कहीं अधिक विशाल है। सम्भव है, कुछ वर्षों के अथक आन्दोलन और निरन्तर बलिदान के पश्चात देश पूर्ण-तया स्वतन्त्र हो जाय, किन्तु हमारा कर्तव्य तो उसके बाद भी शेष न होगा। हमारे सामने एक नवीन राज्य है, जिस पर हमें शासन करना है। उस शासन में सुव्यवस्था, शान्ति और सुराज स्थापित करने के लिए अनेक सुदृढ़ क़िलों पर हमें आक्रमण करना होगा, उन्हें नष्ट करना होगा। तब कहीं विजय मिलेगी, तब कहीं हमारे दैनन्दिन जीवन में सुख और सन्तोष की रवि-रश्मि फूट उठेगी। मैं इस लेख में इन्हीं बातों पर प्रकाश डालने की चेष्टा करूँगी।

उल्लिखित राज्य कौन सा है? किस राज्य पर शासन करने के लिए हमें प्रयत्नशील बनना पड़ेगा? किस राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना करने के लिए हमें अनेक सुदृढ़ क़िलों को फ़तह करना पड़ेगा? थोड़ा ध्यान देने से ही समझ में आ जाता है कि वह राज्य अपना ही 'गृह' है। 'गृह-राज्य' को सुव्यवस्थित रूप से चलाना और उस पर शासन करना कुछ बहुत आसान नहीं है। जो स्त्रियाँ ऐसा कर पाती हैं, वे सफल महिलाएँ हैं, वे धन्य हैं।

गृह राष्ट्र के अङ्ग हैं। राष्ट्र को सुखी और सुव्यवस्थित बनाने के लिए गृह को सुखी बनाना होगा। राष्ट्र में शान्ति स्थापित करने के लिए घर-घर का कलह दूर करना पड़ेगा। राष्ट्र को उन्नत और शिक्षित बनाने के लिए घरों को उन्नत बनाना पड़ेगा। राष्ट्र को स्वाधीन बनाने के लिए घरों में स्वाधीनता का पुण्य-प्रकाश फैलाना पड़ेगा। बिना ऐसा किए, सफलता प्राप्त करने की आशा दुराशा मात्र है। यही हमारा प्रकृत मार्ग है।

किन्तु घरों को कैसे उन्नत बनाया जाय? कैसे उन्हें शिक्षा और स्वावलम्बन के मधुर आलोक से उज्ज्वल कर दिया जाय? यह प्रश्न स्वभावतः ही हमारे सामने उठ खड़ा होता है।

उत्तर निश्चित है—सत्य, प्रेम और अकपट व्यवहार के द्वारा हम घरों को स्वर्ग बना सकती हैं। इनके अभाव में स्वर्ग में भी नरक की सृष्टि हो सकती है। किन्तु इनके अतिरिक्त कुछ और भी बातें हैं, जो हमारे गार्हस्थ्य जीवन का अन्तराय बन रही हैं। उन्हें दूर करने से ही हमारे घरों में सत्य, प्रेम, ममता और सहानुभूति का झरना झरने लगेगा। हमने उन्हें अपने पथ का दुर्गम दुर्ग कहा है। हमें उन पर भी विजय पानी होगी। मैं आगे इन्हीं के सम्बन्ध में कहूँगी।

विवाह की सब से सरल प्रणाली

दक्षिण भारत (पल्ली कोण्डा, वेल्लोर तालुक) में एक सभा है, जो बिना किसी ख़र्च के विवाह करने में ग़रीबों की सहायता किया करती है। इस चित्र के बीच में उपरोक्त सभा के सभापति महोदय बैठे हुए हैं और उनके पास वे भाग्यवान दम्पति खड़े हैं, जिनका विवाह दिन भर उन्होंने कराया है। इन विवाहों में जात-पाँत का विचार नहीं किया जाता।

हमारी उन्नति का बाधक पहला और सबसे दुर्गम जो क़िला है, वह परदा है। परदा की अस्वाभाविकता, अनुपयोगिता और बुराइयों के सम्बन्ध में आप 'चाँद' के इन्हीं कॉलमों में बहुत-कुछ पढ़ चुके हैं। उस सम्बन्ध में और कुछ न कह कर मैं केवल यही कहूँगी कि भारतवर्ष की स्त्रियों का स्वास्थ्य और सौन्दर्य परदा के कारण ही नष्ट हुआ जा रहा है। यदि भारत की नारी जाति

कुमारी बी० कमलाबाई

आप तमकूर के एम्प्रेस गर्ल्स हाईस्कूल की प्रधानाध्यापिका हैं और हाल ही में तमकूर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सदस्या नियुक्त की गई हैं।

को संसार में जीवित रहना है, यदि जीवित रह कर उसे राष्ट्र तथा अपनी सन्तान के लिए कुछ कर जाने की हविस है, तो उसे जल्दी से जल्दी इस पापमयी प्रथा को अर्धचन्द्र देना चाहिए। बिना ऐसा किए कल्याण नहीं है। आज भारतीय स्त्रियाँ जीती हुई भी मृतक के समान हैं। न तो उनका घर में सम्मान है और न बाहर। क्या यह लक्ष्यहीन, निरुद्देश्य और तिरस्कृत जीवन उन्हें अभीष्ट है ?

हमारा दूसरा अन्तराय अशिक्षा है। शिक्षा के गुण-दोषों का विवेचन करने का युग अब नहीं रह गया है। भारतीय स्त्रियों ने इस ओर ध्यान देना भी प्रारम्भ कर दिया है, पर वह सन्तोषजनक नहीं है। पहली बात जिससे हमारा असन्तोष है, शिक्षा की व्यवस्था है। लड़कियों की शिक्षा की जो प्रणाली आज दिन हमारे देश में व्यवहृत हो रही है, वह उनके व्यक्तिगत जीवन के लिए और समाज के लिए भी, हानिकर है। इसके अतिरिक्त कन्याओं की शिक्षा की कोई व्यापक व्यवस्था अभी तक नहीं हुई। कन्याओं की शिक्षा-प्रणाली के सम्बन्ध में मैं अपने विचार फिर कभी प्रकट करूँगी।

तीसरा नम्बर अन्धविश्वास और रूढ़ियों का है। इनसे हमारे जीवन में अनेक हलचल उत्पन्न होते हैं। अन्धविश्वासी और रूढ़ियों का गुलाम रह कर कोई व्यक्ति संसार में उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। ये ऐसे आकर्षण हैं, जो बरबस मनुष्य को पीछे की ओर खींचते हैं। इनसे हमेशा सावधान रहना चाहिए।

इनके अतिरिक्त और भी कितनी ही छोटी-छोटी बातें हैं, जो इन दुर्गुणों के साथ-साथ स्वयं ही दूर हो जायँगी। फिर स्त्रियाँ शिक्षिता होकर, परदे से बाहर निकल कर, अन्धविश्वास और रूढ़ियों को दूर करके, एक बार अपनी चकाचौंध भरी आँखों से देखेंगी। उन्हें आश्चर्य होगा, अपनी दयनीय परिस्थिति पर करुणा भी उत्पन्न होगी—अरे! संसार किस तेज़ी के साथ उन्नति के पथ पर अग्रसर होता जा रहा है और हम अज्ञान तथा रूढ़ियों के अन्धकार में पतन के किस अतल-तल में पड़ी हुई थीं! दुनिया को देख कर, उसकी गति-विधि का निरीक्षण करके, उनमें आगे बढ़ने की प्रवृत्ति उत्पन्न होगी, उन्हें क्षेत्र मिलेगा, उत्साह मिलेगा और संसार की सभ्य जातियों की स्त्रियों की आँख से आँख मिलाने का अवकाश भी। वे उदार होंगी, उन्नत होंगी, सभ्य होंगी। वे गुणों का आदर करना सीखेंगी, जीवन का उत्तम से उत्तम उपयोग करने के लिए प्रयत्नशील होंगी। उस समय उनका गार्हस्थ्य जीवन स्वभावतः ही सुख, सन्तोष और आह्लाद से भर जायगा। क्या भारतीय

स्त्रियाँ स्वयं ही वह दिन अपने गार्हस्थ्य जीवन में नहीं ला सकतीं ?
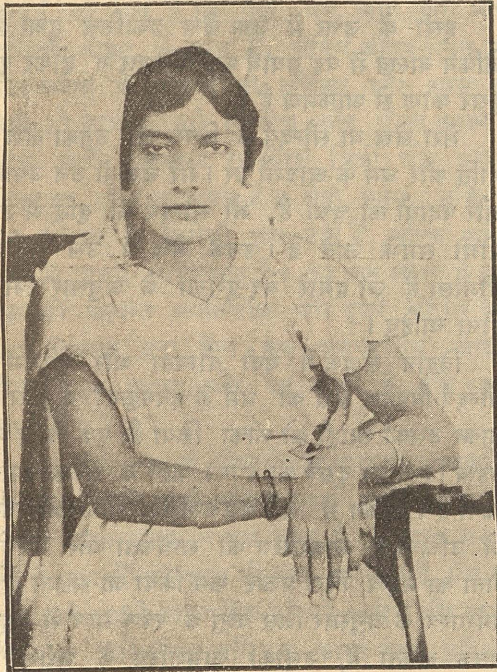
कालाकाँकर की रानी साहिबा
आपने तथा आपके स्वनामधन्य पति राजा साहब कालाकाँकर ने हाल ही में खादी-कोष में ५,०००) रु० दान दिए हैं।

निस्सन्देह स्त्रियों का देश के प्रति कुछ राजनीतिक कर्तव्य भी है। विशेष कर वर्तमान समय जैसे क्रान्ति-काल में तो वे किसी तरह चुप बैठ ही नहीं सकतीं। हमें हर्ष है कि कुछ बहिनों ने स्वाधीनता के इस महायुद्ध में जो उज्ज्वल आत्म-बलिदान किया है उससे हम स्त्रियों का मस्तक गौरव से उन्नत हो गया है। और भी कितनी ही बहिनें विदेशी कपड़े की दूकानों पर धरना देकर देश-भक्ति के साथ ही साथ स्त्री जाति के जागरण की सूचना दे रही हैं। परन्तु ये सब बातें तो क्षणिक हैं। हमें इस आन्दोलन के भीतर छिपे हुए कुछ स्थायी सिद्धान्तों की ओर भी ध्यान देना होगा। स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार तथा राष्ट्रीय शिल्प को प्रोत्साहन देने का भार शायद सब से अधिक स्त्रियों ही पर है। अतः इस ओर हमें विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने का एक सबसे आवश्यक और उपयोगी अङ्ग है—सूत कातना। देश में जितना ही अधिक कपड़ा तैयार किया जा सकेगा, हमारे आन्दोलन को उतना ही अधिक बल मिलेगा। हमारा विश्वास है कि व्याख्यान देने की अपेक्षा क्रियात्मक रूप में इस कार्य का महत्व बहुत अधिक है। यदि हमारी बहिनें इस ओर विशेष ध्यान दें और नियमित रूप से चरखा चलाने की प्रतिज्ञा कर लें तो कदाचित वे देश

श्रीमती डी० सकामा
आप प्रथम महिला-रत्न हैं, जिन्हें अभी हाल ही में मैसूर के महाराजा साहब ने मैसूर व्यवस्थापिका सभा की सदस्या नियुक्त किया है।

की और अपनी सब से बड़ी सेवा कर सकेंगी और स्वतन्त्रता के यज्ञ में उल्लेखनीय भाग ले सकेंगी।

—गङ्गादेवी गङ्गोला 'सुरभि'

* * *

सौन्दर्य का महत्व

विगत मई मास के 'चाँद' में "बनावटी सौन्दर्य" शीर्षक एक लेख, अप्रैल के 'चाँद' में प्रकाशित मेरे "सौन्दर्य साधना" शीर्षक लेख के सम्बन्ध में, प्रकाशित हुआ है। इसके लिए मैं उक्त लेख के लेखक

मिस एल० आई० लॉयड

आप सर्वप्रथम महिला-रत्न हैं, जो कलकत्ता कॉरपोरेशन की सदस्या नियुक्त हुई थीं। आपने हाल ही में इस पद से इस्तीफ़ा दे दिया है।

श्री० 'सौन्दर्य-प्रेमी' का एक प्रकार से बड़ा कृतज्ञ हूँ, क्योंकि उनके कारण मुझे इस उपेक्षित विषय पर कुछ विशेष प्रकाश डालने का अवसर मिला है।

मैंने अपने लेख में पाश्चात्य "सौन्दर्य-रचना" की कुछ क्रियाओं का उल्लेख किया था ; साथ ही अन्त में अपनी यह नम्र सम्मति भी दी थी कि "अपनी आवश्यकता की पूर्ति, रुचि के परिष्कार और शृङ्गार-कला में सुधार करने के लिए यदि हम पाश्चात्य देशों की शृङ्गार-टेबुल पर से कुछ चीज़ें चुन कर अपने शृङ्गारदान में रख लें तो उससे कला की उन्नति में बड़ी सहायता मिले।"

इसी के उत्तर में उक्त लेख प्रकाशित हुआ है। लेकिन वास्तव में वह यथार्थ रूप में उत्तर न होकर एक दूसरे कोण से आक्रमण है।

मेरा लेख था सौन्दर्य के विषय पर, उनका लेख है नीति और धर्म के आदर्शों पर। मेरे लेख में उन उपायों और पदार्थों की चर्चा है, जो सौन्दर्य की वृद्धि में उपयोगी समझे जाते हैं। उनके लेख में उस धर्म की मीमांसा है जो हमारे वेद-पुराणों के अनुसार स्त्री में होना चाहिए।

विद्वान लेखक ने बड़ी योग्यता और परिश्रम से सौन्दर्य-विषयक लेख को धर्म के हवनकुण्ड के पास ले जाकर उसकी स्याही को फीका किया है; एक विषय का महत्व दिखा कर दूसरे की उपेक्षा करने का सफल प्रयास किया है। लेकिन मैं नहीं समझता कि नीति और धर्म की उक्तियों से कामशास्त्र की सार्थकता और उपयोगिता का महत्व किस प्रकार कम किया जा सकता है? धर्मशास्त्र के अनुसार जिस वस्तु के स्पर्श मात्र में महापातक लगता है, उसीको कामशास्त्र के प्रवीणों ने व्यवहार में लाने की बड़ी सिफ़ारिश की है। लेकिन इससे उन दोनों में से कोई एक शास्त्र त्याज्य नहीं हो जाता। दोनों अपने-अपने स्थान पर, अपने विषय के अनुकूल हैं, अतएव उचित और सङ्गत हैं।

ठीक इतना ही अन्तर इन दोनों लेखों में भी है।

लेखक महोदय का कहना है कि स्त्रियों में सौन्दर्य की अपेक्षा सेवा और त्याग, भक्ति और वात्सल्य की आवश्यकता कहीं अधिक है। कौन कहेगा नहीं है? इस सनातन और सुरक्षित दलील को काटने का साहस किसमें है? आकाश में चमकते हुए इस सुनहले आदर्श की कौन अवहेलना करेगा? लेकिन क्या इससे यह समझ लिया जाय कि एक सेवा-भक्तिमयी, धर्मपरायण स्त्री के लिए शृङ्गार करना वर्जित है? उसका अपने सौन्दर्य और यौवन की रक्षा के लिए प्रयत्न करना पाप है? अथवा वैसा करने से उसका कोमल धर्म चोट खा जायगा?

नर-नारी के पारस्परिक आकर्षण के महत्व की गम्भी-

रता को समझते हुए सुयोग्य लेखक ने यह क़बूल किया है कि उसमें सौन्दर्य का बहुत बड़ा हाथ है ; फिर उसे बढ़ाने, उसे चमकाने के उद्योग में शिथिलता क्यों की जाय ? यह सच है कि सेवा, प्रेम, त्याग और भक्ति दाम्पत्य जीवन के स्तम्भ हैं, लेकिन जीवन-भवन उन दीर्घ स्तम्भों के समूह से ही रुचिकर और सुरम्य तो नहीं हो जायगा, उसे रमणीक और भोग्य बनाने के लिए उसमें यथास्थान रङ्ग-विरङ्गे चित्रों और प्रस्तर-शिल्प का होना आवश्यक है। सेवा, त्याग, भक्ति या प्रेम सौन्दर्य के विरोधी गुण नहीं हैं, बल्कि अनेक अंशों में उनमें सापेक्षता है। तब क्या जीवन के एक अङ्ग को अत्यन्त प्रगतिशील और दूसरे को शिथिल तथा निकम्मा बना देना कुछ अनुकरणीय आदर्श होगा? हम आत्मा और देह दोनों के प्रति न्याय चाहते हैं।

मानवीय हृदय पर सौन्दर्य और पारस्परिक आकर्षण का शायद उससे कहीं अधिक गहरा प्रभाव पड़ता है, जितना साधारणतया समझा जाता है। सामान्य मनुष्य धर्म के आदर्शों को श्रद्धा की वस्तु समझता है, प्रेम की नहीं। उसे अपनी स्वाभाविक वृत्तियों—लोभ और आकर्षण—को आदर्शों पर बलिदान करना बहुत मुश्किल मालूम पड़ता है। एक सामान्य पति अपनी स्त्री के व्यक्तित्व में सरसता और रोचकता का सुन्दर प्रतिविम्ब देखना चाहता है। उसका आध्यात्मिक गुणों से युक्त होना उसके लिए उतना हर्षोत्पादक नहीं होता। क्योंकि वे गुण उसकी बुद्धि की पहुँच के बहुत परे रहते हैं। सामान्य मनुष्य के विचारों और रुचि का आदर्श बहुत ऊँचा नहीं होता। रोटी कमाने के श्रम से उसका परिश्रान्त मस्तिष्क यह समझ कर सन्तोष कर लेता है कि उन आदर्शों पर पहुँच कर क्या होगा जिनका मार्ग अति दुर्गम है और जिन्हें प्राप्त कर लेने पर सदैव उनसे गिरने का भय और चिन्ता लगी रहेगी, उसकी रक्षा के लिए निरन्तर कठिन प्रयास करना होगा। इसका आशय यह नहीं है कि आदर्श जीवन अनुकरणीय नहीं होता। कोई भी विचारशील व्यक्ति सेवा, त्याग और भक्ति के पवित्र महत्व को सहज ही समझ सकता है, लेकिन यह आवश्यक नहीं कि इस विषय का ज्ञान उसकी सौन्दर्योपासना में बाधक बन जाय।

कौन पति अपनी सुन्दर और तरुणी स्त्री को पचीस-तीस वर्ष की अवस्था में ही, जब कि वास्तव में यौवन के पूर्ण विकास का समय होता है, बूढ़ी हो जाते देखना पसन्द करेगा ? भारतीय स्त्रियों के सौन्दर्य-विषयक अज्ञान के कारण उनका यौवन बहुत ही शीघ्र नष्ट हो जाता है। बहुत ही थोड़ी वयस से वे अपनी गणना

डॉ० एम० नरोहा

नेशनल काउन्सिल ऑफ़ वीमेन ऑफ़ इण्डिया के प्रतिनिधि की हैसियत से आप वियेना में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय महिला-सम्मेलन में भाग लेने गई हैं।

वृद्धाओं में करने लगती हैं, जिसका उनके जीवन और भावी सन्तान पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। यूरोप और अमेरिका की स्त्रियाँ अपनी भारतीय बहिनों से दुगनी आयु की होने पर भी उनसे कहीं अधिक युवती दीख पड़ती हैं। कारण यही है कि उन्होंने यौवन के महत्व को समझ कर उसके लिए परिश्रम और त्याग किया है।

वहाँ के वैज्ञानिक यौवन की घोर शत्रु—झुर्रियों—के पीछे इतना पड़े हुए हैं कि अब वह समय दूर नहीं है जब वे उनका अस्तित्व ही मिटा देंगे और झुर्रीयुक्त बूढ़े चेहरे और सफ़ेद बालों का दीख पड़ना एक अद्भुत और उपहासास्पद दृश्य हो जायगा। वहाँ की भविष्य की वृद्धाओं के चेहरे साफ़ और अङ्ग सुडौल होंगे। कुरूपता एक प्रकार के रोग का लक्षण है; सुन्दरता स्वास्थ्य और सबलता का विशद प्रतिविम्ब। सौन्दर्य बढ़ाने के उपायों से स्वास्थ्य को कितना लाभ पहुँचता है और

इलाहाबाद में विदेशी कपड़े की पिकेटिङ्ग

सत्याग्रही स्वयंसेविकाएँ इलाहाबाद म्युनिसिपल मार्केट के दरवाज़े पर विदेशी कपड़े की पिकेटिङ्ग कर रही हैं।

स्वास्थ्य पर जीवन की सफलता कितने अंशों तक निर्भर रहती है, यह गम्भीरतापूर्वक सोचने का विषय है।

यद्यपि पश्चिम के दाम्पत्य आदर्श कुछ अनुकरणीय नहीं माने जा सकते, लेकिन "बनावटी सौन्दर्य" के लेखक के अनुसार जब कि वहाँ पर दाम्पत्य का क़िला केवल शारीरिक सौन्दर्य पर ही नहीं टिका हुआ है; उसका वास्तविक आधार प्रेम और सेवा ही है, तब फिर उन्हीं की भाँति सौन्दर्य में आगे बढ़ कर हम आध्यात्मिक गुणों में पीछे क्यों रह जायँगे, विशेषकर उस दशा में जब कि बारम्बार हमको उनकी याद दिलाई जाती है?

यह बड़े खेद का विषय है कि विदेशियों के गुणों और उनकी कलाओं को अपनाने के विषय में भारतीयों में बड़ी अरुचि है। वे केवल अपने अतीत के गुण-गान करके अपने पुराने गौरव के गीतों की घोषणा करने में ही सुख मानते हैं। प्रत्येक नवीनता को घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से देखना उनकी प्रकृति में शामिल हो गया है। यद्यपि यह एक प्रकार से निश्चय है कि भविष्य में हमको सभ्यता की उन्हीं गलियों से होकर निकलना है, जिनसे आज अन्य उन्नत जातियाँ शानदार जुलूस निकाल रही हैं; और यद्यपि ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से हम आज भी उधर ही चल रहे हैं, लेकिन इसे स्वीकार करने में मानशीलता हमारी ज़बान पकड़ लेती है। परिणाम यह होता है कि विकास का समय बड़ा दीर्घ होता जाता है। अन्य जातियों को अपनी अनुन्नत अवस्था में जिस कार्य में पचास वर्ष लगे होंगे, उसीमें हमको हमारे कण्टकाकीर्ण मार्ग के कारण उससे कई गुना समय लग जायगा। अङ्गरेज़ जाति ने अपने विजेता रोमन और ग्रीक लोगों से जो कुछ सीखा था, उसके लिए आज भी वे मुक्त-कण्ठ से उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करते हैं।

इन बातों का तात्पर्य यह नहीं है कि हम अङ्गरेज़ों के अनन्य भक्त बन जायँ, उनके स्वार्थों को भी न पहिचानें, और उन्हें अपने से अनुचित लाभ उठाने दें। बल्कि वास्तव में देखा जाय तो देशभक्ति और राजनीति भी उन्हीं से सर्वोत्तम सीखी जा सकती है। जिस चतुरता से वे हमें परास्त करते हैं, वही कला यदि हम उनसे प्राप्त कर सकें तो यह हमारे लिए एक बड़ी अच्छी बात होगी।

खेद है कि "बनावटी सौन्दर्य" के लेखक उनसे शिक्षा प्राप्त करने को 'अनुकरण का प्लेग' कहते हैं।

लेखक महोदय ने लिखा है कि इटली ने स्त्रियों के

बनाव-शृङ्गार में मर्यादा बाँधना प्रारम्भ कर दिया है। ठीक है। लेकिन इटेलियन इस कला के विरोधी नहीं हैं, विरोधी हैं उसमें निहित अश्लीलता के। वह उन दोषों को रोकना चाहते हैं जिन्हें कुछ विकृत रुचि वाली स्त्रियाँ फ़ैशन के नाम से समाज में ले आई हैं।

वर्तमान समय की शिक्षित 'फ़ैशनेबिल' स्त्रियों की वेश-भूषा पर जो दोष लेखक ने आरोपित किए हैं वे भी सर्वांश में सत्य मानने योग्य नहीं हैं। प्रत्येक स्त्री की वेश-भूषा और भाव-भङ्गियों की एक 'क्वालिटी' होती है; उसीसे उसके शील, चरित्र और मनोवृत्ति का अनुमान लगाया जाता है, केवल किसी अङ्ग के दीखने या न दीखने से नहीं। हमारे पुराने पहिनाव में रहने वाली अनेक स्त्रियाँ वस्त्र की कई तहों में मण्डित रहने पर भी बहुधा अपने ढकने योग्य अङ्गों का प्रदर्शन करती रहती हैं, परन्तु इससे उन्हें दुश्चरित्र कहना अन्याय होगा। निस्सन्देह यह पहिनावा उस रमणी की पोशाक से, जो गर्दन और वक्षःस्थल के कुछ भाग को खुली वायु में रख कर उन्हें कान्तिमय बनाए रहती है, कहीं अधिक लज्जा-जनक और घृणास्पद है। यही बातें हैं, जिन्हें लेकर विदेशियों को हमारी सभ्यता का परिहास करने का अवसर मिलता है।

—केशवदेव शर्मा

शैशव

[श्री० रमाशङ्कर जी मिश्र 'श्रीपति']

(१)

प्रेमालोकित मन-मन्दिर में
प्रियतम का आह्वान किया।
प्रेमाराधन में निमग्न हो
प्रिय प्रतिमा का ध्यान किया॥

(२)

प्रेमोन्मत्त प्रेम-तृष्णा में
प्रेमामृत का पान किया।
मुक्त कण्ठ से प्रमुदित होकर
गुण गरिमा का गान किया॥

(३)

कल-निनादिनी कालिन्दी के
कूल-कछारों में भटका।
पूर्ण चन्द्र की दिव्य अलौकिक
अद्भुत आभा में अटका॥

(४)

अङ्क मालिका में उपवन की,
मलयज गिरि मालाओं में।
रेणु-राशि पर, रङ्ग-महल में,
चारु चित्र-शालाओं में॥

(५)

शैशव की वह शान्ति, सरलता,
नव्य नेह, जो था मन में।
प्रेम-पूर्ण वह भव्य भाव जो
भरा हुआ भोलेपन में॥

(६)

सुधा-स्निग्ध वाणी, वह चितवन,
आशा, कहाँ समाप्त हुई।
एक बार भी इस जीवन में
फिर न कहीं वह प्राप्त हुई॥
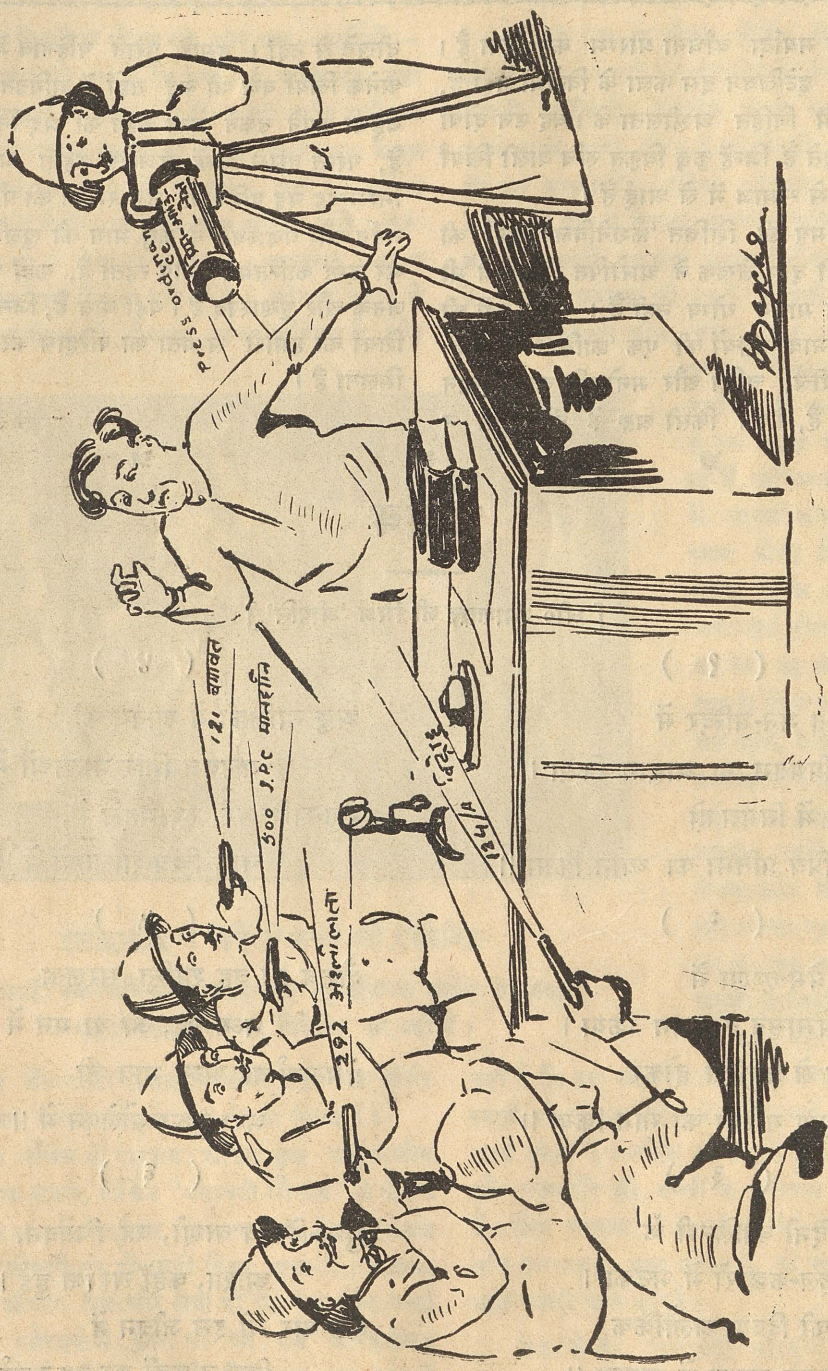
बेचारा सम्पादक

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह

["पागल"]

पाँचवाँ खण्ड

२

माता जी की बातें सुन कर यह मैंने रात ही को निश्चित कर लिया था कि बला से मेरी तबीयत अच्छी रहे या बुरी, मैं सुबह को अलिन्द का मकान खोल कर सरोज के ख़तों को ढूँढ़ निकालूँगा। उनसे सरोज के सम्बन्ध में केवल मेरी उत्सुकता ही नहीं शान्त होगी, बल्कि सम्भव है कि उनमें मुझे अलिन्द के अस्तित्व पर विश्वास करने का कुछ सहारा मिल जाय। इसमें शक नहीं कि मेरी बात के वज्राघात ने उसे नदी के पुल पर पहुँचाया। किस नीयत से वह स्पष्ट ही था। क्योंकि या तो वह पहिले ही मर चुका था, मगर जिस सहानुभूति पर वह किसी तरह जी रहा था, वह भी मेरी भूल से उसकी समझ में नष्ट हो गई। अब उसके जीवित रहने का बहुत-कुछ दारमदार उस पत्र पर था जो डाकिया ने उसे उसकी घबराहट की अवस्था में दिया था और शायद उसीको पुल पर पढ़ता हुआ वह देखा गया था। अगर वह पत्र सरोज का हो तब तो अनुमान यही है कि फ़ौरन उसकी धुन बदल गई होगी। ऐसी कुघड़ी में उसके उपद्रवी इरादे की रोक-थाम करने की शक्ति और किसी चीज़ में हो नहीं सकती। मगर क्या वह ख़त सरोज का हो सकता है, इसकी आशा सरोज के पुराने पत्रों की रङ्गत देख कर की जा सकती थी। उसकी अन्तिम भेंट के समय उसकी दशा का हाल माता जी द्वारा जान कर यह नतीजा निकलता था कि वह विवाहिता होने पर भी अपने पुराने प्रेम को भूल नहीं सकी है या उसकी आत्मा पर कोई ऐसा कष्ट पहुँचा है, जिससे उसकी पुरानी बातों की याद जाग्रत हो गई है और जिस तरह से डूबता हुआ मनुष्य एक तिनके के भी सहारे पर लपकता है, उसी तरह वह भी अपनी पूर्व स्मृति से अपने व्यथित हृदय को सन्तोष देना चाहती है। अस्तु, इन दोनों ही दशाओं में अलिन्द के पास उसका पत्र लिखना सम्भव हो सकता था। क्योंकि सङ्कट ही में हृदय अपने विश्वसनीय पात्रों को ढूँढ़ता और उनसे मिलने के लिए व्याकुल रहता है। ऐसी अवस्थाओं में वह अलिन्द को बिना याद किए रह भी नहीं सकती। अगर विवाह के बाद अपनी वेदना से विवश होकर उसने एकाध पत्र भी अलिन्द को भेजा है तब तो इस पत्र की बाबत बहुत बड़ी धारणा की जा सकती है कि उसी का हो। इन्हीं विचारों में लीन मैं अलिन्द के मकान की तलाशी ले रहा था, मगर घण्टों सर मारने पर भी सरोज का एक भी पत्र हाथ न लगा।

यह तो मुमकिन हो ही नहीं सकता था कि अलिन्द ने सरोज के पत्रों को नष्ट कर दिया होगा, बल्कि उन्हें तो उसने प्राणों से भी बढ़ कर सुरक्षित रक्खा होगा। इसी से मैं हताश नहीं हुआ और अपनी खोज और भी दृढ़तापूर्वक जारी की। कपड़ों के बक्स ढूँढ़े। दराज़ों को खोला। किताबें हटा कर उनके नीचे और पीछे देखा। ग़रज़ यह कि ऐसे-ऐसे गुप्त स्थान, जहाँ प्रेम-पत्र छिपा कर रक्खे जाते हैं, सभी देख डाले। मगर कहीं भी उनका पता न लगा। लापरवाही से इधर-उधर पड़ी अनेक स्त्रियों की चिट्ठियाँ मिलीं। मगर उनमें भी कोई सरोज की नहीं जान पड़ी। अलमारी के सिरे पर कुछ काग़ज़ों के कोने बेतरतीबी के साथ निकले हुए दिखाई दिए। कुरसी पर खड़ा होकर मैं उन्हें देखने लगा। मालूम हुआ कि उस पर रद्दियों का ढेर लगा है और उन पर गर्द की इतनी मोटी तह जमी थी जैसे बरसों से वे उल्टी-पल्टी तक नहीं गई हैं। उन्हें एक-एक करके हटाते-हटाते सबसे नीचे मुझे अलिन्द के नाम एक रजिस्ट्री लिफ़ाफ़ा मिला। वह ज्यों का त्यों बन्द था, जिससे जाना कि यह खोल कर पढ़ा भी नहीं

गया है और शायद लापरवाही से रद्दियों में मिल कर यहाँ फेंक दिया गया है और तब से योंही पड़ा हुआ है। मोहर बम्बई की थी और तारीख़ लगभग दस बरस पहिले की। भेजने वाले का नाम ए० टी० हुरमुज़ जी, मालिक—के० बी० नाटक कम्पनी था। मैं समझ गया कि अलिन्द ने इसे किसी नाटक कम्पनी के पर्दे वग़ैरह के 'डिज़ाइन' का आर्डर समझ कर इसके साथ ऐसी लापरवाही की है। एकाएक मुझे अलिन्द की उस वक्त की यह बात याद आई जब मैं जहाँनारा के ख़तों की बाबत उससे पूछपाछ कर रहा था कि बम्बई से एक रजिस्ट्री लिफ़ाफ़ा आया था, जिसकी रसीद पर दस्तख़त करते समय मुझे सरोज की आवाज़ सुनाई पड़ी थी और घबड़ाहट में उसे न जाने कहाँ फेंक कर सरोज के पास दौड़ा था। और उसी के साथ उसने यह भी कहा था कि मगर वह जहाँनारा का नहीं था। मुझे शक हुआ कि हो न हो, यह वही लिफ़ाफ़ा है। इसलिए मैंने कुतूहलवश उसे खोल डाला। मगर उसके भीतर का सामान देखते ही मेरे हाथ से वह छूट पड़ा।

उसमें कई ख़त एक में नत्थी किए हुए निकले और उनके साथ कई हज़ार के नोट भी थे। फिर भी लिफ़ाफ़ा बीमा किया हुआ न था। मैं ताज्जुब में आकर इन भीतरी सामानों को फिर उलट-पलट कर देखने लगा। इस दफ़े उनमें एक अङ्गरेज़ी का ख़त ऐसा मिला जो सभों से अलग था। मैंने उसी को सबसे पहिले पढ़ना शुरू किया :—

"प्रिय महाशय,

यद्यपि प्रेम और युद्ध में कोई बात अनुचित नहीं होती और मैंने जो कुछ भी किया वह प्रेम ही में अन्धा होकर, फिर भी मेरी आत्मा किसी तरह से मुझे अपने को अन्यायी और पापी समझने से नहीं रोकती। जब मेरी आत्मा ही मुझे किसी प्रकार से क्षमा नहीं कर पाती तब किसी से क्षमा माँग कर शान्ति की आशा करना मेरे लिए बेकार है। मुझे तो शान्ति अब अपने अन्यायी जीवन को अन्त कर देने ही में है। मैंने अपने अनुचित कृत्यों का प्रायश्चित बस इसी रूप से करने की ठानी है। परन्तु मरने के पहिले आप पर एक बहुत ही भारी काम सौंपता हूँ।

आप मुझे जानते नहीं हैं। मैंने भी आपको देखा नहीं है। फिर भी मैं आपको इस तरह जानता हूँ कि कभी मैं आपके ख़ून का प्यासा था। यद्यपि अब वह भाव मेरे हृदय में नहीं है, तथापि आपके किसी प्रकार के अनुग्रह को स्वीकार करने के लिए मेरा हृदय अब भी तैयार नहीं होता। मगर यह काम ही ऐसा है जिसके लिए आपके सिवाय अन्य कोई दूसरा उपयुक्त मनुष्य हो नहीं सकता। आशा है, आप इसके करने में कोई कसर उठा नहीं रक्खेंगे ; मेरी ख़ातिर नहीं, बल्कि उस जहाँनारा की ख़ातिर जो आपके प्रेम में ऐसी दीवानी थी कि मेरे प्रेम को अपनाने के लिए कभी सचेत ही नहीं हुई। आपके ख़्याल को उसके हृदय से मिटा देने के लिए मैंने कोटिशः यत्न किए। मगर अफ़सोस ! सदा निष्फल रहा। समय-समय पर वह प्रेम से बावली होकर जो चिट्ठियाँ आपको लिखती थी उन्हें मैं बराबर रोकता रहा। मगर हाय ! मैं कभी उसके ध्यान को रोक नहीं सका। उन पत्रों के एक-एक शब्द अङ्गारे की तरह मेरे हृदय पर जल रहे हैं। जब तक वे मेरे पास रहेंगे, मैं चैन से मर भी न सकूँगा। उसके हाथ के लिखे होने के कारण मैं उन्हें नष्ट भी नहीं कर पाता। इसलिए मैं उन्हें अब आपही के पास भेजे देता हूँ।

मैं कौन हूँ, शायद आपको जानने की इच्छा होगी। पहिले मैं बम्बई का एक करोड़पति सेठ था। मगर अब मैं विदीर्ण-हृदय एक कङ्काल हूँ। और थोड़ी देर बाद एक लावारिस लाश हो जाऊँगा। मेरा इतना अधःपतन बस प्रेम ही में पड़ कर हुआ। अफ़सोस ! जिसके लिए मैंने अपना सोने का संसार मिट्टी कर दिया, उसे कभी भी मेरी चाहत नहीं हुई और उसे चाहत हुई भी तो हाय ! किसकी ? आपकी, जिसने भूल कर भी कभी उसकी सुधि नहीं ली। वाह री ! प्रेम की उलटी चाल !

लगभग तीन बरस हुए जब दुर्भाग्यवश एक दिन मैं एक थिएटर का तमाशा देखने गया था। स्टेज पर जहाँनारा को देखा। बस कलेजा थाम कर रह गया। फिर तो नित्य ही नाटक देखने जाता था और मकान आकर बिन पानी की मछली की तरह तड़पता था। अन्त में मुझे जहाँनारा को पाने की युक्ति सूझी। मैंने चटपट एक नई थिएटर की कम्पनी की स्थापना कर दी और अपने यहाँ ऐक्टरों की तनख़ाहें इतनी बढ़ा दीं कि जिस कम्पनी में जहाँनारा थी वह टूट गई। यही मेरा

उद्देश था। और इसीलिए मैं उसी कम्पनी के ऐक्टरों को ख़ास कर अपने यहाँ नौकरी देने लगा। वह कम्पनी टूटते ही जहाँनारा ख़ाली हो गई। और लोगों ने उसे अपने यहाँ बुलाने की कोशिश की, मगर मैंने तो उसीके लिए कम्पनी खोली थी। फिर मेरे आगे भला दूसरा कौन बाज़ी मार ले जा सकता था? इसलिए जहाँनारा मेरे यहाँ काम करने लगी।

उसके पीछे मैं साए की तरह रातों-दिन लगा रहता था। मगर मेरे प्रेमालाप पर वह यही कहा करती थी कि यह बातें मुझसे कहने के बदले अपनी स्त्री से कहिए। मैंने लाख सर पटका, मगर उसने प्रेम का आदर न किया और न किया। उसके पास सैकड़ों प्रेमियों के पत्र आया करते थे, जिनको वह बिना पढ़े ही मुझे फाड़ देने के लिए देकर कहती थी कि इन रूप के पतिङ्गों की तो यहाँ यह क़दर है, आप इनमें शामिल होकर अपनी क्यों बेइज़्ज़ती कराते हैं?

जब कभी उसके 'पार्ट' में प्रसन्नता के भाव होते थे, तभी वह अपने पार्ट की ख़ातिर स्टेज पर प्रसन्न दिखाई देती थी। मगर बाद को उसको मैंने कभी प्रसन्न नहीं देखा। वह अधिकतर एकान्त ही में चिन्तित रहा करती थी। एक दिन मैंने उसे एक पत्र लिखते देखा। मेरे हृदय में खलबली मच गई। उस पत्र को मैंने डाक तक पहुँचने न दिया। बीच ही में रोक लिया। उसे पढ़ने पर अपने प्रेम के अनादर का कारण मालूम कर लिया। अब जाना कि वह आप पर मरती है, क्योंकि वह पत्र आप ही के लिए था। जब उसका हृदय अन्यत्र उलझा हुआ था तब वह मुझे कैसे प्यार कर सकती थी? कई दफ़े जी में आया कि काशी जाकर मैं आपका काम तमाम कर दूँ और यों अपने रास्ते का काँटा दूर करूँ। मगर मैं उसके पास से दूर कहीं जा नहीं सकता था। दिल में यह भी शङ्का थी कि उसके पास रुपए काफ़ी हैं। उसे नौकरी की परवाह नहीं है। मेरे बर्ताव से तङ्ग आकर कहीं बम्बई छोड़ न दे। धीरे-धीरे यह शङ्का दृढ़ हो चली। उसने एक दिन नौकरी छोड़ देने के लिए भी कहा। मगर उसी रात को मैंने उसके कुल सामान चोरी करा दिए। तब उसे झक मार कर मेरे आश्रय पर फिर रहना पड़ा। अन्यत्र उसे नौकरी मिल सकती थी। मगर कोई मेरे बराबर उसे तनख़ाह दे नहीं सकता था और बड़ी तनख़ाह बिना किसी कारण के छोड़ कर छोटी तनख़ाह पर जाने से वह समझती थी कि उसके चरित्र पर फ़ौरन कलङ्क लग जायगा और तब उसकी सारी इज़्ज़त ख़ाक में मिल कर टके-टके की भी महँगी हो जायगी। यह रुपए जो इस पत्र के साथ जाते हैं, उसीके हैं, जो उसके चुराए हुए सामानों में मिले थे। ईश्वर की कृपा से ये अब तक मेरे पास वैसे ही रक्खे रह गए। इनमें से एक पैसा भी मुझे ख़र्च करने को साहस नहीं हुआ।

अपने पत्र का उत्तर आपसे न पाकर वह कुछ निराश सी हो चली। यह देख कर मैं मन ही मन बहुत ख़ुश हुआ और उसके पत्रों को बराबर मैं इसी तरह रोकता रहा, ताकि आपकी तरफ़ से एकदम निराश होकर वह मेरी तरफ़ झुके। उसकी डाक पर भी कड़ी नज़र रखता था। मगर धन्य ईश्वर! आपने कभी उसे कोई पत्र ही नहीं भेजा, वरना वह उसके हाथ तक पहुँचने के पहिले ही टुकड़े-टुकड़े हो जाता।

जब आपके लिए लिखे हुए पत्र से मालूम हुआ कि वह अपने पत्रों का उत्तर न पाकर आपसे बिल्कुल निराश हो चुकी है, तब मैंने उसके साथ अपनी क़ानूनी शादी (Civil marriage) करने का प्रस्ताव किया। उस वक़्त उसने कहा कि जब आपके स्त्री मौजूद ही है तब आपको विवाह की क्या आवश्यकता? मैंने पूछा कि अगर मेरे स्त्री न होती तब क्या तुम मेरी स्त्री होना पसन्द करतीं? उसने जवाब दिया तब देखा जाता। उसकी इस बात से मेरे हृदय में कुछ आशा उभर उठी और मैंने चुपके से अपनी स्त्री को एक दिन ज़हर दे दिया। मगर अफ़सोस! एक ख़ून करके भी मेरी मनोकामना पूरी न हुई।

जिस दिन मैंने अपनी स्त्री की हत्या की, उसी दिन मेरी कम्पनी के स्टेज में आग लग गई। लाखों रुपए का सामान जल गया। जिस बैङ्क में मेरा रुपया था उसका भी उसी दिन दिवाला निकला। मैं एक ही दिन में कङ्गाल हो गया। मेरे सब ऐक्टर छोड़-छोड़ कर भाग गए। जहाँनारा का स्वास्थ्य चिन्तित रहते-रहते बहुत-कुछ बिगड़ चुका था और अन्त में उसे हलका सा बुख़ार

(शेष मैटर ३०७ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)
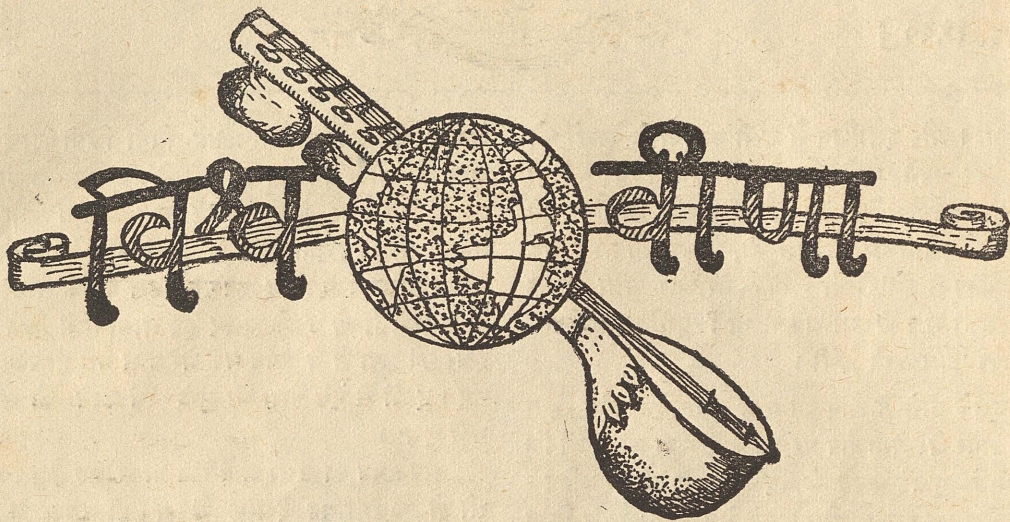
स्वदेशी और बायकॉट

आजकल हमारे देश में स्वदेशी और बायकॉट का आन्दोलन तीव्र वेग से प्रगति कर रहा है। बङ्ग-भङ्ग के विरोध में भी ऐसा ही आन्दोलन किया गया था और उस आन्दोलन को ज़बर्दस्त सफलता मिली थी। अनेक कारणों में वह आन्दोलन भी एक कारण था, और शक्तिशाली कारण था, जिसने गवर्नमेण्ट की नीति को पराजित करके बङ्गाल प्रान्त के दोनों विभागों को पुनः एकता के सूत्र में बाँध दिया। इस महान ऐतिहासिक क्रान्ति की ओर सङ्केत करते हुए किसी विद्वान ने कहा है—लॉर्ड कर्ज़न ने एक प्रान्त को छिन्न-भिन्न करने के प्रयत्न में एक शक्तिशाली राष्ट्र की उत्पत्ति कर दी।

सन् १९०५ ई० में कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन स्वर्गीय गोखले महोदय की अध्यक्षता में बनारस में हुआ। उस समय बङ्गाल में स्वदेशी और बायकॉट का आन्दोलन बड़े ज़ोरों पर था। कॉङ्ग्रेस के उस चिरस्मरणीय अधिवेशन में भारत के अनेक नरम और गरम नेताओं ने उस आन्दोलन के सम्बन्ध में जो विचार प्रगट किए थे, उनके कतिपय उद्धरण नीचे दिए जाते हैं। आशा है, ये उद्धरण 'चाँद' के पाठकों के लिए उपयोगी एवं मनोरञ्जक सिद्ध होंगे।

महामति गोखले

अब मैं कुछ शब्द स्वदेशी आन्दोलन के सम्बन्ध में कहूँगा। यद्यपि इस आन्दोलन को इसी प्रकार के एक दूसरे आन्दोलन से, जिसे बङ्गाल में ब्रिटिश माल के बायकॉट के लिए चलाया गया है, काफ़ी प्रोत्साहन मिला है, तथापि इन दोनों आन्दोलनों के अन्तर को समझना आवश्यक है। बायकॉट का आन्दोलन एक राजनीतिक अस्त्र है, जिसका उपयोग एक विशेष राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जा रहा है; और आज बङ्गाल की जैसी अवस्था है, उस अवस्था में इस अस्त्र का प्रयोग करना सब प्रकार से उचित है। हमारे देश की दशा की ओर अङ्गरेज़ों का ध्यान आकर्षित करने में भी इस आन्दोलन को ज़बर्दस्त सफलता मिली है। परन्तु इस प्रकार के अचूक अस्त्रों का प्रयोग घोर आपत्ति-काल में ही किया जाना चाहिए। (क्योंकि) इनके विफल हो जाने से देश को भयङ्कर हानि पहुँचने की आशङ्का रहती है और जब तक जनता के हृदय में क्षोभ और क्रान्ति के भाव लहरें न मारने लगें, तब तक इनके उपयोग में सफलता मिलने की सम्भावना कम ही रहती है। निस्सन्देह घोर आपत्ति-जनक अवस्थाओं में बायकॉट का आन्दोलन करना पूर्णतः न्याय-सङ्गत है, परन्तु ऐसे अवसरों पर यह अत्यन्त आवश्यक है कि आपस के मतभेदों को भुला दिया जाय और सब श्रेणी के लोग एक साथ मिल कर कार्य करें, जैसा बङ्गाल में किया जा रहा है।

× × ×

निर्बन्ध व्यापार का मूल तत्व यह है कि किसी पदार्थ को ऐसे स्थान में पैदा करना चाहिए जहाँ उसके

उत्पादन का व्यय सबसे कम पड़े और उसे ख़र्च ऐसे स्थान में करना चाहिए जहाँ उसका मूल्य सबसे अधिक हो। (इस सिद्धान्त के अनुसार) इस बात को प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार करेगा कि भारतवर्ष एक ऐसा देश है, जहाँ श्रम के सस्ता होने तथा कपास की प्रचुर उपज होने के कारण, सूती कपड़ों को तैयार करने की अपूर्व सुविधाएँ हैं; और यदि स्वदेशी आन्दोलन हमारे देश में कताई और बुनाई के शिल्प को पुनः उसी उन्नत अवस्था में पहुँचा सके—जिस अवस्था में वह किसी समय था और जिसे एक असाधारण घटनाचक्र ने नष्ट कर दिया—तो कहना पड़ेगा कि यह आन्दोलन निर्बन्ध व्यापार में बाधक नहीं, वरन उसका साधक है।

लाला लाजपत राय

मैं समझता हूँ कि हम लोगों की जो अवस्था है, हम लोगों की जैसी परिस्थिति है, उसमें हम लोगों के लिए उस नीति को ग्रहण करना सब प्रकार से उचित है, जिसे हमारे बङ्गाली भाइयों ने ग्रहण किया है। मेरा विचार है कि बङ्गाली भाइयों ने हमें उन्नति का एक मार्ग दिखाया है जिसके लिए हमें उन्हें बधाई देनी चाहिए; इतना ही नहीं, मैं तो इस विषय में उनसे ईर्ष्या करता हूँ। मेरे मन में उनके प्रति स्पर्द्धा का भाव है, साथ ही मुझे उनके लिए अभिमान है।

श्री० जी० एस० खापर्डे

अभी आपने देखा ही क्या है? आप बायकॉट के आन्दोलन को जारी रखिए और आप इससे भी बढ़ कर विनोदपूर्ण बातें देखेंगे। हम लोग हँसेंगे और वे रोएँगे (हँसी)। इन्हीं शब्दों में मैं आपको इस आन्दोलन की उपयोगिता बता देना चाहता हूँ।

श्री० वी० कृष्णस्वामी ऐयर

विदेशी माल के बहिष्कार का आन्दोलन कोई नया आन्दोलन नहीं है, यह कोई नया राजनीतिक अस्त्र नहीं है, जिसका बङ्गाल के निवासियों ने आविष्कार किया है। सन् १७०३ ई० में आयरिश पार्लमेण्ट ने यह निश्चित किया था कि आयरिश जनता केवल आयलैंण्ड में ही बने हुए वस्त्र का व्यवहार करेगी और दूसरे देशों के बने हुए वस्त्र को उपयोग में नहीं लाएगी। सन् १७०७ ई० में आयरिश पार्लमेण्ट के सदस्यों ने इस बात की शपथ ली कि वे केवल उसी वस्त्र को पहनेंगे जो आयलैंण्ड में बना होगा। सज्जनो, इङ्गलैण्ड वालों ने अठारहवीं शताब्दी में जब अमेरिका के माल को अपने देश में आने से रोकना चाहा तो इसके जवाब में अमेरिका के सबसे धनी नागरिकों ने यह निश्चित किया कि वे विदेशी वस्त्र का बहिष्कार करेंगे और उसके बदले अपने ही देश में बना हुआ वस्त्र पहनेंगे। उन लोगों ने यहाँ तक प्रतिज्ञा की कि वे खाने के लिए भेड़ों की हत्या नहीं करेंगे, क्योंकि इससे ऊन की कमी हो जाने की आशङ्का थी। सज्जनो, कौन कह सकता है कि इस प्रकार का आन्दोलन ग़ैरक़ानूनी है अथवा इससे देश के क़ानून को किसी प्रकार का आघात लग सकता है?

श्री० दाजी अबाजी खरे

आख़िर बायकॉट है क्या? यह बनियों के व्यवसाय की एक समस्या है। मैं जानता हूँ कि हमारे बङ्गाली भाइयों ने जो बात सबसे अधिक प्रत्यक्ष रूप से हमें दिखा दी है, वह यह है कि अङ्गरेज़ों की जाति बनियों की जाति है। बायकॉट का आन्दोलन आरम्भ होने के बाद दमन सम्बन्धी कार्रवाइयाँ जारी की गई हैं, परन्तु सभाओं के बाद, असन्तोष भरे भाषणों के बाद, प्रार्थनाओं के बाद वे जारी नहीं की गईं, वे जारी की गई हैं केवल बायकॉट के बाद। क्यों? क्योंकि बङ्गाल ने कहा—'हम तुम्हारा माल नहीं ख़रीदेंगे।' इस पर अङ्गरेज़ जाति ने

(३०९ पृष्ठ का शेषांश)

रहा करता था। उस हालत में भी वह अपने काम करने से नहीं चूकी। मगर कम्पनी टूटते ही उसने चारपाई ली। इसलिए वह मेरी कोठी से अलग न जा सकी......।"

मैं इस ख़त को इतना ही पढ़ सका था कि मेरी आँखों में आँसू भर आए और क्रोध से मेरा ख़ून उबल उठा। मैं किसी तरह भी इस पत्र को उस वक़्त आगे पढ़ न सका।

(क्रमशः)

* * *

यह भाव प्रगट किया—'जब तक तुम हमारा माल ख़रीदते हो तब तक हम इस बात की परवा नहीं करते कि तुम क्या कहते हो, किस तरह हमारी समालोचना करते हो। तुम केवल हमारा माल ख़रीदते जाओ और शेष बातों की हम परवा नहीं करते।'

श्री० ए० एच० गज़नवी

हिन्दू और मुसलमान दोनों को इस बात का निमन्त्रण दिया गया है कि चाहे कैसी भी भयानक विपत्ति क्यों न उपस्थित हो जाय, वे एक दूसरे के कन्धे से कन्धा मिला कर खड़े रहें। जब तक बङ्ग-भङ्ग क़ायम है, तब तक वे किसी भी दशा में बायकॉट का परित्याग नहीं कर सकते ; हम लोगों ने, हमारी स्त्रियों ने और हमारे बच्चों ने जो प्रतिज्ञा की है, उसे हम पूरा करेंगे। हम अपने घरों में अङ्गरेज़ी माल के एक छोटे से टुकड़े को भी प्रवेश न करने देंगे।

* * *

मुस्लिम-समाज और पर्दा

स्थानीय सहयोगी 'लीडर' में मिस्टर एन० सी० मेहता, आई० सी० एस० महोदय का उपरोक्त विषय पर एक बड़ा विचारपूर्ण लेख कुछ दिन हुए प्रकाशित हुआ था, जिसका भावानुवाद नीचे दिया जा रहा है।

मैं समझता हूँ, हिन्दुओं में यह विश्वास फैला हुआ है कि इस देश में पर्दा और बाल-विवाह की प्रथा प्रथमतः मुसलमानों के यहाँ आने के कारण हो गई है। संस्कृत-साहित्य से जो लोग अभिज्ञता रखते हैं, वे बता देंगे कि यह विश्वास सम्पूर्ण अमूलक है। यह सम्भव है कि पहिले से चली आने वाली यह प्रथा मुसलमानों के शासन-काल में कुछ अधिक दृढ़ हो गई हो। किन्तु स्त्रियों के घूँघट निकालने की प्रथा तो बहुत ही प्राचीन समय से चली आती है। हमारे ग्रन्थों में 'अवगुण्ठनवदना वृत्तिगाखिक' इत्यादि ऐसे कई शब्द आए हैं जो इस बात को बताते हैं। आठवीं शताब्दी का 'कुट्टनीमतम्' नामक एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसे काश्मीर के राजा जयापीड़ के प्रधान मन्त्री दामोदर गुप्त ने बनाया। इस पुस्तक में वे कहते हैं कि भद्र महिलाओं का एक मात्र चिह्न उनका घूँघट है। इसके सिवा भी ऐसे अनेक उल्लेख हैं जिनसे प्राचीन और मध्ययुग के हिन्दुस्तान में इस प्रथा का रहना सिद्ध होता है।

प्रसिद्ध ऐतिहासिक श्रीयुत चिन्तामणि विनायक वैद्य का कहना है कि उत्तरीय भारतवर्ष में यूनानियों और उनसे भी पहिले पारस देशवासियों द्वारा पर्दा की प्रथा चलाई गई। आचार्य हॉपकिन्स का यह विचार है कि सम्भवतः घूँघट निकालने की प्रथा राजसभाओं में ही प्रचलित थी। जो कुछ हो, स्त्रियों को पर्दे में रखना कम से कम रामायण और महाभारत के समय से कुलीन और सम्भ्रान्त लोगों में प्रचलित था। जब लक्ष्मण जी वानर और राक्षसों की मण्डली के सामने सीता जी को पैदल ले आए तो श्रीरामचन्द्र जी ने कहा कि विपदकाल में, विवाह में, तथा यज्ञ में स्त्री का सबके सामने निकलना आपत्तिजनक नहीं है (एपिक इण्डिया सी० वी० वैद्य-लिखित, पृष्ठ १७३)। भासकृत प्रसिद्ध नाटक "प्रतिमा" का एक उद्धरण देखिए। इस ग्रन्थ की रचना का समय ईसा से एक शताब्दी पहिले से ३०० ई० तक के बीच में किसी समय माना जाता है। इसके प्रथम अङ्क के अन्त में जब श्रीरामचन्द्र जी अपने भाई और पत्नी को साथ लेकर अयोध्या से बाहर निकलने को उद्यत होते हैं, वे सीता जी को अपना घूँघट खोलने को कहते हैं और नगर-वासियों को निःशङ्क होकर उनका दर्शन करने को बुलाते हैं। वे कहते हैं कि यज्ञ में, विवाह में, विपदकाल में तथा वन में, स्त्रियों का खुला मुँह दिखाई देना कोई आपत्तिजनक बात नहीं है। यह बात शीघ्र समझ में आ जायगी कि भारत के सभी भागों में पर्दा की प्रथा कभी नहीं चल सकी होगी। स्त्रियों को पर्दे में रखना एक पुरानी रीति है, जो प्राचीन समय में प्रायः सब जगह फैली हुई थी। ज्यों-ज्यों देशों में स्वाधीनता और उन्नति होती गई, यह प्रथा भी हटती गई। मैंने सर्वदा यह अनुभव किया है कि दासत्व और घोर असभ्यता का यह रहा-सहा चिह्न लुप्त होने लग गया होता यदि महात्मा गाँधी जी ने अपनी अतुल शक्ति और प्रभाव को हमारी सामाजिक कुरीतियों को मिटाने में लगाया होता।
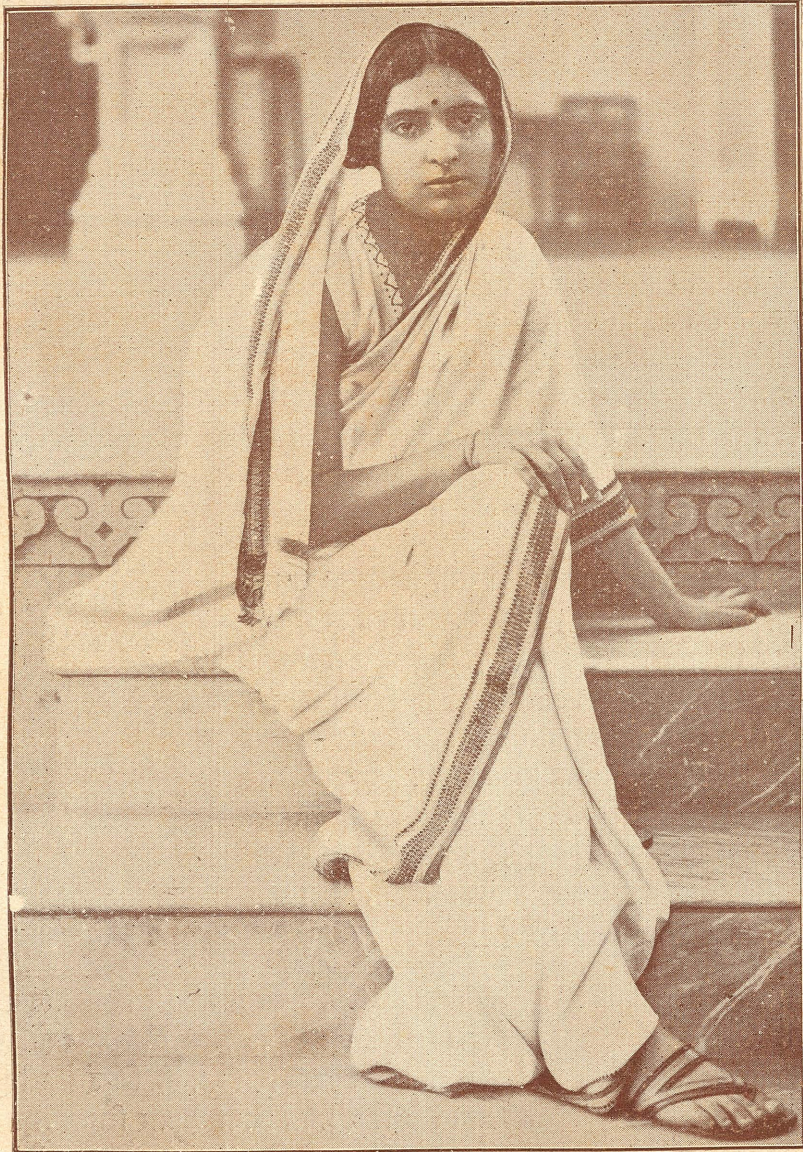
श्रीमती विजय लक्ष्मी पण्डित

आप त्यागमूर्ति पण्डित मोतीलाल नेहरू की बड़ी पुत्री हैं। इलाहाबाद की स्त्रियों में राष्ट्रीय भावना का प्रचार करने वालों में आपका एक विशेष स्थान है।

SPECIALLY PHOTOGRAPHED FOR THE CHAND

कुछ लोगों का ख़्याल यह है कि दिल्ली में कई शताब्दियों तक मुसलमानों का शासन रहने के कारण ही अन्य प्रान्तों की अपेक्षा भारत के उत्तरी प्रान्त में पर्दे का अधिक प्रचलन है। किन्तु यह विचार भी ठीक नहीं है, क्योंकि गुजरात १३ वीं शताब्दी के अन्त में ही मुसलमानों के अधीन हो गया और उस पर मुस्लिम संस्कृति का इतना ज़बर्दस्त प्रभाव पड़ा कि अहमदाबाद में हिन्दू और मुस्लिम कलाओं के सम्मेलन के अद्वितीय नमूने पाए जाते हैं। समस्त भारत में जौनपुर ही एक ऐसा स्थान है जो इस विषय में अहमदाबाद का मुक़ाबला कर सकता है। हमारी राय में, भारत के दक्षिण और पश्चिम प्रान्त की स्त्रियों की स्वाधीनता का इतिहास, भारतीय इतिहास के उन अंशों में से है, जिन्हें किसी ने अभी तक समझने-समझाने की चेष्टा नहीं की है। जो कुछ हो, इसमें सन्देह नहीं कि स्त्रियों की स्वाधीनता का आन्दोलन बहुत पीछे आरम्भ हुआ, और यह नहीं कहा जा सकता कि किसी प्रान्त में पर्दे का होना या न होना विशेषतः मुस्लिम प्रभाव के कारण ही है।

मैंने यह इसलिए लिखा है कि शिक्षित हिन्दू-मुसलमान भी दुर्भाग्यवश हमारे इतिहास की मोटी-मोटी बातों तक से अनभिज्ञ हैं। मुग़ल-राज्य में हमें भारतीय सभ्यता की एकता को प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी, क्योंकि उस समय अकबर, ख़ान-ख़ाना, अब्दुर्रहमान, बीरबल, तानसेन तथा इन्हीं के सरीखे और बहुत से मनुष्य थे जो अपने नित्य के रहन-सहन और कार्यों में दिखा देते थे कि वे भारतीय सभ्यता की एकता की साक्षात मूर्ति थे। परन्तु अब ज़माना बदल गया है। इस समय इस बात को समझने की ज़रूरत है कि मुस्लिम संस्कृति की कौन-कौन सी बातें भारतीय संस्कृति में मिल कर एकाकार हो गई हैं। बहुत लोगों को यह न मालूम होगा कि हमारी आधुनिक भाषाओं की उन्नति में मुस्लिम शासकों ने बड़ी सहायता की है। रायबहादुर दिनेशचन्द्र सेन की पुस्तक—जिसमें बङ्गला भाषा और साहित्य का इतिहास लिखा गया है—का निम्न-लिखित उद्धृत भाग पढ़ने योग्य है— बङ्ग भाषा के साहित्य ने इतनी जल्दी जो सम्मान प्राप्त किया है उसके कई कारण हैं, जिनमें से इस देश पर मुसलमानों का विजय निस्सन्देह एक प्रधान कारण है। यदि हिन्दू राजा स्वाधीन बने रहते, तो बङ्ग भाषा राजाओं की सभा में पहुँचने का सुयोग शायद ही पा सकती।

हिन्दी साहित्य की उन्नति में भी हिन्दुस्तानी मुसलमानों का भाग बहुत महत्वपूर्ण है। अमीर ख़ुसरू, कबीर, मुहम्मद जायसी, रहीम, रज़ा ख़ाँ, आलम और उनकी विदुषी पत्नी, शेख़ रँगरेज़िन और बीसियों ऐसे और लोगों को स्मरण करने से ही इस बात की पुष्टि हो जायगी।

* * *

क्या बहुविवाह न्याययुक्त है ?

यह खोजपूर्ण और सारगर्भित लेख बाबू पीतमलाल जी, एम० एस० सी०, एल० एल० बी०, एडवोकेट का लिखा हुआ है। इसे हम सहयोगी 'आर्यमित्र' से उद्धृत कर रहे हैं। आशा है, इसे पढ़ कर बहुविवाह के पक्ष में स्मृतियों और धर्मशास्त्रों की दुहाई देने वाले हिन्दू-समाज की आँखें खुलेंगी और वह इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता का अनुभव करेगा।

हिन्दुओं में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित कही जाती है। यह भी कहा जाता है कि हिन्दूशास्त्रों में स्त्री-जाति का स्थान नीचा है। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार, स्त्री मनुष्य की सम्पत्ति है, जो अन्य वस्तुओं की भाँति ली अथवा दी जाती है। स्त्री कदापि स्वतन्त्र रहने के योग्य नहीं है। उसको अपने लिए पति चुनने का कोई अधिकार नहीं है। जिस पुरुष के साथ उसका विवाह कर दिया जावे, चाहे वह कुरूप, अयोग्य और अनुचित (?) ही क्यों न हो, स्त्री को उसकी आजन्म आज्ञा माननी और सेवा करनी योग्य है। इसके विपरीत, पति अपनी स्त्री को, जब चाहे बिना किसी कारण और दोष के, छोड़ सकता है और एक अथवा अधिक पत्नी के होते हुए, जितनी स्त्रियों से अपना विवाह करना चाहे कर सकता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जाता है कि हिन्दू शास्त्रों में बहुविवाह करने की आज्ञा है और हिन्दुओं में बहु-

विवाह की प्रथा चिरकाल से प्रचलित है और इसलिए क़ानून भी इस प्रथा को उचित समझता और मानता है।

अङ्गरेज़ी राज्य की अदालतों ने, जो उपरोक्त सम्मति बहुविवाह के सम्बन्ध में निश्चित की है, वह कम से कम हिन्दू धर्मशास्त्रों के आदेशानुसार नहीं है, बल्कि हिन्दू शास्त्रकारों के शास्त्र और मन्तव्य दोनों के विरुद्ध है। हिन्दू समाज में जो स्थान स्त्रियों को हिन्दू शास्त्रकारों ने दिया है और उनके जो अधिकार तथा कर्त्तव्य वर्णन किए हैं, उन पर इस समय विचार न करते हुए हम इस लेख में केवल यह दिखावेंगे कि बहुविवाह की वर्तमान प्रचलित प्रणाली कभी शास्त्रोक्त और उचित नहीं मानी जाती थी। अङ्गरेज़ी सरकार के जजों ने हिन्दू शास्त्रों के अर्थ ठीक-ठीक नहीं समझे और परिणाम भी ठीक नहीं निकाला। नतीजा यह हुआ कि इस विषय पर सरकारी अदालतों की नज़ीरें हिन्दू शास्त्रों के विरुद्ध हो गई हैं, जिनका आधार किसी उचित और युक्तियुक्त रिवाज पर भी नहीं है। अब हम बहु-विवाह के पक्ष में जो युक्तियाँ दी जाती हैं, उन पर एक-एक करके विचार करेंगे।

प्रथम युक्ति

बहु-विवाह के पक्ष में पहिली युक्ति यह है कि मनु महाराज ने मनुस्मृति अध्याय ३, श्लोक १२ तथा १३ द्वारा बहु-विवाह को अनुचित बतलाया है, उसका सर्वथा निषेध नहीं किया है। मनुस्मृति के ये श्लोक इस प्रकार हैं :—

सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि।
कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशो वराः॥
—अ० ३, १२

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते।
ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः॥
—अ० ३, १३

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को विवाह करने में प्रथम अपने वर्ण की कन्या श्रेष्ठ है और कामाधीन विवाह करे तो क्रम से ये नीची भी श्रेष्ठ हैं। शूद्र को शूद्र ही की कन्या से, वैश्य को वैश्य की और शूद्र की कन्या से, क्षत्रिय को शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय की कन्या से, और ब्राह्मण को शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण की कन्या से विवाह कर लेना भी बुरा नहीं है। इन श्लोकों द्वारा दूसरा विवाह केवल उन पुरुषों के लिए कहा गया है जो कामातुर अथवा कामाधीन हैं। इन श्लोकों में बहुविवाह के सामान्य नियम की शिक्षा नहीं है। इसके सिवाय यदि कोई पुरुष एक स्त्री के होते हुए दूसरा विवाह करना चाहे तो वह अपने वर्ण से नीच की कन्या से विवाह करे। उसको अपने ही वर्ण में दूसरी स्त्री से विवाह करने की किसी दशा में भी आज्ञा नहीं दी गई। वर्तमान स्थिति में एक पुरुष एक स्त्री के होते हुए अपने वर्ण में से चाहे जितनी कन्याओं से विवाह कर सकता है। यह बात क़ानून की दृष्टि में उचित है, परन्तु मनुस्मृति की शिक्षा के सर्वथा विरुद्ध है। मनुस्मृति के उपरोक्त श्लोकों में इस बात का विधान नहीं है कि एक मनुष्य कितनी स्त्रियों से विवाह कर सकता है, बल्कि इस बात का विधान है कि मनुष्य किस वर्ण की कन्या से विवाह कर सकता है।

प्रसिद्ध प्रमाण

माननीय सर गुरुदास बनर्जी ने मनुस्मृति अध्याय ६, श्लोक ७७, ८० तथा ८१ के आधार पर यह माना है कि "यह सत्य है कि बहु-विवाह की आज्ञा विशेष दशाओं में स्पष्ट दी गई है" (देखो Hindu Law Marriage and Stridhana, p. 40) इसी प्रकार मैकनाटन, (Principles of Hindu Law, page 58) स्ट्रेन्ज, (Hindu Law, page 52) और श्यामाचरण सरकार (व्यवस्था-दर्पण, पृष्ठ ६७२) की सम्मति में बहु-विवाह का विशेष दशाओं को छोड़ कर सामान्य रूप से निषेध है। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने मनुस्मृति, अध्याय ३, श्लोक १२,१३ के आधार पर कहा है कि एक पुरुष अपने वर्ण की एक से अधिक स्त्री नहीं कर सकता है, सिवा उन दशाओं के जिनमें दूसरी स्त्री करने की आज्ञा दी है अर्थात् बहु-विवाह की वर्तमान प्रचलित प्रणाली का शास्त्रों में निषेध है।

मनुस्मृति में बहु-विवाह का सामान्य रूप से विधान नहीं है, बल्कि बहु-विवाह का निषेध है और यह कामाधीन पुरुषों के लिए केवल मान लिया गया है, यह बात मनुस्मृति से स्पष्ट है।

न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः।
कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्योपदिश्यते॥
—अ० ३,१४

अर्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय को आपत्काल में भी किसी भी दृष्टान्त में शूद्रा भार्या नहीं बताई गई है।

हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः।
कुलान्येव नयन्त्याशु ससन्तानानि शूद्रताम्॥

—अ० ३, १५

अर्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य मोहवश अपने वर्ण से हीन वर्णस्थ स्त्री से विवाह करें तो सन्तान समेत वे अपने कुल को शूद्र बना देते हैं।

शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणोयात्यधोगतिम्।
जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेव हीयते॥

—मनु० अ० ३, १७

अर्थ—शूद्रा को शय्या पर सुलाने से ब्राह्मण नीच गति को प्राप्त होता है और उससे सन्तान उत्पन्न करके तो ब्राह्मणत्व से ही हीन हो जाता है।

दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु।
नाश्नन्ति पितृदेवास्तन्न च स्वर्गं स गच्छति॥

—अ० ३, १८

अर्थ—जिस ब्राह्मण ने शूद्रा स्त्री के प्रधानत्व से होम, श्राद्ध और अथिति-भोजन कराना चाहा है, उसका अन्न पितृ संज्ञक और देवता संज्ञक पुरुष ग्रहण नहीं करते और वह पुरुष स्वर्ग को प्राप्त नहीं होता।

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च।
तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते॥

—अ० ३, १९

अर्थ—शूद्रा के मुख चुम्बन करने वाले और उसके मुँह की भाप लगने वाले पुरुष की तथा उससे उत्पन्न सन्तान की शुद्धि नहीं होती।

इससे यह स्पष्ट है कि इस युक्ति में कोई सार नहीं है कि मनुस्मृति में बहुविवाह की आज्ञा है। सर गुरुदास बनर्जी, मैकनाटन, स्ट्रेंज, श्यामाचरण सरकार और पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की भी यही सम्मति है कि बहु-विवाह केवल परिमित विशेष दशाओं में किया जा सकता है।

विष्णुस्मृति

विष्णुस्मृति के आधार पर भी बहुविवाह की प्रथा का समर्थन किया जाता है। वह नियम इस प्रकार है:—

ब्राह्मण स्ववर्ण और नीचे के वर्ण की चार स्त्रियों से विवाह कर सकता है। विष्णु० ४-१।

एक पति की बहुत सी स्त्रियों में से एक का पुत्र सबका पुत्र होता है। और उसको उनकी मृत्यु के पश्चात् पिण्ड-दान करना उचित है। विष्णु १५-४१।

यदि एक ब्राह्मण के (चार वर्णों की चार स्त्रियों से) चार पुत्र हैं तो वह पिता की सम्पत्ति को दस भागों में विभाजित करेंगे। विष्णु १८-१।

यदि हम उपरोक्त प्रमाणों पर विचार करें तो पता चलता है कि विष्णुस्मृति का मत वही है जो मनु ने मनुस्मृति अ० ३, श्लोक १२, १३ में कहा है, अर्थात् स्ववर्ण से नीचे वर्ण की स्त्री रक्खी जा सकती है, स्ववर्ण की ही एक से अधिक स्त्रियाँ रखने का कोई नियम वर्णन नहीं किया गया है। अतः विष्णुस्मृति के आधार पर भी उस विवाह का समर्थन नहीं होता।

दूसरी युक्ति

बहुविवाह के पक्ष में दूसरी युक्ति यह है कि चूँकि विवाह का मुख्य उद्देश्य पुत्र उत्पन्न करना है—जो पिता को नरक के दुःखों से बचावे—इसलिए बहुविवाह करना चाहिए; क्योंकि सम्भव है एक स्त्री के रखने का नियम बनाने से उद्देश्य-पूर्ति न हो।

यह सत्य है कि हिन्दू-धर्म में विवाह का मुख्य उद्देश्य पुत्र उत्पन्न करना है, ताकि वह अपने पिता की सम्पत्ति का वारिस बन कर उसका उपभोग करे। यह उद्देश्य इतना महत्वपूर्ण माना गया है कि पुत्रोत्पत्ति को पितृऋण चुकाना कहा गया है। यह विचार मनुष्य-प्रकृति के स्वाभाविक सिद्धान्त पर अवलम्बित है, जिसके द्वारा मनुष्य अपनी स्वाभाविक इच्छा पुत्र उत्पन्न करके पूर्ण करे और उसको अपनी सम्पत्ति का वारिस छोड़े। ऐसा मानते हुए भी यह समझ में नहीं आता कि हिन्दू-शास्त्रों में, जो पुत्रोत्पत्ति को बहुत उच्च स्थान देते हैं, उस आपत्ति के लिए कोई नियम न बताया गया हो अर्थात् जब कोई मनुष्य पुत्रहीन हो और उसके अपनी पत्नी से कोई पुत्र उत्पन्न न हुआ हो या पुत्र उत्पन्न होने की आशा ही न हो।

मनुस्मृति

महाराज मनु ने ऐसी स्थिति पर पूर्ण रीति से

विचार किया है और उसके लिए व्यवस्था दी है। लिखा है कि :—

मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत्।
व्याधिता वाधिवेत्तव्या हिंस्राऽर्थघ्नीच सर्वदा ॥
—मनु अ० ९, श्लो० ८०

अर्थात्—मद्य पीने वाली और बुरे चलन वाली तथा पति के विरुद्ध चलने वाली और सदा बीमार रहने और मारने वाली और सदा धन का नाश करने वाली स्त्री हो तो उसके रहते हुए भी दूसरी स्त्री करना उचित है।

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥
—मनु० अ० ९, श्लोक ८१

या रोगिणी स्यात्तु हिता सम्पन्ना चैव शीलतः।
सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित् ॥
—मनु० अ० ९, श्लो० ८२

अर्थात्—यदि आठ वर्ष तक कोई सन्तान न हो तो दूसरी स्त्री कर ले और सन्तान होकर मरते ही रहें तो दश वर्ष में और लड़की ही होती हों तो ग्यारह वर्ष के पश्चात् और स्त्री अप्रिय बोलने वाली हो तो उसी समय (दूसरी स्त्री कर ले)।

जो सदा बीमार रहे, परन्तु पति के अनुकूल और शीलवती हो तो उससे आज्ञा लेकर दूसरी स्त्री कर ले और उसका अपमान कभी न करे।

मनुकृत उपरोक्त नियमों से स्पष्ट है कि यदि किसी पुरुष की पहिली स्त्री से पुत्र उत्पन्न न हो अथवा उचित समय के भीतर पुत्रोत्पत्ति की आशा न हो और स्त्री में दोष होने के कारण ये बातें हों, तो ऐसी दशा में पुरुष दूसरी स्त्री से विवाह कर सकता है, अन्यथा नहीं।

अन्य प्रमाण

मनु के उपरोक्त श्लोकों के आधार पर सर गुरुदास बनर्जी, मैकनाटन, स्ट्रेंज, श्यामाचरण सरकार, और पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने उपरोक्त दशाओं के अतिरिक्त बहुविवाह की प्रणाली को अनुचित और शास्त्रों के विपरीत बतलाया है। श्री० सरकार ने अपनी पुस्तक (Law of adoption पृष्ठ ९४) में अपने विचार इस प्रकार प्रगट किए हैं :—

"शास्त्रों का मन्तव्य यह था कि बहुविवाह को कम किया जावे, इस विचार से शास्त्रों में विवाह संस्कार को एक धार्मिक संस्कार कहा है और एक स्त्री के होते हुए धार्मिक कार्यों के लिए दूसरी स्त्री करना केवल उन विशेष दशाओं में बतलाया है जब पहिली स्त्री से विवाह का लक्ष्य पूरा न हुआ हो अर्थात् पुत्र-उत्पत्ति न हुई हो। उन लोगों के लिए, जो कामवश हों, अपने वर्ण से नीचे वर्ण की स्त्री करने की आज्ञा है, परन्तु वह स्त्री सांसारिक कार्यों के लिए ही होगी और वह पत्नी-धर्म के योग्य न समझी जावेगी।"

उपरोक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट सिद्ध है कि बहुविवाह का निषेध है और उसकी आज्ञा केवल उन दशाओं में दी गई है, जब विवाह के अभीष्ट अर्थात् पुत्रोत्पत्ति की पूर्ति प्रथम विवाह से न हुई हो।

दत्तक पुत्र

इस सम्बन्ध में एक बात और विचारणीय है, जिसको दृष्टि से अलग रखना अनुचित है। हिन्दू शास्त्रों में कहा है कि यदि किसी पुरुष की पहिली स्त्री से पुत्र उत्पन्न न हो, तो उसको अपनी जाति में से दत्तक पुत्र लेने का अधिकार है। हिन्दू शास्त्रों में दत्तक पुत्र लेने की एक विशेष प्रथा है और यह उस समस्या की पूर्त्ति करती है जब कि औरस पुत्र उत्पन्न न हो। अतः जब तक कि हिन्दू शास्त्रों में दत्तक पुत्र लेने की व्यवस्था है तब तक किसी पुरुष को अपुत्र रहने का भय नहीं होना चाहिए, चाहे उसके औरस पुत्र उत्पन्न ही न हुआ हो और चाहे उसको अपनी स्त्री से औरस पुत्र होने की कोई आशा भी न हो। इससे यह प्रत्यक्ष परिणाम निकलता है कि यह युक्ति कि बहुविवाह पुत्रोत्पत्ति के लिए आवश्यक है, सार-रहित है और उसका त्याग ही ठीक है। बहु-विवाह साधारण रूप में नहीं, किन्तु केवल विशेष दशाओं में ही बतलाया गया है। इसके विपरीत अर्थ करना भूल है।

बहुविवाह के पक्ष में तीसरी युक्ति रिवाज के आधार पर कही जाती है। कहा जाता है कि हिन्दुओं में प्राचीन काल से बहुविवाह की प्रथा चली आती है, इसलिए यह प्रथा क़ानून की दृष्टि में भी उचित है। यह साधारण बात है कि रिवाज क़ानून की दृष्टि में तभी उचित और ठीक समझा जावेगा, जब कि उसमें नीचे लिखी शर्तों की

पूर्ति हो। देखना यह है कि रिवाज प्राचीन, एकरस, अनिवार्य, उचित, सदाचार से ठीक, निश्चित, न बदलने वाला इत्यादि है अथवा नहीं। बहु-विवाह की प्रथा न तो हिन्दुओं में अनिवार्य ही है और न साधारण रीति पर सब पुरुष बहु-विवाह करते ही हैं। यह प्रथा न उचित ही है और न न्याययुक्त। यह न प्राचीन है और न लगातार प्रचलित रही है। अतः यह रिवाज क़ानून में ठीक माना जाने योग्य नहीं है। इसके अतिरिक्त इस रिवाज से सदाचार पर आपत्ति आने के सिवाय सदाचार-वृद्धि होने की सम्भावना नहीं है। अतः बहु-विवाह की प्रथा की पुष्टि रिवाज के आधार पर भी नहीं की जा सकती।

अन्तिम परिणाम

हमने ऊपर यह दिखलाया है कि वर्त्तमान प्रचलित हिन्दू-क़ानून में बहु-विवाह की प्रथा उचित है। इसके अनुसार एक पुरुष अपनी जाति में से, जितनी चाहे उतनी स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता है। पहिली स्त्री की दुर्दशा और समाज में सदाचार के ह्रास और उसके दुष्परिणाम की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। किसी मनुष्य-समुदाय के लिए विवाह का क़ानून एक बहुत बड़ा महत्वपूर्ण क़ानून है, क्योंकि उसके ऊपर समाज की उन्नति और कुशलता निर्भर है। यद्यपि हिन्दुओं में सामान्यतः बहु-विवाह प्रचलित नहीं है, तो भी यदि कोई पुरुष अनेक करे तो वह क़ानून की दृष्टि में अपराधी नहीं है। जब और जहाँ कहीं बहु-विवाह होते हुए देखे गए हैं वहाँ और तब ही दुख और क्लेश उत्पन्न हुए हैं। अतएव यह अभीष्ट है कि सिवाय उन दशाओं के, जिनमें दूसरा विवाह उचित बताया गया है, बहु-विवाह की प्रथा बिलकुल बन्द कर देनी चाहिए। अब यह कार्य केवल क़ानून बनने से ही हो सकता है। हम आशा करते हैं कि लेजिस्लेटिव असेम्बली के कोई माननीय सदस्य स्त्री-जाति के ऊपर दया करके एक बिल इस आशय का पेश करके पास कराएँगे कि कोई सज्जन एक स्त्री के होते हुए दूसरी स्त्री से विवाह न करें, सिवाय उन दशाओं के जिनमें मनु ने दूसरी स्त्री करने की आज्ञा दी है। ऐसा क़ानून पास होने से हिन्दुओं का असली क़ानून फिर हिन्दुओं को ही न मिलेगा, बल्कि इससे स्त्री जाति की स्थिति कुछ अच्छी होगी और उन्हें अपने पति, संरक्षक और आजन्म मित्र की मानसिक वृत्तियों और उनके कृत्यों का शिकार न बनना पड़ेगा। स्त्री जाति को इस प्रश्न पर विचार करना और भी आवश्यक है। इन पंक्तियों के लेखक का मन्तव्य यह है कि जिस स्थान पर भूल है, उसकी ओर ध्यान आकर्षित किया जावे और यह बतलाया जावे कि वह भूल आसानी से किस तरह सुधारी जा सकती है। इस बात में हिन्दुओं के आचार, विचार, न्याय, आत्मा और धर्म का भी विचार किया गया है। यदि साधारण जनता ने यह मान लिया कि उसका ध्यान एक महत्वपूर्ण और आवश्यक प्रश्न की ओर खींचा गया है तो हम अपने परिश्रम को भली-भाँति सफल समझेंगे।

आँखों की भाषा

[श्री० कृष्णानन्द जी, बी० ए०]

नाथ ! न जाने किन अङ्कों में अङ्कित मेरा अन्त।
अन्त ! अन्त !! जिसकी सीमा में आया अमित अनन्त॥

शून्य अतल अन्तर में जागे उलझे राग-विराग।
आहें आह ! अथाह !! अरे, ये जलते दिल के दाग॥

जीवनधन में जीवन हो, जीवनधन जीवन साथ।
आँखों की भाषा लिख दें, बढ़ कर ये कम्पित हाथ॥

[सम्पादक—श्री० किरण-कुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

राग भीमपलासी—तीन ताल

मात्रा ८

[शब्दकार—सूरदास ; स्वरकार—सौ० श्रीमती सुभद्राबाई आपटे]

स्थायी—मैयाँ री मोहे माखन भावे ।
जो मेवा पकवान कहत तूँ, मोहिं नाहीं रुचि आवे ॥ मैयाँ ॥

अन्तरा—(१) व्रज युवती इक पाछे ठाढ़ी, सुनत शाम की बात ।
मन में कहत कबहुँ अपने घर, देखों माखन खात ॥ मैयाँ ॥

अन्तरा—(२) बैठे जाय मथनियाँ के ढिग, तब मैं रहों छिपानि ।
सूरदास प्रभु अन्तरयामी, ग्वालिन मन की जानि ॥ मैयाँ ॥

(आरोह) नी स ग म प नी सां (अवरोह)—सं नि ध प म ग र स

स्थायी

ग म प नी पनि संरें सं सं ग म नी प ग रे रे स
मै — या — री — — — मो हे मा — ख न भा — — वे
३ २ १ २

स नि स म म ग ग म प नी ध प म प ग म
जो — मे वा प क वा — — — न क ह त तु म
३ २ १ २

ग म प नी नी सं सं नि सं गं गं रें मं नि ध प
मो हि ना — ही रु चि आ — — वे — — — — —
३ २ १ २

अन्तरा

प प प प ध म प ग म प नी नी स स
त्र ज यु व ती — — इ क पा — छे ठा ढ़ी
३ २ १ २

नी नी नी सं सं सं रें गं रें सं नी सं रें स नी ध प
सु न त शा - म की — — बा — — — — — — — त
३ २ १ २

नी नी नी सं सं प प ग म ध प ग स स
म न में क ह त क ब हुँ अ प ने घ र
३ २ १ २

सं नि सं गं रें सं नी सं नी सं गं रें सं नि ध प म प
दे — खो मा ख न खा — — — — — — — — — — त
३ २ १ २

नोट—(१) आरोह में रे, ध, वर्ज ग, रि, अति कोमल—शेष शुद्ध स्वर—जाति सम्पूर्ण।

(२) ॒ यह चिन्ह तार सप्तक स्वरों का होगा।
॒ यह चिह्न मन्द सप्तक स्वरों का होगा।
१—समदर्शक चिह्न
२—तालिदर्शक चिह्न
३—खालीदर्शक चिह्न

(स्वर लिपि चिन्ह)

‿ दो मात्रा
— एक मात्रा
० आधी मात्रा ½
‿ चौथाई मात्रा ¼

(३) शेष सब अन्तरे ऊपर लिखे अन्तरे के अनुसार गावो।

❧ ❧ ❧

मैजिस्ट्रेट (असामी से)—पिछले बार जब तुम यहाँ आए थे, मैंने तुम्हें चेता दिया था कि फिर कभी यहाँ मत आना। लेकिन तुम फिर आ गए?

असामी—मैंने हुज़ूर की बात सिपाही से कही थी, लेकिन उसने मेरी एक न सुनी।

* * *

अदालत में एक अभियुक्त ने कहा—हुज़ूर मैं झूठ बोलना नहीं चाहता। अगर ऐसा करना होता तो मैं अपनी पैरवी कराने के लिए किसी भले आदमी को रख लेता।

सरकारी वकील—क्या तुम्हारा मतलब वकील से है?

अभियुक्त—नहीं हुज़ूर, मैं तो भले आदमी की बात कह रहा हूँ।

प्रेमी—क्या तुमने बहुत दिनों से हारमोनियम बजाना सीखा है?

प्रेमिका—हाँ, जब से मैंने होश सम्हाला।

प्रेमी—तब मालूम होता है तुम्हें बहुत देर में होश आया।

* * *

किसी भले आदमी ने एक गँवार से कहा—कुछ बातें ऐसी हैं जिन पर ध्यान न देने से वे आप ही आप नष्ट हो जाती हैं।

गँवार—सरकार, सच कहिए। अगर यह बात ठीक हो तो आज से मैं अपनी दाढ़ी की चिन्ता बिल्कुल छोड़ दूँ। इसके लिए मुफ़्त में बहुत पैसे ख़र्च हो जाते हैं।

[स्वर्गीय बङ्किमचन्द्र चटर्जी]

साहब और हाकिम

जॉन डिकसन फ़ौजदारी अदालत में पकड़ कर लाए गए हैं। साहब रङ्ग में तो आबनूस के कुन्दे को मात करते हैं, पर साहब का मुक़द्दमा देखने के लिए देहात की कचहरी में बहुत से रँगीले लोग इकट्ठे हुए हैं। मुक़द्दमा एक डिप्टी के इजलास में है, इससे साहब ज़रा खिन्न हैं, पर मन में भरोसा है कि बङ्गाली डिप्टी डर कर छोड़ देगा। डिप्टी बाबू के ढङ्ग से भी यह बात ज़ाहिर होती है। वह बेचारा बड़ा बूढ़ा और सीधा-सादा भलामानस है। किसी तरह सिमट कर वहाँ बैठा था, इधर चपरासियों ने भी डरते-डरते साहब को कठघरे में ला खड़ा किया। साहब ने ज़रा रङ्ग बदल हाकिम की ओर देख, अकड़ कर कहा—टुम हमको एहाँ किस वास्ते लाया?

हाकिम ने कहा—मैं क्या जानूँ तुम क्यों लाए गए, तुमने क्या किया है?

साहब—जो किया, टोमारा साथ बाट नेहूं माँगटा।

हाकिम—क्यों?

साहब—टुम काला आडमी हाय।

हाकिम—फिर?

साहब—हम साहब है।

हाकिम—यह तो मैं देखता हूँ, इससे क्या मतलब?

साहब—टुमको, क्या बोलटा, वह नेहूं हाय।

हाकिम—क्या नहीं है?

साहब—वही, जिसका ज़ोर से मुकद्दमा करटा है। टुम नहीं जानटा क्या?

हाकिम—मैं भला आदमी हूँ, इससे कुछ नहीं कहता, अब टुम-टुम करोगे तो जुर्माना कर दूँगा।

साहब—टुम हमको जुर्माना नहीं करने सकटा। हम साहब है—टुमको क्या कहटा—वह नहीं है।

हाकिम—क्या नहीं है?

साहब—ओ Yes जुस्टीकेशन।

हाकिम—अहा! jurisdiction (जुरिसडिक्शन) कहो। हाँ, तो क्या अहले विलायत हो?

साहब—हम साहब है।

हाकिम—रङ्ग इतना काला क्यों है?

साहब—कोल का काम करटा था।

हाकिम—बाप का नाम क्या है?

साहब—बाप का नाम से कोर्ट को क्या काम?

हाकिम—मालूम तो है न?

साहब—हमारा बाप बड़ा आडमी था, नाम याद नहीं।

हाकिम—याद करो। ख़ैर तुम्हारा नाम क्या है?

साहब—मेरा नाम जान साहब—जानडिकसन।

हाकिम—बाप का नाम भी क्या डिकसन था?

साहब—होने सकटा है।

इतने में मुद्दई का मुख़्तार बोल उठा—हुज़ूर, इसके बाप का नाम गोवर्द्धन साहब है।

साहब गर्म होकर बोले—गोवर्द्धन होने से क्या होगा? तेरे बाप का नाम रामकान्त है। वह चावल बेचता था। मेरा बाप बड़ा आडमी था।

हाकिम—तुम्हारा बाप क्या करता था?

साहब—बड़े आदमियों का सादी कराता था।

हाकिम—क्या वह नाई का काम करता था?

मुख़्तार—हुज़ूर, नहीं—बाजा बजाता था।

लोग हँस पड़े। हाकिम ने जुरिसडिक्शन का उज्र नामञ्ज़ूर किया और मुक़दमा सुनने लगे। फ़रियादी की पुकार होने पर चाँदी के कड़े पहने काली-कलूटी एक औरत हाज़िर हुई। उससे जो कुछ सवाल हुए और उनका उसने जो जवाब दिया वह नीचे दर्ज है:—

प्रश्न—तुम्हारा नाम क्या है?

उत्तर—जमुना मल्लाहिन।

प्रश्न—तुम क्या करती हो?

उत्तर—मछली फँसा-फँसा कर बेचती हूँ।

आसामी साहब बोला—झूठा बात, सुटकी मछली बेचता है।

मल्लाहिन—वह भी बेचती हूँ। उसीसे तो तुम मरे हो।

प्रश्न—तुम्हारी नालिश क्या है?

उत्तर—चोरी की।

प्रश्न—किसने चोरी की?

उत्तर—(साहब की ओर बता कर) इस बागदी के बेटे ने।

साहब—हम साहब है, बागदी नहीं है।

प्रश्न—क्या चुराया है?

उत्तर—यही तो कहा था, सुटकी मछली।

प्रश्न—कैसे चोरी की?

उत्तर—मैं डल्ले में सुटकी मछली रख कर बेच रही थी, एक ख़रीदार से बात करने लगी, इतने में साहब ने आकर एक मुट्ठी मछली उठा कर जेब में रख ली।

प्रश्न—फिर तुम्हें मालूम कैसे हुआ?

उत्तर—जेब फटी है, यह साहब को मालूम नहीं था, जेब में डालते ही मछली ज़मीन पर आ गिरी।

यह सुन साहब गुस्सा होकर बोले—नहीं बाबू साहब, इसकी डलिया टूटी थी, उसीसे मछली निकली थी।

मल्लाहिन बोली—इसकी जेब में भी दो-चार मछलियाँ मिली थीं।

साहब ने कहा—वह तो दाम दूँगा, कह कर ली थीं।

गवाहों से साबित हुआ कि डिकसन साहब ने मछली चुराई थी। हाकिम ने तब जवाब लिखा। साहब ने जवाब में सिर्फ़ यही लिखाया कि काले आदमी का हम पर जुरिडीकेशन नहीं है। हाकिम ने यह बात मञ्ज़ूर न कर एक हफ़्ते की क़ैद का हुक्म दिया। दो-चार रोज़ के बाद यह ख़बर कलकत्ते के एक अङ्गरेज़ी अख़बार के सम्पादक के कानों तक पहुँची। फिर क्या था, दूसरे ही दिन नीचे लिखी टिप्पणी उसमें निकली:—

THE WISDOM OF A NATIVE MAGISTRATE

A story of lamentable failure of justice and race antipathy has reached us from the Mofussil. John Dickson, an English gentleman of good birth, though at present rather in straightened circumstances, had fallen under the displeasure of a clique of designing natives headed by one Jamuna Mallahin a person, as we are assured on good authority, of great wealth, and considerable influence in native society. He was hauled up before a native Magistrate on a charge of some petty larceny which, if the trial had taken place before a European magistrate, would have been atonce thrown out as preposterous, when preferred against a European of Mr. Dickson's position and character. But Baboo Jaladhar Gangooly the ebony-coloured Daniel, before whose awful tribunal Mr. Dickson had the misfortune to be dragged, was incapable of

understanding that petty larcenies, however congenial to sharp intellects of his own country, have never been known to be perpetrated by men born and bred on English soil and the poor man was convicted on evidence the trumpery character of which was probably as well-known to the magistrate as to the prosecutors themselves. The poor man pleaded his birth, and his rights as a European British subject, to be tried by a magistrate of his own race, but the plea was negatived for reasons we neither know nor are able to conjecture. Possibly the Baboo was under the impression that Lord Ripon's cruel and nefarious Government had already passed into Law the Bill which is to authorize every man with a dark skin lawfully to murder and hang every man with a white one. May that day be distant yet! Meanwhile we leave our readers to conjecture from a study of the names *Jaladhar* and *Jamuna* whether the tie of kindred which obviously exists between prosecuter and magistrate has had no influence in producing this extraordinary decision.

यह टिप्पणी पढ़ कर ज़िला मैजिस्ट्रेट साहब ने जलधर बाबू को चपरासी भेज कर बुलवाया।

ग़रीब ब्राह्मण काँपता हुआ मैजिस्ट्रेट के सामने हाज़िर हुआ। पूरे तौर से सलाम भी न कर पाया कि हुज़ूर ने डपट कर पूछा—What do you mean Baboo, by convicting a European British subject? (बाबू, तुम्हारी इतनी हिम्मत कि तुमने यूरोपियन ब्रिटिश प्रजा को दण्ड दिया?)

डिप्टी—What European British subject, Sir? (किस यूरोपियन ब्रिटिश प्रजा को दण्ड दिया हुज़ूर?)

मैजिस्ट्रेट—Read here, I suppose you can do that. I am going to report you to the Government for t'is piece of folly. (यह पढ़ो, मैं समझता हूँ तुम पढ़ सकते हो। तुम्हारी इस मूर्खता की रिपोर्ट मैं गवर्नमेण्ट के यहाँ करूँगा।)

यह कह कर साहब ने काग़ज़ बाबू की तरफ़ फेंक दिया। बाबू ने उठा कर पढ़ा।

मैजिस्ट्रेट ने कहा—Do you now understand (अब समझ में आया?)

डिप्टी—हाँ साहब, पर यह यूरोपियन ब्रिटिश प्रजा नहीं था।

मैजिस्ट्रेट—यह तुमने कैसे जाना?

डिप्टी—वह बड़ा काला था।

मैजिस्ट्रेट—क्या क़ानून में लिखा है कि यूरोपियन की पहचान सिर्फ़ गोरा रङ्ग ही है?

डिप्टी—नहीं हुज़ूर।

यह डिप्टी पुराना ख़ुर्राट था। वह जानता था कि दलील करके साहब से जीतना भी अपने सिर पर आफ़त बुलाना है। इसलिए उसने दलील छोड़ दी और जो नौकरों को कहना उचित है वही कहा—मैं हुज़ूर से बहस करने की गुस्ताख़ी नहीं कर सकता। इस भूल के लिए मैं बहुत अफ़सोस करता हूँ।

मैजिस्ट्रेट साहब भी निरे उल्लू के पट्ठे न थे। वह ज़रा दिल्लगी-पसन्द भी थे। उन्होंने पूछा—किस बात के लिए बहुत अफ़सोस करते हो?

डिप्टी—यूरोपियन ब्रिटिश प्रजा को सज़ा देने के लिए।

मैजिस्ट्रेट—क्यों?

डिप्टी—इसलिए कि हिन्दुस्तानियों के लिए यह बड़ा भारी दोष है कि वह यूरोपियन ब्रिटिश प्रजा को सज़ा दें।

मैजिस्ट्रेट—क्यों बड़ा भारी दोष है?

डिप्टी बड़ा चालाक था। छूटते ही कहा—इसलिए दोष है कि यूरोपियन ब्रिटिश प्रजा जुर्म नहीं कर सकती और देशी लोग ईमानदारी से इन्साफ़ नहीं कर सकते।

मैजिस्ट्रेट—क्या ऐसा तुम मानते हो?

डिप्टी—नहीं मानने की तो कोई वजह नहीं देखता। मैं तो अपनी लियाक़त भर अपना फ़र्ज़ अदा करने की कोशिश करता हूँ। लेकिन मैं देशी भाइयों की बात करता हूँ।

मैजिस्ट्रेट—तुम समझते हो कि देशी आदमियों को यूरोपियनों के मुक़द्दमे न करने चाहिए?

डिप्टी—ज़रूर ही उन्हें न करना चाहिए। अगर वह ऐसा करें तो यह गौरवशाली अङ्गरेज़ी राज्य मिट्टी में मिल जायगा।

मैजिस्ट्रेट—बाबू, मैं तुम्हारी समझदारी की बात सुन कर बड़ा ख़ुश हुआ। चाहता हूँ, सब देशी आदमी ऐसे ही हों। कम से कम देशी मैजिस्ट्रेट तो तुम-से हों।

डिप्टी—हुज़ूर, भला ऐसा कब हो सकता है, जब कि हमारे आला अफ़सर कुछ और ही सोचते हैं?

मैजिस्ट्रेट—क्या तुम आला अफ़सरी के नज़दीक नहीं पहुँचे? तुम तो बहुत रोज़ से काम करते हो?

डिप्टी—बदनसीबी से मेरी बराबर हक़तलफ़ी की गई। मैं तो हुज़ूर से इस बारे में अर्ज़ करने वाला था।

मैजिस्ट्रेट—तुम तरक़्क़ी के ज़रूर क़ाबिल हो। मैं कमिश्नर को तुम्हारे लिए लिखूँगा। देखो, क्या होता है। इतना सुन डिप्टी बाबू लम्बा सलाम कर चल दिए, इतने में जएट साहब आ पहुँचे। डिप्टी को बाहर जाते जएट ने देखा था। जएट ने मजिस्ट्रेट से पूछा—इससे तुम क्या कह रहे थे?

मैजिस्ट्रेट—ओह! यह बड़ा मज़ेदार आदमी है।

जएट—कैसे?

मैजिस्ट्रेट—यह बेवक़ूफ़ और कमीना दोनों है। यह अपने देशी भाइयों की शिकायत कर मुझे ख़ुश करना चाहता था।

जएट—क्या मन की बात उससे कह दी?

मैजिस्ट्रेट—नहीं, मैंने तो तरक़्क़ी का वादा किया है। इसके लिए कोशिश करूँगा! कम से कम वह घमण्डी नहीं है। घमण्डी देशी आदमी को मातहती में रखना बिलकुल फ़ालतू है। मैं घमण्डियों के मुक़ाबले में उन्हें पसन्द करता हूँ जो अपनी लियाक़त में चूर नहीं रहते।

इधर वापस आने पर डिप्टी बाबू की एक दूसरे डिप्टी से भेंट हुई। उसने जलधर से पूछा—साहब के पास गए या नहीं?

जलधर—हाँ, बड़ी मुश्किल में पड़ गए।

डिप्टी—क्यों?

जलधर—उस बागदी सुसरे को क़ैद करने के कारण साहब कहते थे मैं रिपोर्ट कर दूँगा।

डिप्टी—फिर?

जलधर—फिर क्या, तरक़्क़ी का तार जमा आया।

डिप्टी—यह कैसे? किस जादू से?

जलधर—और कैसे? ठकुरसुहाती करके।

(लोक-रहस्य से)

आशा का पाप

[श्री० कैलाशपति त्रिपाठी]

(१)

भीगे नयनों से देखूँ मैं कब तक जग की क्रीड़ा?
विद्रोही बन कर सहता हूँ पागलपन की पीड़ा॥
क्या अस्तित्व-विहीन बनेगी निठुर हृदय की माया?
जेठ दुपहरी में पाऊँगा क्या शीतल कर-छाया?

(२)

शरच्चन्द्र में आज लगा है अङ्गारों का मेला।
देख रहा हूँ सागर-तट से उसको बैठ अकेला॥
अमरपुरी से अग्निशिलीमुख नागलोक को आता।
अम्बुधि का अन्तर पापों से है मेरे छिद जाता!!

(३)

तारों की इस मूक हँसी में जीवन-रजनी रोती।
ओढ़ अमा सी काली चादर है, दुनिया जब सोती॥
मनोराज के सुखकर स्वप्नों की है जब अभिलाषा—
तब कैसे मैं करूँ किसी से कुछ विनिमय की आशा?

320
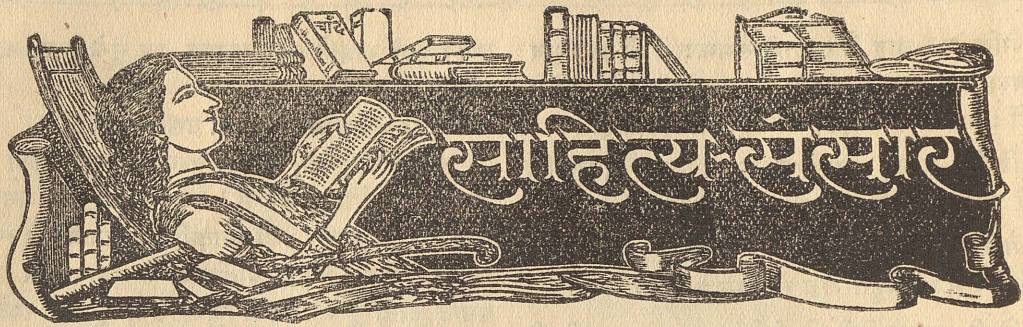
[आलोचक—श्री० अवध उपाध्याय]

भारतवर्ष—लेखक, हरिहरशरण मिश्र; प्रकाशक सूर्य-कमल ग्रन्थमाला कार्यालय, ४३२ गणेशगञ्ज, लखनऊ। मूल्य सादी जिल्द १), पृष्ठ-संख्या १२६।

यह एक नाटक है। इसके लेखक हरिहरशरण जी एक नवयुवक और नए साहित्य-सेवी हैं। उन्होंने भारत की वर्तमान दशा तथा उसकी भविष्य दशा पर इस नाटक में विचार किया है। वास्तव में इस नाटक में भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों काल की अवस्थाओं का मार्मिक चित्र खींचने का प्रयत्न किया गया है। इसीलिए इसमें भूताङ्क, वर्तमानाङ्क और भविष्याङ्क तीन अङ्क हैं।

वास्तव में यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी में प्रत्येक विषय के नए-नए लेखक पैदा हो रहे हैं। हम श्री० हरिहरशरण जी का नाटक के मैदान में स्वागत करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ लेखक का प्रथम प्रयत्न है, तथापि यह एक अच्छा ग्रन्थ है और इसका प्लॉट मौलिक है। इसकी भाषा ओजस्विनी और कवितामय है। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ की भाषा इतनी सुन्दर, स्पष्ट, प्रबल और परिमार्जित है कि उसे पढ़ने में वास्तव में बड़ा आनन्द मिलता है, और उससे लेखक की प्रतिभा का ठीक-ठीक अनुमान हो सकता है। यदि हरिहरशरण जी इसी प्रकार लिखते रहे तो मेरा पूर्ण विश्वास है कि वे एक बहुत ही अच्छे लेखक हो जायँगे। इस ग्रन्थ में जिन भावों का चित्रण किया गया है वे स्वयं मिश्र जी के हैं। इसलिए इस ग्रन्थ का महत्व और भी अधिक हो जाता है। आरम्भिक प्रयास के विचार से इस ग्रन्थ की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

इस ग्रन्थ में मिश्र जी ने इस बात के दिखलाने का प्रबल प्रयत्न किया है और उनका यह दृढ़ विश्वास है कि हिन्दू और मुसलमानों के बीच धार्मिक शत्रुता का उन्मूलन किए बिना भारतवर्ष में स्वराज्य स्थापित नहीं हो सकता। इसमें विधवा के प्रश्न को भी हल करने का प्रयत्न किया गया है और अन्त में स्वराज्य के प्रश्न के सुलझाने का प्रयास है। हिन्दू और मुसलमानों की एकता की समस्या भी इसमें मौजूद है।

अन्त में मैं श्री० हरिहरशरण जी का ध्यान निम्नलिखित बातों की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। इस नाटक में पर्दों का कुछ भी विचार नहीं किया गया है। सड़क, नदी, पहाड़ और महलों के दृश्यों के रखने में कई बातों का विचार करना पड़ता है और नाटक-लेखक के मार्ग में ये कई असुविधाएँ उपस्थित करते हैं। कभी-कभी तो ये कुशल नाटक-लेखकों के मार्ग में भी अड़चन डाल देते हैं और उसे विवश होकर ऐसी ग़लतियाँ करनी पड़ जाती हैं, जिन्हें वह भली भाँति समझता है, परन्तु कई कारणों से हटा नहीं सकता। पर्दे की ऐसी कई ग़लतियाँ इस नाटक में भी रह गई हैं। इनमें से कुछ तो ऐसी थीं जो बड़ी सुगमता से दूर की जा सकती थीं। आशा है, मिश्र जी दूसरे ग्रन्थों में इस बात का ध्यान रक्खेंगे।

दूसरी बात यह है कि ग्रन्थ के पढ़ने से पता चलता है कि इसे दो मनुष्यों ने लिखा है। ग्रन्थ का पहला भाग बहुत ही अधिक सुन्दर तथा रोचक है, परन्तु पिछला भाग उतना सुन्दर तो है ही नहीं, बल्कि नीरस भी है। पिछले भाग में न तो पहले की भाषा ही है, न भाव ही। इससे यह अनुमान किया जाता है कि मिश्र जी ने पिछले भाग को जल्दी में लिख डाला है और उसे उत्तम बनाने का प्रयत्न नहीं किया है। पिछले भाग

की कथा बहुत ही अधिक शिथिल हो गई है। नाटकों तथा उपन्यासों के अन्त का भाग और भी अधिक रोचक होना चाहिए और उसमें घटनाओं तथा चरित्रों का अच्छा जमघट होना चाहिए। अन्तिम भाग की कथा में गति होनी चाहिए, पर ये सब बातें इस नाटक में नहीं आ पाई हैं।

नाटक के पात्रों के कथोपकथन में स्वाभाविकता ख़ूब होनी चाहिए और उनकी भाषा भी पात्रों के अनुकूल ही होनी चाहिए। जहाँ तक हिन्दुओं और मुसलमानों का सम्बन्ध है, वहाँ तक तो मिश्र जी ने इस बात का ख़ूब ध्यान रक्खा है और केवल भाषा से पता चल जाता है कि हिन्दू बोल रहा है अथवा मुसलमान। परन्तु प्रत्येक हिन्दू की भाषा में कोई भी व्यक्तित्व नहीं पाया जाता। उदाहरण के लिए हम करोड़ीमल तथा उमाशङ्कर को ले सकते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों की भाषा में भी कोई भेद नहीं मालूम पड़ता। वास्तव में कुछ थोड़े पात्रों को छोड़ कर शेष सब पात्रों की भाषा, मिश्र जी की भाषा मालूम पड़ती है, भिन्न-भिन्न पात्रों की नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि कहीं-कहीं तो इस नाटक की भाषा बहुत ही सुन्दर है। उदाहरण के लिए हम कारुणिक की भाषा को ही ले सकते हैं। वास्तव में कारुणिक की भाषा बहुत परिष्कृत तथा सुन्दर है। पृष्ठ ४ के प्रारम्भ में कारुणिक की भाषा बहुत ही मनोहर है। परन्तु कभी-कभी दूसरे लोग भी इसी तरह की भाषा का प्रयोग करते हैं, जिससे कारुणिक की भाषा का व्यक्तित्व नहीं रह जाता। सुरेशचन्द्र की भाषा बहुत सफलता के साथ लिखी गई है।

नाटकों में प्रारम्भ से अन्त तक एक शृङ्खला होनी चाहिए और यदि उसमें से थोड़ा अंश भी निकाल लिया जाय तो सारा नाटक ही नीरस हो जाना चाहिए। परन्तु इस नाटक के कुछ पृष्ठ निकाल दिए जायँ तो कुछ हानि नहीं होगी।

*　　*　　*

जुझार तेजा—लेखक, मेहता लज्जाराम शर्मा; सम्पादक श्री० दुलारेलाल भार्गव; प्रकाशक गङ्गा-पुस्तकमाला कार्यालय, २९-३० अमीनाबाद पार्क, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या ८०; मूल्य ॥); सजिल्द का १)।

राजपूताने में जुझार तेजा एक बहुत ही बहादुर आदमी हो गया है। इसकी पूजा आज भी राजपूताने में होती है और इसके सम्बन्ध की कविता गाई जाती है। इतना ही नहीं, वह एक ऐतिहासिक व्यक्ति भी है और मुन्शी देवीप्रसाद जी ने भी इसका वर्णन किया है। उसी तेजा का वर्णन इस ग्रन्थ में किया गया है। यह ग्रन्थ वास्तव में तेजा का जीवन-चरित्र है, जो गीत तथा इतिहास के आधार पर लिखा गया है। वास्तव में यह उपन्यास से भी अधिक रोचक है। आशा है, हिन्दी संसार में इसका आदर होगा।

*　　*　　*

प्रेम की पीड़ा—लेखक, पं० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' बी० ए०, मन्त्री, लेखक-मण्डल, प्रयाग; प्रकाशक, लेखक-मण्डल दारागञ्ज, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या ७६; मूल्य ॥)।

इस पुस्तक के लिखने में वास्तव में गिरीश जी को सफलता मिली है। उपन्यासों में बहुत गुणों का होना आवश्यक है, परन्तु उसमें रोचकता का होना परमावश्यक है। मैं यह बात निःसङ्कोच कह सकता हूँ कि यह उपन्यास बहुत रोचक है। यह उपन्यास पत्रों के रूप में लिखा गया है। इससे इसकी रोचकता और भी बढ़ गई है। कहीं-कहीं तो यह उपन्यास वास्तव में बहुत रोचक है। एक स्थान पर राधावल्लभ अपनी प्रेयसी के पत्र के बारे में अपने मित्र के यहाँ यों लिखता है:—"उस काग़ज़ को (पत्र) पुस्तक के भीतर रख कर मैं पढ़ने लगा। उसे आज तक एक अनमोल रत्न की तरह सुरक्षित रूप में रक्खे हूँ और आज भी उसमें की गई भर्त्सना के एक-एक अक्षर को पढ़ कर अपूर्व आनन्दरस का आस्वादन करता हूँ।" वास्तव में ये वाक्य मर्मस्पर्शी तथा मनोहर हैं। इस पुस्तक में ऐसी रोचक बातें और भी कई जगह हैं। मुझे इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में एक शिकायत है। इसका अन्त अच्छा नहीं हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि जीवन में ऐसी बातें प्रायः होती हैं, परन्तु कला की कूची उसे अपने रूप में ढाल देती है और उसी बात का अभाव यहाँ खटकता है। अन्त में गिरीश जी ने प्रेमी और प्रेमिका दोनों को योंही छोड़ दिया है। इसका अन्त वास्तव में बड़ा ही सुन्दर बनाया जा

सकता था। सारी पुस्तक पढ़ जाने के बाद ऐसा मालूम होता है कि यह उपन्यास कुछ अपूर्ण सा रह गया है।

* * *

व्यापार-रत्न-संग्रह—लेखक और प्रकाशक, मोतीलाल रब्बावाला ; पृष्ठ-संख्या ६०; मूल्य ॥)। इसमें व्यापार सम्बन्धी बातों का वर्णन है। यह देखा जाता है कि कभी-कभी करोड़पति तथा लखपति व्यापारी भी अङ्गरेज़ी नहीं जानते और व्यापार सम्बन्धी अङ्गरेज़ी की कितनी बातें नहीं समझते। उन्हीं के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। इस ग्रन्थ में व्यवसायों से सम्बन्ध रखने वाली तमाम आवश्यक और ज्ञातव्य बातों—सट्टा, शेयर, रूई, तार, रङ्ग, तौल आदि—का वर्णन है।

* * *

मैथिलीय-भाषा-व्याकरण-भास्कर—लेखक पं० श्री० हीरालाल झा 'हेम'; प्रकाशक, कन्हैयालाल कृष्णदास, मालिक "श्रीरमेश्वर" प्रेस दरभङ्गा ; पृष्ठ-संख्या १०६; मूल्य ॥)।

यह एक मैथिली भाषा का व्याकरण है।

* * *

ग्राम-सुधार—लेखक, गिरिवरधर वकील, समस्तीपुर ; पटना लॉ-रिपोर्टर प्रेस में मुद्रित ; पृष्ठ-संख्या १६२ ; मूल्य ॥)। इसमें ग्राम के सुधार सम्बन्धी सब बातों का वर्णन है। इसमें ग्राम-सङ्गठन, ग्राम-सभा तथा उसका कर्तव्य, और धर्म, अहिंसा, सत्य, शौच, अस्तेय, व्यायाम और भोजनादि के विषय में विचार किया गया है।

* * *

नरहत्या—लेखक, हुबलाल। प्रकाशक, श्री० प्रेमघन नागरी नाट्य-समिति, मिर्ज़ापुर। पृष्ठ-संख्या १२२ ; मूल्य १)

पं० रामनारायण मिश्र जी के कहने से श्री० हुबलाल जी ने इसे लिखा था और यह सन् १९२४ ई० को ४, ५, और ८ मार्च को रङ्ग-मञ्च पर खेला गया था।

* * *

भारतीय नीतिकथा—लेखक, श्री० शिवसहाय चतुर्वेदी। प्रकाशक, हिन्दी हितैषी-कार्यालय, देवरी (सागर) मध्य प्रान्त। पृष्ठ-संख्या १७०, मूल्य ॥)। इस ग्रन्थ को चतुर्वेदी जी ने बड़े परिश्रम से लिखा है। हम पाठकों से इसे पढ़ने का अनुरोध करते हैं।

* * *

इतिहास की कहानियाँ—लेखक, श्री० ज़हूरबख़्श। प्रकाशक, गङ्गा पुस्तकमाला कार्यालय, २९-३० अमीनाबाद पार्क, लखनऊ। पृष्ठ-संख्या ८६, मूल्य ॥=)। इसमें छोटे-छोटे लड़कों के पढ़ने योग्य ३२ सुन्दर कहानियाँ हैं।

* * *

वृत्तबोधः—लेखक का पता नहीं। प्रकाशक, श्री० श्वेताम्बर साधुमार्गी, जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर। मिलने का पता—अगरचन्द भैरोंदान सेठिया, जैन शास्त्र-भण्डार, बीकानेर, राजपूताना। इसमें संस्कृत के छन्दों का वर्णन है।

* * *

कविकेलि—सम्पादक श्री० अवन्तविहारी माथुर। प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य-हितैषी-भवन, नव महल, ग्वालियर सिटी, मध्य भारत। पृष्ठ-संख्या २५; मूल्य ।=)। इसमें समस्या पूर्ति है।

* * *

राजपूतों की बहादुरी—पहला भाग। सम्पादक हरिदास माणिक। प्रकाशक, माणिक कार्यालय काशी। पृष्ठ-संख्या १२८। मूल्य ॥)। यह माणिक ग्रन्थमाला का ७ वाँ रत्न है। इसमें हरदौल बुँदेला, राणा संग्रामसिंह, शिवाजी की दुर्ग-विजय, वीर नारी ताराबाई, वीर लल्लू जी चम्पावत, सिंहगढ़ पर धावा और हल्दीघाटी की लड़ाई का बहुत अच्छा और सुन्दर वर्णन है। वास्तव में हिन्दी के प्रेमियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

* * *

केसरी-कीर्तन—लेखक, हरिशङ्कर शर्मा; प्रकाशक, रामप्रसाद एण्ड ब्रदर्स, आगरा ; पृष्ठ-संख्या १०३ ; मू० ॥) ; छपाई, काग़ज़ उत्तम।

यह लाला लाजपतराय जी का जीवन-चरित्र है। इसमें उनके जीवन की सब प्रधान घटनाओं का वर्णन

है। पुस्तक के अन्त में कई सुन्दर कविताओं का भी संग्रह है, जिससे इस पुस्तक का महत्व और अधिक बढ़ गया है। उदाहरण के लिए हम यहाँ एक पद उद्धृत करते हैं :—

हो गया हमसे जुदा आख़िर हमारा लाजपत—
हिन्द का रूहे रवाँ आँखों का तारा लाजपत ॥
क्यों न हमको नाज़ हो औ क्यों न हमको फ़ख़्र हो?
लाज रखता था ज़माने में हमारा लाजपत ॥

* * *

दर्शन और अनेकान्तवाद—लेखक, पं० हंसराज जी शर्मा; प्रकाशक, श्री० आत्मानन्द जैन, पुस्तक-प्रचारक-मण्डल, रोशन मुहल्ला, आगरा; पृष्ठ-संख्या ३६; मू० ॥); छपाई, काग़ज़ उत्तम।

इस ग्रन्थ के लिखने में पं० हंसराज जी शर्मा ने दर्शन सम्बन्धी प्रगाढ़ पाण्डित्य का परिचय दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि इसमें एक ही बात कई बार दुहराई गई है, तथापि विषय की कठिनता के कारण पण्डित जी को विवश होकर ही ऐसा करना पड़ा होगा। दर्शन के सभी प्रेमी इससे लाभ उठा सकते हैं, परन्तु जैनधर्म के मतावलम्बियों के लिए यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी होगा, क्योंकि इसमें स्याद्वाद की अच्छी व्याख्या की गई है।

* * *

विषाद-सिन्धु—लेखक, मीर मशार्रफ़ हुसेन; प्रकाशक, श्री० निरञ्जनलाल भार्गव, गोविन्द भवन इलाहाबाद; पृष्ठ-संख्या ३२५; मू० १॥); छपाई, काग़ज़ उत्तम।

यह बहुत ही मनोरञ्जक ग्रन्थ है। इसमें हसन और हुसेन के वध का बहुत ही अच्छा तथा मनोहर वर्णन है। हुसेन किस प्रकार कर्बला के मैदान में पानी बिना तड़प-तड़प कर मर गए, इसका बहुत सुन्दर वर्णन इस ग्रन्थ में किया गया है। पूर्ण आशा है कि हिन्दी में इसका अच्छा प्रचार होगा। आज भी मुसलमान मुहर्रम मनाते हैं। उसी मुहर्रम पर्व का इसमें ख़ुलासा किया गया है।

प्रबन्ध-पथ-प्रदर्शक—सम्पादक, पं० गङ्गासहाय शर्मा; प्रकाशक गुप्त ब्रदर्स एण्ड कम्पनी, मण्डी धनौरा, ज़िला मुरादाबाद; पृष्ठ-संख्या १५२; छपाई, काग़ज़ उत्तम।

यह पुस्तक प्रारम्भिक प्रबन्ध-लेखकों के बड़े काम की है। इसमें निबन्ध लिखने की उपयोगी शिक्षा दी गई है। लिखना सीखने वाले छात्रों को इससे विशेष सहायता मिल सकेगी।

* * *

मानस-मञ्जूषा—लेखक, शोभाराम धेनुसेवक; प्रकाशक, श्रीतुलसी-ग्रन्थमाला कार्यालय, लखनादौन (सिवनी), मध्यप्रदेश; पृष्ठ-संख्या २२६; मू० १॥); छपाई, काग़ज़ साधारण।

इसमें धेनुसेवक जी ने रामायण के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातें लिखी हैं। रामचरित-मानस के प्रेमियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। कहीं-कहीं इसमें रामायण के सम्बन्ध में शङ्का की गई है और उसका विद्वत्तापूर्ण उत्तर भी दिया गया है। इस ग्रन्थ में केवल बालकाण्ड का वर्णन है। हम धेनुसेवक जी को इस ग्रन्थ के लिखने के लिए बधाई देते हैं।

* * *

जल-चिकित्सा—लेखक, श्री० शिवनरायण टण्डन; प्रकाशक, प्रकाश पुस्तकालय; पृष्ठ-संख्या ६४; मूल्य ।=); छपाई उत्तम।

इस पुस्तक में जल-चिकित्सा का अच्छा वर्णन है और कई उदाहरण भी दिए गए हैं।

* * *

ओम का नवीन धर्म—लेखक, पी० सी० ओमानन्द वेदान्ती; प्रकाशक आनन्द-मार्ग कार्यालय फ़र्रुख़ाबाद; पृष्ठ-संख्या ३२; मूल्य =)॥; छपाई और काग़ज़ साधारण।

इस पुस्तक में 'ओ३म्' की व्याख्या की गई है और उसके गूढ़ तत्वों पर प्रकाश डालने की चेष्टा भी।
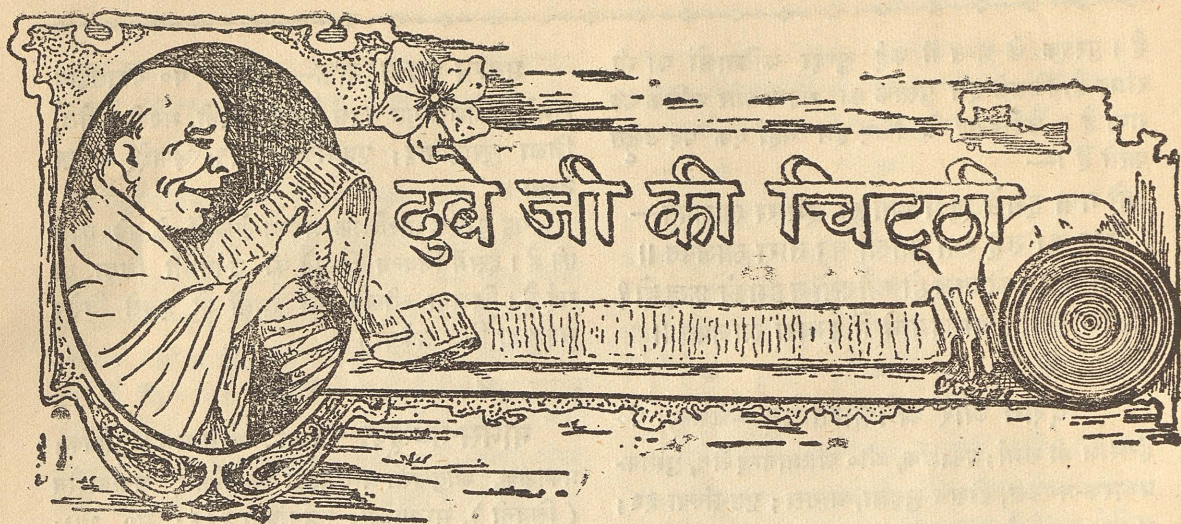
अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आजकल चारों ओर मुसीबत ही मुसीबत है। इधर हिन्दुस्तान पर मुसीबत, उधर ब्रिटिश सरकार पर मुसीबत ! एक क़ानून तोड़ने के कारण मुसीबत में है तो दूसरा क़ानून की रक्षा करने के कारण। ब्रिटिश सरकार अथवा भारत-सरकार यदि अपने क़ानूनों को नहीं तुड़वाना चाहती तो इसमें उसका क्या दोष है ? जिन क़ानूनों के बनाने में उसे वर्षों लगे, न जाने कितना परिश्रम करना पड़ा, न मालूम कितनों को प्रसन्न रखना पड़ा, उन क़ानूनों को हिन्दुस्तानी दिल्लगी में तोड़ डालना चाहते हैं। तोड़ने-फोड़ने में कुछ लगता है ? तोड़-फोड़ का काम जितना सरल है, उतना सरल निर्माण का कार्य नहीं है। हिन्दुस्तानियों की समझ में यह बात नहीं आती। इन्हें तो बस क़ानून तोड़ना आता है। यह तो हुआ नहीं कि कोई ऐसा क़ानून बनाते जिससे ब्रिटिश सरकार को कुछ सहायता मिलती। ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तानियों के लाभ के लिए कितने क़ानून बना रक्खे हैं। एक नमक-क़ानून ही को ले लीजिए। भारत-सरकार ने नमक पर टैक्स कुछ अपने लाभ के लिए थोड़ा ही लगाया है ? यह भी हिन्दुस्तानियों के लाभ की बात है। उस दिन 'लीडर' में किसी महोदय ने लिखा था कि—"नमक रजोगुणी है, नमक खाने से सतोगुण का नाश हो जाता है। यदि नमक न खाया जाय तो मनुष्य अधिक स्वस्थ रह सकता है।" ऐसी दशा में यदि इस पर टैक्स न लगाया जाता तो लोग इसका व्यवहार अधिक करते। सस्ती चीज़ अधिक ख़र्च होती है। नतीजा यह होता कि सतोगुण भारतवर्ष में बिल्कुल न रह जाता—अभी जो कुछ है वह इसलिए कि लोग नमक कम खाते हैं। सम्पादक जी, मैं स्वयम् आधे पेट नमक खाकर रहता हूँ। क्या करें, कमबख़्त टैक्स के मारे कभी पेट भर नमक नहीं खा पाया। इसका बड़ा क़लक रहता था ; परन्तु अब यह जान कर सन्तोष हुआ कि नमक बड़ी हानिकारक वस्तु है। पहले मैं भारत-सरकार को कोसा करता था ; परन्तु अब दुआएँ देता हूँ। नमक का बनना और बिकना बिल्कुल बन्द हो जाय तो बहुत अच्छा है। ऐसी चीज़ का प्रचार दो कौड़ी का। शराब और अफ़ीम इत्यादि की श्रेणी में नमक को भी समझना चाहिए। 'लीडर' के लेखक को इस सूचना के लिए पुरस्कार दिया जाय या दण्ड—यह बात विचारणीय है। पुरस्कार तो इस दृष्टि से देने की इच्छा होती है कि उसने नमक की हानियाँ बता कर भारतवर्ष की आँखें खोल दीं। परन्तु जब यह विचार आता है कि इतने दिनों तक वह इस बात को क्यों छिपाए रहा और हिन्दुस्तानियों को हानि उठाते देखना सहन करता रहा तो यह इच्छा होती है कि उसे इस अपराध के लिए दण्ड दिया जाय। अभी मैं कोई निश्चय नहीं कर पाया हूँ। नमक खाना छोड़ कर कुछ दिनों के पश्चात इस पर

विचार करूँगा। तब तक काफ़ी सतोगुण इकट्ठा हो जायगा—और जो बात सूझेगी वह दूर की सूझेगी।

हाँ, मैं क्या कह रहा था? ओ! याद आ गया। तो जनाब ऐसी प्रजावत्सल सरकार से लोग ख़ामख़्वाह लड़ रहे हैं। धरसाना में सरकार क्यों इतनी सख़्ती कर रही है? इसका यही कारण है कि सरकार जानती है कि ये लोग सब नासमझ हैं। मुफ़्त का नमक हाथ लगेगा तो अनाप-शनाप खा जायँगे। नतीजा यह होगा कि सब घोर रजोगुणी हो जायँगे और अनेक प्रकार की अन्य हानियाँ भी उठाएँगे। इसलिए इनकी रक्षा करनी चाहिए। अतएव लोगों की रक्षा के लिए सरकार ने धरसाना में पहरा लगाया। लोग इसका तात्पर्य उलटा समझे और उन्होंने सत्याग्रह ठान दिया। यदि कोई स्वार्थी सरकार होती तो सोचती, अच्छा है मरने दो, हमारा क्या नुक़सान है। परन्तु अङ्गरेज़ तो स्वार्थी नहीं हैं और इसका प्रमाण यह है कि धरसाना में उन्होंने सत्याग्रह करने वालों को मारना-पीटना तक क़बूल किया, परन्तु यह देखना उचित नहीं समझा कि लोग नमक पर अधिकार जमा कर स्वयम् अपने पैर में कुल्हाड़ी मारें। अजी डण्डों की मार तो अच्छी हो जायगी—अस्पताल इसी के लिए तो खुले हैं, परन्तु नमक खा-खाकर जो हानि लोग उठाएँगे उसका इलाज असम्भव हो जायगा। यदि कोई बालक ज़िद करके आग से खेलना चाहे तो माता-पिता क्या उसे ऐसा करने की आज्ञा दे देंगे? कभी नहीं। वे बालक को मारेंगे, पीटेंगे, डाटेंगे; सभी कुछ करेंगे, पर आग से कभी न खेलने देंगे। ऐसी दशा में 'माँ-बाप' अङ्गरेज़ भी यदि मार-पीट करते हैं तो क्या हर्ज है? परन्तु आजकल है कलियुग। लोग सगे माँ-बापों का कहना नहीं मानते, अङ्गरेज़ तो बेचारे पराए हैं।

परन्तु यदि एक बात हो तो बरदाश्त की जाय। लोग यह भी तो कह रहे हैं कि हम स्वराज्य लेंगे। मानो स्वराज्य भी कोई खिलौना है। स्वराज्य लेकर करेंगे क्या? यही न कि बैठे-बिठाए अपने ऊपर एक मुसीबत लाद लेंगे। अङ्गरेज़ों को हिन्दुस्तान पर राज्य करने में कितनी मुसीबत उठानी पड़ती है? अपना घर-द्वार छोड़ कर और हज़ारों कोस की यात्रा करके हिन्दुस्तान में आते हैं। यहाँ की गर्मी बरदाश्त करके हिन्दुस्तानियों की सेवा करते हैं। क्यों? इसलिए कि वे नहीं चाहते कि हिन्दुस्तानियों के सिर पर इतना भारी बोझ लादें। राज्य करना बड़ी जोखिम और परेशानी का काम है। दिल्लगी नहीं है। अङ्गरेज़ लोग कैसे राज्य करते हैं—यह उन्हीं का जी जानता है। पर बेचारे करें क्या—अपना कर्त्तव्य-पालन करते हैं। हिन्दुस्तानियों में इतनी तमीज़ भी नहीं जो स्वयम् राज्य कर सकें, क्योंकि ये इतनी परेशानी और दिक़त नहीं सह सकते। और सहना भी नहीं चाहिए। जब अङ्गरेज़ इनकी बला अपने सिर पर लिए हुए हैं तो इन्हें क्या आवश्यकता है, पर समझाए कौन? समझाए तो तब जब समझ में आए।

लोग अङ्गरेज़ों पर यह दोषारोपण करते हैं कि इनके राज्य में हिन्दुस्तान ग़रीब हो गया और भूखों मरने लगा—हिन्दुस्तान का सब रुपया अङ्गरेज़ लोग विलायत ले गए। अपने राम की समझ में यह दोषारोपण भी अनुचित है। अङ्गरेज़ लोग हिन्दुस्तान का रुपया यदि विलायत ले गए तो यह बहुत अच्छा हुआ। यदि यहाँ रुपया रहता तो नित्य चोरियाँ होतीं और डाके पड़ते। रुपया झगड़े की जड़ है। ऐसी चीज़ को देश में रखना मानों झगड़े की जड़ जमाना है। रुपया नहीं है तो आराम से पैर फैलाए मस्त पड़े हैं, न चोरों का खटका, न डाकुओं का डर। रुपया होता तो उसकी रक्षा करने की चेष्टा में प्राणों को सङ्कट मिलता? ख़ामख़्वाह प्राणों को सङ्कट में डालना कहाँ की बुद्धिमानी है? हमारे ऋषि लोग सदैव इस बात की शिक्षा देते रहे कि अपनी आत्मा को क्लेश मत पहुँचाओ, संसार के विषय-वासनाओं में मत फँसो, यह संसार असार है, धन-दौलत को निकृष्ट समझो। अब यह सोचना चाहिए कि जब रुपया पास होगा तो मनुष्य विषय-वासना में अवश्य फँसेगा और अनेक प्रकार के पाप-कार्य करेगा। अतएव यदि रुपया नहीं है तो बड़ी अच्छी बात है। विषय-वासना और पाप से तो बचे हुए हैं। उधर चारों ओर डाकुओं से बेफ़िक्र, इधर विषय-वासना और पाप से बचत! कितना बड़ा लाभ है! अङ्गरेज़ों का हिन्दुस्तानियों के प्रति कितना बड़ा उपकार है! परन्तु फिर भी लोग, धन्यवाद देना भाड़ में गया, उलटी शिकायत करते हैं। अङ्गरेज़ कमबख़्तों के भाग्य में यश बदा ही नहीं है। ये भलाई भी करेंगे तो लोग बुराई ही समझेंगे। अब रही यह बात

कि लोग भूखों मरते हैं तो यह अपना-अपना भाग्य है, अङ्गरेज़ किसी के भाग्य को थोड़ा ही बदल सकते हैं ? जिसके भाग्य में भूखा मरना ही बदा है वह हिन्दुस्तान में क्या, अमेरिका चला जाय तब भी भूखा मरेगा। क्या अङ्गरेज़ भूखे नहीं मरते ? इङ्गलैण्ड में लाखों अङ्गरेज़ भूखों मरा करते हैं। और भूखा मरना तो भारतवासियों के धर्म में श्रेष्ठ समझा गया है। यहाँ भूखे मरने के लिए ही एकादशी, प्रदोष, पूर्णिमा, इतवार, मङ्गल इत्यादि के व्रत रक्खे गए हैं। भूखे मरने से स्वास्थ्य ठीक रहता है। जब बीमारी होती है तो वैद्य भी सबसे अच्छी चिकित्सा यह समझते हैं कि लङ्घन कराया जाय। मुसलमान तो वर्ष में एक मास लगातार भूखे मरते हैं। अतएव जब भूखा मरना इतना श्रेष्ठ है तब फिर शिकायत क्यों की जाती है ? क्या इससे अङ्गरेज़ों के कोमल हृदय पर चोट न लगती होगी कि भारतवासी स्वयम् तो शौक़िया और स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए भूखे मरते हैं और नाम उनका बदनाम करते हैं ? कोई न देखे, परन्तु इस अन्याय को परमात्मा तो देखता ही है। हाँ, एक बात तो भूल ही गया। भूखे मरने वाले स्वर्ग में स्थान पाते हैं। हिन्दू और मुसलमानों में अधिकतर तो इसीलिए भूखे मरते हैं कि इससे स्वर्ग मिलेगा। अतएव यदि प्रत्येक समय पेट डबल रोटी की तरह फूला रहे तो ईश्वर को स्वर्ग के फाटक में सदैव के लिए ताला डलवा देना पड़े। अब कहिए, स्वर्ग का फाटक किसकी बदौलत खुला हुआ है ? समझदार की मौत है। और क्या कहा जाय ?

यह धरना क्या बला है और इससे लाभ क्या है—यही समझ में नहीं आता। विलायती कपड़े पर धरना, शराब पर धरना। विलायती कपड़ा ! हरे ! हरे ! इस तेरी-मेरी का भी कुछ ठिकाना है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" का सिद्धान्त मानने वाले आज इतने सङ्कुचित-हृदय हो गए कि ख़ास अङ्गरेज़ों के, अपने रक्षकों के, बनाए कपड़े का तिरस्कार कर रहे हैं ! इसीसे तो पुनः यह कहना पड़ता है कि घोर कलिकाल आ गया। यह एहसान तो भाड़ में गया कि अङ्गरेज़ों की बदौलत हम लोगों को कैसे-कैसे बढ़िया कपड़े पहनने को मिलते हैं। यह दशा है कि खाने को चाहे उबले चने ही मिलें, पर कपड़ा बढ़िया ही मिलता है। अजी खाना कौन देखता है ? कपड़ा तो सब देखते हैं। कपड़े से ही मनुष्य की शोभा है। इतनी साधारण बात भी हिन्दुस्तानी नहीं समझते। अङ्गरेज़ बेचारे तो इस विचार से बढ़िया-बढ़िया कपड़े बना कर भेजते थे कि कोई यह न कहे कि हिन्दुस्तानियों को कपड़ा भी नहीं मिलता। अपना सिर खपा कर नित्य नई-नई डिज़ाइनों के कपड़े ईजाद करके भेजे। उसका पुरस्कार यह मिला कि विलायती कपड़े पर धरना दिया जा रहा है। एक समय वह था कि विलायती शब्द वस्तु की उत्तमता का सूचक होता था। कैसी ही वस्तु हो, जहाँ यह पता लगा कि विलायती है, बस तुरन्त यह इतमीनान हो जाता था कि उत्तम है, सो आज उसी विलायती की यह दशा है। समय का फेर इसी को कहते हैं !!

कहते हैं कि कपड़े की बदौलत अङ्गरेज़ लोग साठ करोड़ रुपए वार्षिक हथिया लेते हैं। हथिया लेते हैं तो क्या बेजा करते हैं ? चीज़ नहीं देते हैं ? रुपया होता किस लिए है ? खाने और पहनने के लिए। सो यदि ख़राब और रद्दी कपड़ा पहन कर रुपया बचाया भी तो किस काम का ? कन्जूसी की भी कोई हद होती है। ऐसी कन्जूसी किस काम की ?

ऐसी-ऐसी बढ़िया डिज़ाइनें आती थीं कि यदि एक-एक डिज़ाइन पर लाखों रुपए न्योछावर करके समुद्र में फेंक दिए जाते तब भी कोई बेजा बात नहीं थी। परन्तु हिन्दुस्तानियों में कृतज्ञता का माद्दा तो है ही नहीं। कृतज्ञता का माद्दा होता तो अङ्गरेज़ों के पैर धो-धोकर पीते। और अब भी जो समझदार हिन्दुस्तानी हैं वे पैर धोकर पीते ही हैं। सच पूछिए तो इन्हीं हिन्दुस्तानियों के कारण भारतवर्ष सधा हुआ है, अन्यथा रसातल को चला जाता। शास्त्रों में लिखा है कि जिस मुहल्ले में एक भी पुण्यात्मा होता है वह मुहल्ला का मुहल्ला ईश्वरीय कोप से बचा रहता है। हिन्दुस्तान में तो ऐसे अनेक पुण्यात्मा हैं जो अङ्गरेज़ों का उपकार मान कर उनकी पूजा करते हैं। इसीलिए हिन्दुस्तान धरती पर टिका हुआ है।

और तो और, शराब पर भी धरना ! पूछो शराब बेचारी ने क्या अपराध किया है ? और यह दिल्लगी देखिए कि विलायती तो विलायती, देशी शराब पर भी धरना है ! यह धाँधली नहीं तो और क्या है ? देशी शराब पर इसीलिए धरना है कि उससे अङ्गरेज़ों को टैक्स मिलता है। यह अच्छा हिसाब है ? यदि अङ्गरेज़ों

को पानी से टैक्स मिलता तो शायद पानी पर भी धरना बैठ जाता। इस समय कोई शराबियों के हृदय से पूछे। यह बरसात के दिन, काली-काली घटाएँ उठती हैं, और शराब पर धरना ? हाय ! हाय ! गला काट कर मर जाने की बात है ? इससे तो यही अच्छा है कि शराब के प्रेमियों को सङ्खिया खिला दी जाय।

कुछ लोगों का ख़्याल है कि शराब तो सदैव के लिए बन्द हो जानी चाहिए। परन्तु अपने राम का यह विचार है कि शराब बन्द न होगी। अमेरिका ने शराब बन्द तो की, परन्तु क्या नतीजा हुआ ? लाखों रुपए की शराब अब भी वहाँ बिकती है। लोग चुरा कर बाहर से मँगाते हैं और बेचते हैं। हालाँकि इसके लिए अलग पुलीस नियुक्त है, परन्तु फिर भी बिकती ही है। मान लीजिए कि भारत को स्वराज्य मिल गया तो क्या शराब बन्द हो जायगी ? अजी राम भजिए। जैसे अभी लोग नमक बनाते हैं वैसे ही तब शराब बनाएँगे। अजी अब तो सत्याग्रह का ऐसा नुसख़ा हाथ लग गया है कि लोग जिस बात पर चाहेंगे सत्याग्रह करेंगे। वैद्यों की चाँदी हो जायगी। आसव के बहाने ख़ूब शराबें बनाएँगे और बेचेंगे। स्वराज्य मिल जाने दीजिए, फिर अपने राम भी वैद्यक-शास्त्र पढ़ेंगे। वैसे तो चरक, सुश्रुत सब देख चुके हैं और पढ़ चुके हैं, क्योंकि उनके विज्ञापन निकला करते हैं और वैद्यों के यहाँ अलमारी में रक्खे रहते हैं।

सम्पादक जी, यह जो कुछ हो रहा है, सब एक सिरे से अन्याय ही अन्याय हो रहा है। इन अङ्गरेज़ों की आह व्यर्थ न जायगी, देख लीजिएगा। इन बेचारों को जो व्यर्थ में सताएगा वह सुख से न बैठने पाएगा। ऐसा अपने राम का विचार होता भया, आगे जो ईश्वर चाहेगा वही होगा। हालाँकि अपने राम अच्छी तरह जानते हैं कि क्या होगा, परन्तु कहना बेकार है, क्योंकि जो अपने राम का विचार है वही इस समय सारे हिन्दुस्तान का है।

भवदीय,

विजयानन्द (दुबे जी)

मिश्र देश में तलाक़ का क़ानून

मिश्र देश में हाल ही में इस आशय का एक क़ानून बना है कि जिन पुरुषों को एक वर्ष या इससे अधिक समय के क़ैद की सज़ा होगी, उनकी स्त्रियाँ उन्हें तलाक़ दे सकती हैं। इस क़ानून के अनुसार अब तक बहुत सी स्त्रियों ने अपने पति को तलाक़ दे भी दिया है, परन्तु ये सभी पुरुष ऐसे थे, जिन्हें बेहद शराब पीने की आदत थी और इसी आदत की बदौलत उन्हें जेल भी जाना पड़ा।

* * *

देवदासी प्रथा का निषेध

कोचीन राज्य की व्यवस्थापिका सभा में उसके एक महिला सदस्य ने इस आशय का एक प्रस्ताव पेश किया है कि इस राज्य के अन्दर मन्दिरों में कन्याओं को दान देने की प्रथा बन्द कर दी जाय। इस प्रस्ताव में इस बात का भी विधान है कि जो लोग ऐसे दान दिए जाने में सहायता दें उन्हें दण्ड दिया जाय।

हिन्दू युवतियों की वीरता

ढाका (बङ्गाल) में हिन्दू-मुसलमानों के बीच भयानक दङ्गा हो गया है और यह लगातार बहुत दिनों तक जारी रहा है। कहते हैं कि विगत २५ मई को कायस्थटोली में बाबू प्रसन्नकुमार नन्दी के मकान पर मुसलमानों के एक गरोह ने आक्रमण किया। नन्दी महाशय ने फ़ोन द्वारा पुलिस से सहायता माँगी, पर पुलिस की ओर से उन्हें कोई सहायता नहीं दी गई। जब उनके घर वालों को यह निश्चय हो गया कि उन्हें बाहर से कोई सहायता नहीं मिल सकती तो प्रसन्न बाबू की दो लड़कियाँ—अनिन्दबाला और अमियबाला, जो इडेन हिन्दू स्कूल में पढ़ती हैं—कमर कस कर गुण्डों का मुक़ाबला करने के लिए तैयार हो गईं। ये वीराङ्गनाएँ पूरे आध घण्टे तक गुण्डों के एक बड़े गरोह से युद्ध करती रहीं और उन्हें घर के भीतर न घुसने दिया। परन्तु अन्त में इनमें से एक के सिर में सख़्त चोट लग जाने के कारण इन्हें मुक़ाबले से हट जाना पड़ा।

मातृ-मन्दिर

पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि इलाहाबाद का मातृमन्दिर पिछले डेढ़ महीनों से बड़ी सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है। इस संस्था का उद्देश्य है :—

१—निर्धन, निराश्रय तथा असहाय महिलाओं और बच्चों की यथाशक्ति सहायता करना।

२—ऐसी स्त्रियों को, जो सुमार्ग से विचलित होकर किसी प्रकार की नैतिक आपत्ति में फँस गई हों, सहायता प्रदान कर उनके जीवन को आदर्श और उपयोगी बनाना।

३—असहाय तथा अनाथ विधवाओं की यथाशक्ति सेवा करना।

४—जो महिलाएँ कला-कौशल अथवा सङ्गीत आदि सीखना चाहें, उन्हें यथाशक्ति सहायता करना।

५—जो असहाय महिलाएँ पढ़ने की इच्छा रखती हों, किन्तु धनाभाव के कारण पढ़ न सकती हों उनकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करना।

६—ऐसी स्त्रियों के साथ यदि बच्चे हों तो उनके खान-पान और शिक्षा का उचित प्रबन्ध करना।

७—कुमार्ग द्वारा उत्पन्न बच्चों का पालन-पोषण करना, तथा उनकी शिक्षा आदि का समुचित प्रबन्ध करना।

८—जो महिलाएँ शिक्षा प्राप्त करने के बाद अथवा पहले ही विवाह करना चाहती हों, और संस्था की सहायता चाहती हों, उनके लिए सुयोग्य वर का प्रबन्ध कर विवाह करा देना।

सारांश यह कि ऐसी स्त्रियों को, जो किसी भी प्रकार की सहायता चाहती हों, यथाशक्ति सहायता देकर उनके जीवन को आदर्श, स्वावलम्बी तथा समाज और देश के लिए उपयोगी बनाने की चेष्टा करना ही संस्था का उद्देश्य है।

पत्र-व्यवहार कुमारी लीलावती जी, प्रिन्सिपल, मातृ-मन्दिर, कृष्ण-कुटीर, रसूलाबाद, इलाहाबाद के पते से करना चाहिए।

* * *

मातृमन्दिर-कोष

मातृमन्दिर (इलाहाबाद) के मन्त्री महोदय सूचित करते हैं कि गत जून मास के अङ्क में प्रकाशित सूचना के अनुसार मातृमन्दिर-कोष में १०२२ रु० ८ पाई नक़द प्राप्त हुए थे। विगत मई तथा जून मास में ८८।) और मिले हैं, जिसकी सूची इस प्रकार है :—

(१) एक गुप्तदान ... ... २०)

(२) श्रीयुत विद्याधर, कण्ट्रैक्टर, कस्टम सदर के सामने, कोट गेट के बाहर, बीकानेर ... ५)

(३) श्रीयुत रामजीवन रुइया, ११६, ए० हैरिसन रोड, कलकत्ता ... ... २)

(४) मिस्टर ए० पी० राइट, मैनेजर रेमीङ्गटन टाइपराइटर कम्पनी लिमिटेड, कैनिङ्ग रोड, इलाहाबाद ... ... १५)

(५) श्रीयुत हरप्रसाद सिंह, स्टेशन मास्टर, होएज़ ब्रिज, केनिया कॉलोनी ... १॥)

(६) श्रीयुत भइया जगदीशदत्त राम पाण्डेय, तालुक़ेदार, सिंघा चन्दा और रामनगर इस्टेट्स, गोंडा ... ... २५)

(७) श्रीयुत किशनगोपाल डागा, मा० श्रीयुत यमुनाधर पोद्दार, २४, एडवर्ड स्ट्रीट, पो० बॉक्स नम्बर ७४६, रङ्गून ... ... १०)
(८) श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद जी... ... ५)
(९) श्रीयुत मङ्गलसेन, मा० ठाकुर घेगराज सिंघ, मौज़ा रसमई, पो० जुगसेना, ज़िला मथुरा ... ... ५)

योग ८८॥)

इस प्रकार अब तक १११०॥) ८ पाई नक़द हमें प्राप्त हुए हैं। देशवासियों का कर्तव्य है कि वे शीघ्र ही और भी सहायता भेज कर हमारा हाथ बटावें।

* * *

स्वीकृति

गत मास के अङ्क में प्रकाशित किया जा चुका है कि "भारत में अङ्गरेज़ी राज्य" वाले मुक़दमे तथा अन्य मुक़दमों के ख़र्च में सहायता देने के लिए जो अपील प्रकाशित हुई थी, उसके उत्तर में २५ अप्रैल से २५ मई तक हमें ७२) रु० मिले थे। २५ मई से १५ जून तक निम्नलिखित सज्जनों से हमें १००) रु० और प्राप्त हुए हैं, जिसे हम सधन्यवाद प्रकाशित करते हैं :—

१—एक गुप्तदान ... ... २०)
२—भैया जगदीश दत्तराम पाण्डेय तालुक़दार, सिंग्रा चन्दा और रामनगर स्टेट्स, गोंडा... ७५)
३—श्रीयुत भोलानाथ, मार्फ़त श्री० धन्दोमल तिलोकचन्द, पो० लोरालई (बलूचिस्तान) ... ५)
पिछले मास के ... ... ७२)

कुल जोड़ १७२) रु०

* * *

स्वाधीनता के महायुद्ध में स्त्रियों का भाग

वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेकर अब तक जो महिलाएँ जेल जा चुकी हैं, उनकी नामावलि इस प्रकार है :—

१—श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति, मेम्बर—मद्रास युनिवर्सिटी सिनेट, मेम्बर—ऑल इण्डिया कॉङ्ग्रेस कमिटी, मेम्बर—चेङ्गलपट डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, प्रेसिडेण्ट—युथ लीग, मद्रास ... ... १ वर्ष की सादी सज़ा।

२—श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय, भूतपूर्व अवैतनिक मन्त्री—अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन— ९½ मास की सादी सज़ा।

३—श्रीमती सरोजिनी नायडू, भूतपूर्व सभानेत्री—भारतीय राष्ट्रीय महासभा— ९ मास की सादी सज़ा।

४—श्रीमती सत्यवती देवी, दिल्ली (श्री० स्वामी श्रद्धानन्द जी की प्रपुत्री)— ६ मास की सादी सज़ा।

५—श्रीमती दुर्गाबाई, डिक्टेटर—सत्याग्रह समिति, मद्रास ... ... १ वर्ष की सादी सज़ा।

६—श्रीमती मित्र, लखनऊ— ६ मास की सादी सज़ा।

७—श्रीमती सरला देवी, गञ्जाम— ६ मास की सादी सज़ा।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी महिलाएँ जेल गई हैं, पर उनके सम्बन्ध में पूरा विवरण प्राप्त न होने के कारण, हमें दुःख है, उनका नाम इस सूची में न दिया जा सका।

* * *

श्रीमती सत्यवती का बयान

श्री० स्वामी श्रद्धानन्द जी प्रपुत्री श्रीमती सत्यवती देवी से १०८ दफ़ा के अनुसार नेकचलनी की ज़मानत माँगी गई थी। देवी जी के ज़मानत देने से इनकार करने पर दिल्ली के अतिरिक्त ज़िला मैजिस्ट्रेट श्री० पूल ने उन्हें छः महीने की सादी क़ैद की सज़ा दी।

श्रीमती जी ने अदालत के सामने जो बयान दिया था, वह इस प्रकार है :—

"मैं श्री० स्वामी श्रद्धानन्द की प्रपुत्री और श्री० धनीराम एडवोकेट की पुत्री हूँ। मेरे दो छोटे-छोटे बच्चे हैं। साधारणतया मेरा स्थान घर के भीतर है, परन्तु ऐसे समय में, जब मातृभूमि के समक्ष जीवन और मरण का प्रश्न उपस्थित है, मैं भारत की उन लाखों और दिल्ली की उन हज़ारों महिलाओं में एक हूँ, जिन्होंने स्वतन्त्रता के संग्राम के लिए अपना घर-द्वार छोड़ कर

महात्मा जी के झण्डे के नीचे पदार्पण किया है। मुझसे राजविद्रोहात्मक भाषणों पर ज़मानत माँगी गई है। विदेशी शासन की कटुता ने भारत की स्त्री-जाति को सदियों की प्रथाओं और पर्दे को तोड़ कर, उन लोगों के साथ मिल कर संग्राम करने के लिए विवश कर दिया है, जो भारत के जन्मसिद्ध अधिकार के लिए लड़ रहे हैं। मेरी आज सुनवाई होगी और मैं जेल भेज दी जाऊँगी। परन्तु विदेशी शासन की सुनवाई इसके पहले ही जनता के समक्ष हो चुकी है। बहुत बड़ी कठिनाई पड़ने पर स्त्रियाँ घर से बाहर आती हैं विदेशी शासन के असह्य हो जाने पर ही स्त्रियों ने क़दम बढ़ाया है। वीराङ्गना रानी लक्ष्मीबाई के पश्चात भारत के लिए यह प्रथम अवसर है, जब हमने विदेशी शासन से देश को मुक्त करने के लिए अपने घर-द्वार और बाल-बच्चे त्याग दिए हैं। जेल का भय और लाठियों की मार अब हमें अपने कर्तव्य से पीछे नहीं हटा सकती। आज सरकार एक स्त्री के मुँह से सही-सही बातें नहीं सुन सकती और शान्त भीड़ पर पाशविक हमले करती है। मैं और मेरी हज़ारों बहिनें बलिदान के लिए तैयार हो गई हैं। हम भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त किए बिना कदापि पीछे नहीं हटेंगी।'

* * *

अङ्गरेज़ महिला का इस्तीफ़ा

मिस इडा डिकिन्सन नाम की एक अङ्गरेज़ महिला ने हाल ही में बम्बई काउन्सिल की सदस्यता से इस्तीफ़ा दे दिया है। मिस डिकिन्सन बम्बई के विजिलेन्स एसोसिएशन के प्रमुख सदस्यों में एक थीं और आपने कई वर्षों तक बम्बई में एक संरक्षण-गृह का भी सञ्चालन किया था। वेश्या-वृत्ति को दूर करने की समस्या पर आपने विशेष मनन किया है और इसी कारण पिछले मार्च महीने में बम्बई गवर्नमेण्ट ने आपको बम्बई काउन्सिल की सदस्या नियुक्त किया था। परन्तु गवर्नमेण्ट की वर्तमान नीति से दुःखी होकर आपने प्रान्तीय काउन्सिल और विजिलेन्स एसोसिएशन दोनों संस्थाओं से इस्तीफ़ा दे दिया है। सम्राट के पिछले जन्म-दिन के अवसर पर आपको एक द्वितीय श्रेणी का कैसर-ए-हिन्द तमग़ा भी मिला था। परन्तु आपने उसे लेने से इनकार कर दिया है। इस महिला का कहना है कि वाइसराय ने उस दिन भाषण देते हुए मुसलमानों के एक डेपुटेशन को जो यह विश्वास दिलाया है कि शारदा-क़ानून पर पुनः विचार किया जायगा, इससे मेरे मन में अब लेश मात्र भी सन्देह नहीं रह गया है कि गवर्नमेण्ट की वर्तमान नीति में ज़रा भी ईमानदारी नहीं है, और देश भर में जो भयङ्कर दमन हो रहा है, उसे भी मैं चुपचाप देखने के लिए तैयार नहीं हूँ। मिस डिकिन्सन का कहना है कि इन बातों का विरोध करना मेरा अत्यन्त आवश्यक कर्त्तव्य है।

* * *

एक आवश्यक निवेदन

गत मास मुक़दमों के ख़र्च के लिए २५,०००) रु० की अपील की गई थी। परन्तु उस अपील के उत्तर में हमारे पास जो सहायताएँ आ रही हैं, उनकी प्रगति बहुत धीमी है। जिन सज्जनों तथा देवियों ने अब तक हमारे पास सहायता भेजी है, उनके हम हृदय से आभारी हैं। परन्तु इन सहायताओं के द्वारा जब तक हमारी अपील के रुपए पूरे होने की सम्भावना है, उसके बहुत पहले ही उनकी आवश्यकता समाप्त हो जायगी। इसलिए हम अपने प्रेमी और उदार सहायकों को अब और कष्ट देना व्यर्थ समझते हैं और जिन महानुभावों तथा देवियों ने अब तक सहायता भेज कर हमारा उत्साह बढ़ाया है तथा जो लोग भविष्य में सहायता भेजने के इच्छुक हैं, उन सबके प्रति हार्दिक प्रेम तथा कृतज्ञता प्रगट करते हुए हम उनकी अब तक की भेजी हुई सहायता सादर वापिस कर रहे हैं। आशा है 'चाँद' के प्रेमी तथा शुभचिन्तकगण हमारे इस कार्य को किसी अन्यथा भाव से न देखेंगे तथा भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर पुनः इस संस्था की सहायता करने के लिए प्रस्तुत रहेंगे।

महिला मैजिस्ट्रेटों का इस्तीफ़ा

गवर्नमेण्ट की वर्तमान दमन नीति के विरोध में दो ऑनरेरी महिला मैजिस्ट्रेटों ने इस्तीफ़ा दे दिया है। इनमें से एक हैं 'चाँद' के पाठकों की सुपरिचिता श्रीमती हंसा मेहता, जो बम्बई में विगत अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन के स्वागत-समिति की मन्त्रिणी थीं और दूसरी हैं श्रीमती कमलाबाई लक्ष्मणराव, टिनेवली मद्रास।

* * *

क्या शारदा एक्ट रद्द होगा ?

वायसराय ने अभी हाल ही में व्याख्यान देते हुए अहमदिया मुसलमानों के एक डेपुटेशन को विश्वास दिलाया है कि शारदा एक्ट पर गवर्नमेण्ट पुनः विचार करेगी। कहा जाता है कि सम्भवतः मुस्लिम समाज इस एक्ट से बरी कर दिया जायगा।

* * *

श्रीमती गाँधी के आँसू

श्रीमती कस्तूरीबाई गाँधी अभी हाल ही में बलसर का सत्याग्रह अस्पताल देखने गई थीं। जिसमें धरसाना के घायल रक्खे जाते थे। एक पत्र के सम्वाददाता के पूछने पर आपने कहा :—

"इतने घायलों को विस्तर पर पड़े देख कर मुझे इतना दुःख हुआ कि मेरी आँखों से आँसू निकल पड़े। पुलिस के अत्याचारों की कहानी सुन कर मेरे हृदय को गहरा आघात लगा। भगवान एक दिन इन ज़ुल्मों और अत्याचारों का फ़ैसला करेगा। परन्तु इस दुःख में भी एक बात से मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। अनगिनत कष्टों का सामना करते हुए भी हमारे नवयुवकों ने वीरता और देशभक्ति का परिचय दिया है। इनकी तपस्या की तुलना, इतिहास में एक ही ऐसा व्यक्ति है, जिसकी तपस्या के साथ की जा सकती है, और वह है सत्यवादी हरिश्चन्द्र, जिसने सत्य की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया था। मुझे यह देख कर भी बड़ी प्रसन्नता हुई है कि इतने डॉक्टर और सेवा करने वाली बहिनें घायलों की सेवा के लिए तैयार हैं। इन्हें जितना धन्यवाद दिया जाय, सब थोड़ा है।"

चारों ओर से इसी प्रकार के ज़ुल्म और अत्याचार के समाचार आ रहे हैं।

* * *

स्वयंसेविकाओं को जेल की सज़ा

मद्रास शहर में दफ़ा १४४ जारी करके सभा आदि करने की मनाही कर दी गई है। परन्तु वहाँ के सत्याग्रही इस आज्ञा को बराबर भङ्ग कर रहे हैं। दो महिलाओं ने भी इस आज्ञा को भङ्ग करने में भाग लिया था। उन्होंने शहर के भिन्न-भिन्न भागों में सभा करके कई बार इस क़ानून को तोड़ा। विगत ३० जून को उनके मुक़द्दमे की सुनवाई हुई। प्रेसिडेन्सी मैजिस्ट्रेट ने उन्हें छः-छः महीने की सादी क़ैद की सज़ा दी है।

* * *

ख़ास इङ्गलैण्ड में सत्याग्रह

फ़ीरोज़पल ब्रिटन नाम की एक अङ्गरेज़ महिला ने भारतवर्ष को स्वराज्य दिलाने के लिए ख़ास लन्दन में सत्याग्रह कर दिया है। यह महिला एक टेलिफ़ोन घर में एक सूचना चिपका रही थी, जिस पर लिखा था—Home Rule for India—अर्थात् भारत को स्वराज्य दो। कुछ लोगों ने उसी समय उस सूचना को फाड़ दिया। इस पर इस महिला ने वहाँ से हटने से इनकार कर दिया। बाहर बहुत से लोग फ़ोन करने के लिए खड़े थे। इतने पर भी लन्दन की पुलिस ने इस महिला को लाठी से नहीं पीटा। वह सभ्यतापूर्वक उसे पकड़ कर अदालत में ले गई और वहाँ उस पर सार्वजनिक स्थान में असभ्यतापूर्ण व्यवहार करने का दोष लगाया।

इस महिला ने अदालत के सामने बयान देते हुए कहा—हम लोगों ने आयर्लैण्ड पर जितना अत्याचार किया है, उससे कहीं बढ़ कर अत्याचार हम भारतवर्ष पर कर रहे हैं। मैं तथा कुछ और लोग भारत की आज़ादी के लिए अपनी आज़ादी को ख़तरे में डालने के लिए प्रस्तुत हो गए हैं। मज़दूर गवर्नमेण्ट की प्रतिज्ञाओं और उसके सिद्धान्तों के अनुसार स्वराज्य भारतवर्ष का हक़ है। इसका समर्थन करने के लिए आप चाहे मुझे कठोर से कठोर दण्ड दीजिए, मैं उसे सहने के लिए कटिबद्ध होकर आपके सामने खड़ी हूँ।

शान्ति-रक्षा के लिए ज़मानत माँगे जाने पर इस

महिला ने उत्तर दिया—मैं पाँच मिनट के लिए भी ज़मानत नहीं दे सकती। मैं शान्ति तब तक हर्गिज़ नहीं रक्खूँगी, जब तक भारतवर्ष स्वतन्त्र न हो जायगा।

अन्त में मैजिस्ट्रेट ने इस महिला को जेल भेज दिया।

* * *

स्त्रियों का स्वदेशी-प्रेम

दिल्ली में विगत १ जून को प्रातःकाल से ही श्रीमती कोहली की अध्यक्षता में स्वयंसेविकाओं ने यमुना के घाटों को घेर लिया और स्नान करने आने वाली स्त्रियों से कहा कि किसी भी स्त्री को, जिसके शरीर पर विदेशी वस्त्र होगा, हम लोग यमुना के पवित्र जल में नहीं घुसने देंगी। इसका परिणाम यह हुआ है कि यमुना-स्नान करने वाली स्त्रियों में से ९० प्रति शत ने अपनी बारीक रेशमी साड़ियों को छोड़ कर मोटा और रुखड़ा खद्दर पहन लिया है। और बाक़ी बची हुई स्त्रियों में से भी बहुतों ने खद्दर पहन लिया होता, परन्तु दिल्ली में खादी की कमी होने के कारण उन्हें साड़ियाँ न मिल सकीं।

* * *

पुलिस द्वारा स्त्रियों का अपमान

विगत मार्च महीने के अन्त में धुबड़ी (महाराष्ट्र) महिला-समिति का प्रथम अधिवेशन श्रीमती मोहिनी देवी की अध्यक्षता में हुआ था। उस अवसर पर कुछ लड़कियाँ एक छोटा सा जुलूस बना कर शहर से होकर जा रही थीं। उनमें से कुछ ने "स्वाधीन भारत की जय" पुकारा। समिति के भवन पर राष्ट्रीय झण्डा भी फहराया गया था। इससे स्थानीय पुलिस को स्त्रियों के इस सम्मेलन में राजनीति की बू आ गई और पुलिस वाले पण्डाल में घुसने का प्रयत्न करने लगे। पर स्त्रियों की दृढ़ता के सामने उनकी एक न चली, वे पण्डाल के भीतर न जा सके। स्त्रियों का कहना था कि यह सम्मेलन केवल स्त्रियों के लिए है, इसमें कोई मर्द नहीं आ सकता।

ख़ैर, पहले दिन तो बात यहीं तक रह गई। दूसरे दिन सम्मेलन की कार्यवाही आरम्भ होने के बहुत पहले ही से पुलिस वाले पण्डाल में आकर बैठ गए और स्त्रियों के बहुत कहने-सुनने पर भी वहाँ से न हटे। स्त्रियों का कहना था कि आप महिला रिपोर्टर भेजिए, उसके सम्मेलन में उपस्थित होने में हम लोगों को कोई आपत्ति न होगी। पर पुलिस वालों पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। अन्त में स्त्रियों को स्वयं वहाँ से हटना पड़ा और उन लोगों ने एक दूसरे मकान में जाकर अपना सम्मेलन किया।

धुबड़ी की जनता ने एक सार्वजनिक सभा करके पुलिस के इस व्यवहार की घोर निन्दा की। वहाँ के बार एसोसिएशन ने भी पुलिस के इस कार्य को अत्यन्त निन्दनीय बताया।

* * *

बिहार में पर्दे को विदाई

'सर्चलाइट' के एक पुराने अङ्क से हमें मालूम हुआ है कि मुज़फ़्फ़रपुर के बाबू रामदयालु सिंह तथा ठाकुर रामनन्दन सिंह की धर्मपत्नियों ने पर्दे को तिलाञ्जलि देकर राष्ट्रीय प्रचार का कार्य आरम्भ कर दिया है।

'यङ्ग इण्डिया' के १२ जून के अङ्क में बाबू राजेन्द्र-प्रसाद ने विदेशी कपड़े और शराब की दूकानों की पिकेटिङ्ग का विवरण देते हुए लिखा है कि यह आन्दोलन सामाजिक समस्याओं को हल करने में भी सहायक हो रहा है। ऐसी स्त्रियाँ, जो कभी पर्दे के बाहर नहीं निकली थीं, आज कई स्थानों में पिकेटिङ्ग कर रही हैं। पटने में विदेशी कपड़े की पिकेटिङ्ग में जो सफलता मिली है, उसका अधिक श्रेय स्त्रियों को ही है। अन्य स्थानों में भी स्त्रियों ने जो कार्य कर दिखाया है, इस परदा-ग्रसित प्रान्त में उसकी आशा न थी।

परन्तु माननीय विट्ठल भाई पटेल ने उस दिन पटने में भाषण देते हुए बिहार की साधारण स्त्रियों की जागृति के सम्बन्ध में निम्नलिखित वाक्य कहे थे :—

बिहारी स्त्रियों में मैं वह जागृति नहीं देखता जो मैंने अन्य प्रान्तों की स्त्रियों में देखा है। दिल्ली और इलाहाबाद में (मेरे पहुँचने के समय) स्टेशन पर और सभाओं में हज़ारों स्त्रियों की भीड़ लग गई थी (परन्तु बिहारी स्त्रियों में उस उत्साह और जागरण का नामो-निशान भी नहीं दिखाई पड़ता)।

* * *

मद्रासी महिलाओं में जागृति

विगत ३० मई को उटकामण्ड में स्त्रियों की एक विराट सभा हुई थी, जिसमें अन्य कई वक्ताओं के अतिरिक्त डॉ० मुथुलक्ष्मी रेड्डी ने भी भाषण दिया था। पाठकों को याद होगा, डॉ० मुथुलक्ष्मी ने हाल ही में गवर्नमेण्ट की वर्तमान दमन-नीति के विरोध में मद्रास काउन्सिल की सदस्यता तथा उसके डिप्टी प्रेसिडेण्टशिप दोनों पदों से इस्तीफ़ा दे दिया है। आप भारत में पहली महिला हैं, जिसे यह सम्मान प्राप्त हुआ था।

सभा में कई प्रस्ताव पास हुए, जिनमें गवर्नमेण्ट की वर्तमान दमन-नीति की घोर निन्दा की गई, सत्याग्रही महिलाओं के आत्मत्याग पर उन्हें बधाई दी गई, खद्दर और स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार पर ज़ोर दिया गया, तथा इस बात की आवश्यकता प्रगट की गई कि महात्मा गाँधी को शीघ्र जेल से मुक्त किया जाय और भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दिया जाय।

* * *

लखनऊ में स्त्रियों और बच्चों पर प्रहार

विगत २५ मई को लखनऊ के सत्याग्रहियों ने श्रीमती मित्र की अध्यक्षता में एक जुलूस निकाला। जुलूस के एबॉट रोड पहुँचने पर श्रीमती मित्र गिरफ़्तार कर ली गईं। उसके बाद जुलूस में भाग लेने वाली अन्य महिलाओं को एक लॉरी में भर कर किसी अज्ञात स्थान में भेज दिया गया। इसके बाद सत्याग्रहियों और दर्शकों पर क्या बीती, इस सम्बन्ध में श्री० लेस्ली ह्वाइट के सामने, जिन्हें गवर्नमेण्ट ने इस घटना की जाँच के लिए नियुक्त किया है, गवाही देते हुए श्रीमती टी० पी० मुशरान (इलाहाबाद) ने निम्नलिखित आशय का बयान दिया है।

श्रीमती मुशरान अपने रिश्तेदारों से मिलने के लिए लखनऊ गई हुई थीं। वहाँ २५ मई की शाम को वह अपनी बहिन तथा कई बच्चों के साथ जुलूस देखने हज़रतगञ्ज गईं। जब वह हुसेनगञ्ज के चौराहे पर पहुँचीं तो पुलिस ने उनका टाँगा रोक दिया। तब वह पीछे लौट कर एबॉट हॉल के अहाते के सामने, जहाँ बहुत कम लोग थे, फ़ुटपाथ पर खड़ी हो गईं। श्रीमती मुशरान ने देखा कि रॉयल होटल के पास वाले चौराहे पर बहुत से पुलिस के सिपाही खड़े हैं। उनके अतिरिक्त बहुत से लाल पगड़ी वाले रॉयल होटल के भीतर भी दिखाई पड़े। ठीक रॉयल होटल के सामने पुलिस ने जुलूस को रोक दिया। फिर श्रीमती मित्र गिरफ़्तार की गईं और जुलूस में भाग लेने वाली अन्य महिलाओं को भी गिरफ़्तार करके वहाँ से हटा दिया गया। इसके बाद श्रीमती मुशरान ने कॉङ्ग्रेस वालों को "बैठ जाओ, बैठ जाओ" कहते सुना। एबॉट हॉल के अहाते का दरवाज़ा खुलने पर वह उसके अन्दर चली गईं। इतने में उन्होंने एक सीटी की आवाज़ सुनी और उसके साथ ही बहुत से पुलिस के सिपाही रॉयल होटल के भीतर से निकल कर सत्याग्रहियों को पीटने लगे। कॉङ्ग्रेस वाले "शान्ति, शान्ति" तथा जनता "शेम, शेम" चिल्लाने लगी। इस पर पुलिस ने जनता को भी लाठियों से पीटना शुरू कर दिया, जिससे लोग इधर-उधर भागने लगे। परन्तु पुलिस ने भागते हुए आदमियों का भी पीछा किया और उन्हें पीटा।

जब भीड़ तितर-बितर हो गई तो श्रीमती मुशरान ने देखा कि क़रीब पन्द्रह या बीस सत्याग्रही ज़मीन पर लेटे हुए हैं और पुलिस अभी तक उन्हें पीटती चली जा रही है। सत्याग्रही बराबर दुहरा रहे थे—"आज़ादी या मौत, आज़ादी या मौत।" उनके कपड़ों पर ख़ून के धब्बे भी दिखाई पड़ते थे। इसके बाद पुलिस ने उनमें से बहुतों को हाथ से उठा कर और बहुतों को पैर से ठुकरा कर सड़क के पास वाली कच्ची नाली में फेंक दिया।

कुछ लोग एक घायल को बाहर से उठा कर एबॉट हॉल के अहाते के अन्दर ले आए और उसकी सेवा करने लगे। श्रीमती मुशरान उसी को देख रही थीं। इतने में उन्हें पीछे से किसी ने धक्का मारा। उन्होंने घूम कर देखा तो बीस-पचीस पुलिस के सिपाही अहाते के भीतर लोगों को पीट रहे हैं और लोग इधर-उधर भाग रहे हैं। एक पुलिस ऑफ़िसर के हाथ में छोटा सा डण्डा था। वह श्रीमती मुशरान से बोला—'हट जाओ'। श्रीमती जी ने इस ऑफ़िसर से पूछा कि वह हट कर किधर चली जायँ। इसके उत्तर में उस ऑफ़िसर ने उनके सिर पर एक डण्डा मारा। इससे श्रीमती मुशरान को जितना ही दुःख हुआ, उतना ही आश्चर्य। उन्होंने दोनों

हाथों से अपना मुँह ढँक लिया। इतने में उनके हाथ पर भी एक लाठी आ गिरी। फिर एक लाठी पीठ पर लगी और उन्हें पीछे से धक्का दिया गया। जब रास्ता देखने के लिए उन्होंने मुँह पर से हाथ हटाया तो देखा कि पुलिस लोगों को पीट रही है। उन्होंने देखा, एक आदमी के लाठी लगी और वह धम से गिर पड़ा। वह व्यक्ति था उनका भाई—पण्डित हरिहरनाथ किचलू, एडवोकेट। श्रीमती मुशरान चिल्ला उठीं—"उन्हें क्यों मार रहे हो?" वह भाई के पास जाना ही चाहती थीं कि एक दूसरी लाठी उन पर आ गिरी। उस समय भी ज़मीन पर गिरे हुए उनके भाई को तीन-चार पुलिस के सिपाही पीट रहे थे। श्रीमती मुशरान भाग कर एक ओसारे में पहुँचीं। परन्तु वहाँ भी उनकी जान न बची। एक पुलिस के सिपाही ने वहाँ भी उन्हें पीटा और ओसारे से नीचे गिरा दिया। नीचे आने पर उन्होंने देखा कि उनका सोलह वर्ष का लड़का ज़मीन पर गिरा हुआ है और उसके बदन से ख़ून निकल रहा है। उन्होंने पुलिस वाले से कहा—"इसे क्यों मार रहे हो?" इसके उत्तर में फ़ौरन एक डण्डा उनके ऊपर आ गिरा। वह फिर भाग कर एक ओसारे में छिपीं, पर वहाँ भी एक सिपाही खड़ा था। एक दूसरा सिपाही उनके लड़के को पीट रहा था। वह फिर चिल्ला उठीं—"उसे क्यों मार रहे हो?" इस पर पुलिस वाले "छोड़ो साले को" कह कर वहाँ से चले गए। ओसारे से नीचे उतर कर श्रीमती मुशरान ने अपने भाई और बहिन को देखा। भाई की हालत बहुत ही ख़राब थी। श्रीमती मुशरान को आठ चोट लगी थीं, उनके लड़के को सात, उनकी बहिन श्रीमती बख़्शी को सात और भाई को बीस से अधिक।

श्रीमती मुशरान के सोलह वर्ष के लड़के ने गवाही देते हुए कहा कि एक लाठी लगते ही वह ज़मीन पर गिर कर बेहोश हो गया, परन्तु इसके बाद भी उस पर लाठियाँ पड़ती रहीं। होश आने पर उसने देखा कि उसकी माँ दोनों हाथों से मुँह ढँके हुए उसके पास खड़ी है।

इसी प्रकार के और भी बहुत से बयान श्री० लेस्ली ह्वाइट के सामने ग़ैर सरकारी गवाहों की ओर से दिए गए हैं।

* * *

श्रीमती मित्र को छः मास

श्रीमती मित्र असहयोग आन्दोलन के समय से ही राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेती आ रही हैं। सन् १९२१ ई० में (जिस समय वह कुमारी सुनीति चटर्जी के नाम से विख्यात थीं) कलकत्ते में प्रिन्स ऑफ़ वेल्स के आगमन के समय पुलिस की आज्ञाएँ भङ्ग करने के अपराध में श्रीमती सी० आर० दास और श्रीमती उर्मिला देवी पकड़ी गई थीं। उन लोगों के साथ ही साथ श्रीमती मित्र भी गिरफ़्तार हुई थीं, परन्तु आठ घण्टे के बाद ही छोड़ दी गई थीं।

इस बार विगत ३० मई को लखनऊ डिस्ट्रिक्ट जेल में आपके मुक़द्दमे पर विचार हुआ और केवल तीन सरकारी आदमियों की गवाही पर आपको छः महीने की सादी क़ैद की सज़ा दे दी गई। श्रीमती मित्र ने मुक़द्दमे में कोई भाग नहीं लिया। दण्ड को आपने बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया।

* * *

महिलाओं के साथ बर्बरतापूर्ण व्यवहार

श्रीमती मित्र की गिरफ़्तारी के बाद जुलूस में से जो महिलाएँ ज़बर्दस्ती लॉरी में भर कर किसी अज्ञात स्थान में भेज दी गई थीं, उनके विषय में पीछे मालूम हुआ कि उन्हें शहर से दूर आलमबाग़ थाने में भेज दिया गया था। वहाँ उन्हें रात के नौ बजे तक रोक रक्खा गया। उसके बाद उन्हें छोड़ा भी गया तो शहर तक पहुँचाने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया। इन महिलाओं ने पुलिस से शिकायत की कि रात अँधेरी है और हम लोगों को शहर का रास्ता नहीं मालूम। परन्तु पुलिस ने उनकी शिकायत पर कोई ध्यान नहीं दिया। अन्त में उन प्रतिष्ठित घरों की महिलाओं को वहाँ से पैदल ही शहर आना पड़ा। अँधेरे में रास्ता ढूँढ़ते वे रात में साढ़े दस बजे के लगभग अमीनाबाद पहुँचीं। वहाँ से लोगों ने उन्हें उनके घरों तक पहुँचाया।

* * *

सत्याग्रही महिलाओं को बधाई

विगत ४, ५, ६ और ७ जून को इलाहाबाद में अखिल भारतीय कॉङ्ग्रेस कार्य-समिति की एक बैठक हुई थी।

इस बैठक में समिति ने सत्याग्रही महिलाओं के कार्य के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया है :—

यह समिति उन महिला सत्याग्रहियों के प्रति सम्मानपूर्ण सहानुभूति प्रगट करती है, जिन्हें वर्तमान सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने के कारण अपमान और दुर्व्यवहार सहन करना तथा जेल जाना पड़ा है, तथा उन्हें विश्वास दिलाती है कि उनके आत्मबलिदान से इस आन्दोलन को एक अपूर्व शक्ति प्राप्त हो गई है। श्रीमती सरोजिनी नायडू (भूतपूर्व सभा-नेत्री—राष्ट्रीय महासभा), कमलादेवी चट्टोपाध्याय, रुक्मिणी लक्ष्मीपति (सदस्या—अखिल भारतीय महासभा समिति), सत्यवती देवी, मित्र, दुर्गाबाई, कमलादेवी (सदस्या—अखिल भारतीय महासभा समिति) और अञ्जलि अम्मल की देशसेवा के प्रति यह समिति विशेष रूप से सम्मान और कृतज्ञता प्रगट करती है।

*   *   *

'स्त्रियों का संग्राम'

वर्तमान सत्याग्रह आन्दोलन में महिलाओं ने जो भाग लिया है, उसकी समालोचना करते हुए वेमेन्स इण्डियन एसोसिएशन के मुख पत्र 'स्त्री-धर्म' ने अपने जून के अङ्क में लिखा है :—

सत्य, धैर्य, तपस्या और आत्मशुद्धि—ये ही अस्त्र हैं, जिनके द्वारा भारतीय स्वाधीनता की वर्तमान लड़ाई लड़ी जा रही है। यह एक ऐसी लड़ाई है, जिसमें पुरुष और स्त्रियाँ दोनों समान रूप से भाग ले सकते हैं। ऐसी अवस्था में कौन आश्चर्य है यदि तेलगू ब्राह्मण-समाज की प्रथम ग्रेजुएट महिला—श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति—जेल जाने वाली प्रथम महिला बनती है? यदि भारत के सन्देश को तीन महादेशों तक पहुँचाने वाली कवयित्री—सरोजिनी नायडू—नमक के खान पर आक्रमण करने वाले सबसे बड़े जत्थे का सञ्चालन करती है? यदि अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन के (जिसने सभी जातियों, वंशों और मज़हबों की स्त्रियों को एकता के सूत्र में बाँध कर उन्हें सामाजिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी सुधारों के लिए कटिबद्ध कर दिया है) सङ्गठन विभाग की सुयोग्य मन्त्रिणी—श्री मती कमलादेवी—बम्बई में विराट सभाओं और विशाल जुलूसों का सङ्गठन करती हैं? यदि देश के प्रमुख स्थानों में स्त्रियों को 'डिक्टेटर' बनाया जाता है? (जैसे मद्रास में श्रीमती दुर्गाबाई तथा इलाहाबाद में श्रीमती जवाहरलाल नेहरू)। यदि गाँधी की गिरफ़्तारी का विरोध करने के लिए लाहौर जैसे परदा-ग्रसित नगर में ६,००० स्त्रियों का जुलूस निकल पड़ता है? और यदि स्त्रियाँ विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करके स्वदेश के शिल्प को प्रोत्साहन देने तथा शराब की दूकानों पर पिकेटिङ्ग करके जातीय चरित्र की रक्षा करने के सम्बन्ध में अपना कर्तव्य पालन करने के लिए जाग्रत हो उठी हैं? इस नवीन युद्ध में जिन अस्त्रों से काम लिया जा रहा है वे वास्तव में पुरुषों के नहीं, बल्कि स्त्रियों के अस्त्र हैं और इसलिए भारत के इस स्वाधीनता संग्राम को हम निस्सन्देह स्त्रियों का संग्राम कह सकते हैं।

*   *   *

आवश्यक सूचना

इलाहाबाद के मातृमन्दिर में विगत मास एक कनौजिया ब्राह्मणी विधवा के लड़का पैदा हुआ है। लड़का देखने में बहुत ही सुन्दर और स्वस्थ है। यदि कोई सज्जन इस लड़के को गोद लेना चाहें तो वे निम्न-लिखित पते से पत्र-व्यवहार कर सकते हैं। हमारे पास प्रायः गोद लेने योग्य लड़कों के सम्बन्ध में पूछ-ताछ के पत्र आया करते हैं। यदि कोई सज्जन इस लड़के को गोद ले लें तो इससे उनका भी लाभ होगा और मातृमन्दिर का भी भार हलका हो जायगा।

—कुमारी लीलावती जी प्रिन्सिपल,
मातृमन्दिर, कृष्णकुटीर,
रसूलाबाद, इलाहाबाद

टर्की में स्वदेशी आन्दोलन

टर्की में राष्ट्रीय उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने के लिए 'एसोसिएशन ऑन बिहाफ़ ऑफ़ नेशनल इकॉनमी एण्ड थ्रिफ़्ट' नाम की एक संस्था क़ायम की गई है। इसके प्रेसिडेण्ट स्वयं मुस्तफ़ा कमालपाशा हैं। देश भर में सर्वत्र इसकी शाखाएँ स्थापित की जा रही हैं। इस संस्था का सदस्य कोई भी स्त्री या पुरुष हो सकता है, जो लिख कर यह प्रतिज्ञा करे कि वह देशी वस्तुएँ व्यवहार करेगा तथा दूसरों को भी उन्हें व्यवहार करने के लिए उत्साहित करेगा। यद्यपि टर्की में विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार नहीं किया जा रहा है, तथापि आशा की जाती है कि इस आन्दोलन के कारण वहाँ विदेशी वस्तुओं की खपत अवश्य ही कम हो जायगी। मुस्तफ़ा कमालपाशा ने अपने पहले के वस्त्रों को त्याग कर स्वदेशी कपड़े का पोशाक पहनना शुरू कर दिया है और वहाँ के अन्य राजकर्मचारी भी बड़ी तेज़ी के साथ इस आदर्श का अनुकरण कर रहे हैं।

* * *

एक मुस्लिम महिला का स्वदेश-प्रेम

असहयोग के समय बरेली में सैयद अब्दुल वदूद नाम के एक बड़े ही उत्साही राष्ट्रीय कार्यकर्ता थे। उस समय अन्य कार्यकर्त्ताओं के साथ इन्हें भी जेल जाना पड़ा था। बरेली के दुर्भाग्यवश सैयद अब्दुल वदूद आज जीवित नहीं हैं, परन्तु उनकी विधवा, जो पिछले आठ सालों से बराबर बीमार रहने के कारण सूख कर काँटा हो गई है, असाध्य बीमारी और दुर्बलता की हालत में भी अपने पति के आरम्भ किए हुए कार्य को पूरा करने का प्राणपन से उद्योग कर रही है। हाल ही में इस महिला ने बरेली के मुसलमानों से अपील की थी कि वे विदेशी कपड़े के बहिष्कार के आन्दोलन में पूरा-पूरा भाग लें। इसके बाद आपने बरेली के सभी प्रमुख मुसलमानों के नाम व्यक्तिगत पत्र लिख कर उन्हें समझाया कि वे हिन्दू और मुसलमानों के बीच शान्ति बनाए रक्खें। विगत ९ जून को आपने अपने घर ही पर शहर के हिन्दू और मुसलमान स्त्रियों की एक सभा की और बीमारी के कारण चारपाई पर लेटे-लेटे ही उन लोगों को समझाया कि वे विदेशी कपड़े का बहिष्कार करें और जैसे हो सके हिन्दू-मुस्लिम एकता को क़ायम रक्खें। कई महिलाओं को उनकी देशभक्ति के लिए आपने चाँदी के तमग़े भी इनाम में दिए। इस देशभक्त महिला की उज्ज्वल देशभक्ति और अपूर्व कार्य-क्षमता का बरेली की महिलाओं पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है और वे राष्ट्रीय आन्दोलन को सफल बनाने के लिए कमर कस कर तैयार हो गई हैं।

* * *

मुसलमान स्त्रियों में जागृति

'डेली हेरल्ड' के एक सम्वाददाता का कहना है कि रूसी सीमा के आसपास के मुसलमानों की सामाजिक दशा पर सोवियट शासन का बड़ा गहरा और बड़ा कल्याणकारी प्रभाव पड़ा है। उज़्बेकिस्तान और उसकी राजधानी समरकन्द में आज से कुछ ही पूर्व जहाँ एक भी स्त्री बिना परदे के नहीं दिखाई पड़ती थी वहाँ अब आम सड़कों पर स्त्रियाँ बिना बुरक़े के घूमती दिखाई पड़ती हैं। एक साथ बहुत सी पत्नियाँ रखने की प्रथा को क़ानून बना कर रोक दिया गया है। इसलिए अब वहाँ पुरानी चाल के 'हरम' का तो नामोनिशान भी दिखाई नहीं पड़ता। लड़कियों की ख़रीद-बिकरी बन्द करने में बोलशेविकों को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, परन्तु अब इस प्रथा का भी लगभग अन्त हो चुका है। इस सम्वाददाता का कहना है कि मुस्लिम स्त्रियों का परदे से बाहर आना मुस्लिम देशों की उन्नति का सबसे निश्चित प्रमाण है और आजकल समरकन्द की सार्वजनिक सड़कों पर तो बुरक़ा वाली स्त्रियों की अपेक्षा बिना बुरक़ा वाली स्त्रियाँ कहीं अधिक संख्या में दिखाई पड़ती हैं।

* * *

क्रान्तिकारी भावनाओं का सजीव चित्र

[लेखक—श्री॰ ज़हूरबख़्श जी]

एक अनन्त अतीत-काल से समाज के मूल में अन्ध-परम्पराएँ, अन्ध-विश्वास, अविश्रान्त अत्याचार और कुप्रथाएँ, भीषण अग्निज्वालाएँ प्रज्वलित कर रही हैं और उनमें यह अभागा देश अपनी सद्भिलाषाओं, अपनी सत्कल्पनाओं, अपनी शक्तियों, अपने धर्म और अपनी सभ्यता की आहुतियाँ दे रहा है। 'समाज की चिनगारियाँ' आपके समक्ष उसी दुर्दान्त दृश्य का एक धुँधला चित्र उपस्थित करने का प्रयास करती है। परन्तु यह धुँधला चित्र भी ऐसा दुखदायी है कि इसे देख कर आपके नेत्र आठ-आठ आँसू बहाए बिना न रहेंगे। 'समाज की चिनगारियाँ' आपको समाज के उस दारुण उत्पीड़न की मर्मस्पर्शी कथा सुनाने का उपक्रम करती है, जिसे सुन कर कभी आपका हृदय करुणा से उच्छ्वसित हो उठेगा, तो कभी मौन हाहाकार कर उठेगा; कभी ग्लानि से गलित हो उठेगा, तो कभी जोश से फड़फड़ा उठेगा और कभी क्रोध की ज्वाला से भभक उठेगा तथा अन्त में आप आत्म-विस्मृत हो जायँगे।

पुस्तक बिलकुल मौलिक है और उसका एक-एक शब्द सत्य को साक्षी करके लिखा गया है। भाषा इसकी ऐसी सरल, बमुहाविरा, सुललित तथा करुणा की रागिनी से परिपूर्ण है कि पढ़ते ही बनती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि पुस्तक की छपाई-सफ़ाई नेत्र-रञ्जक एवं समस्त कपड़े की जिल्द दर्शनीय हुई है; और सजीव प्रोटेक्टिङ्ग कवर ने तो उसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा दिए हैं। फिर भी मूल्य केवल प्रचार-दृष्टि से लागत-मात्र ३) रक्खा गया है। 'चाँद' तथा स्थायी ग्राहकों से २।) रु॰ !

शुक्ल और सोफ़िया

अर्थात्

पूर्व और पश्चिम

[लेखक—ठाकुर कल्याणसिंह जी शेखावत, बी० ए०]

इस पुस्तक में पूर्व और पश्चिम का आदर्श, दोनों की तुलना, मनुष्य-जीवन के लिए भारत की प्राचीन मर्यादा का सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होना, भारत की वर्त्तमान सामाजिक कुरीतियाँ तथा उनका भयङ्कर परिणाम, यूरोप की विलास-प्रियता और उससे उत्पन्न होने वाली अशान्ति का वर्णन बड़े ही मनोहर ढङ्ग से किया गया है। पुस्तक की भाषा अत्यन्त सरल और मुहावरेदार है।

इङ्गलैण्ड की सोफ़िया नामक एक अनाथ बालिका का भारत के प्रति अगाध प्रेम एवं श्रद्धा, चिकित्सा-कार्य द्वारा उसका भारतीय जनता की निस्स्वार्थ-सेवा करना, डॉक्टर चन्द्रस्वरूप शुक्ल तथा उनकी धर्मपत्नी फूलकुमारी से सोफ़िया का घनिष्ट प्रेम, फूलकुमारी की मृत्यु के बाद शुक्ल और सोफ़िया का प्रणय, एक दूसरे को अपना हृदय समर्पण करना, किन्तु सामाजिक रूढ़ियों के भय एवं पिता के अनुरोध से बाध्य होकर शुक्ल का दूसरी स्त्री से पाणिग्रहण करना ऐसी मनोरञ्जक कहानी है कि पढ़ते ही तबीयत फड़क उठती है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥); स्थायी ग्राहकों से १।।।=) मात्र !

नयन के प्रति

हिन्दी-संसार के सुविख्यात तथा 'चाँद'-परिवार के सुपरिचित कवि आनन्दीप्रसाद जी की नौजवान लेखनी का यह सुन्दर चमत्कार है। श्रीवास्तव महोदय की कविताएँ भाव और भाषा की दृष्टि से कितनी सजीव होती हैं—सो इसे बतलाना न होगा। इस पुस्तक में आपने देश की प्रस्तुत हीनावस्था पर अश्रुपात किया है। जिन ओज तथा करुणापूर्ण शब्दों में आपने नयनों को धिक्कारा और लज्जित किया है, वह देखने ही की चीज़ है—व्यक्त करने की नहीं। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय! दो रङ्गों में छपी हुई इस सुन्दर रचना का न्योछावर केवल ।=); स्थायी ग्राहकों से ।)॥ मात्र !!

प्रेम-प्रमोद

[लेखक—श्री० प्रेमचन्द जी, बी० ए०]

यह बात बड़े-बड़े विद्वानों और अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने एक स्वर से स्वीकार कर ली है कि श्री० प्रेमचन्द जी की सर्वोत्कृष्ट सामाजिक रचनाएँ 'चाँद' में ही प्रकाशित हुई हैं। प्रेमचन्द जी का हिन्दी-साहित्य में क्या स्थान है, सो हमें बतलाना न होगा। आपकी रचनाएँ बड़े-बड़े विद्वान् तक चाव और आदर से पढ़ते हैं। हिन्दी-संसार में मनोविज्ञान का जितना अध्ययन प्रेमचन्द जी ने किया है, उतना किसी ने नहीं। यही कारण है कि आपकी कहानियों और उपन्यासों को पढ़ने से जादू का सा असर होता है; बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष—सभी आपकी रचनाओं को बड़े प्रेम से पढ़ते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में प्रेमचन्द जी की उन सभी कहानियों का संग्रह किया गया है, जो 'चाँद' में पिछले तीन-चार वर्षों में प्रकाशित हुई हैं! इसमें कुछ नई कहानियाँ भी जोड़ दी गई हैं, जिनसे पुस्तक का महत्व और भी बढ़ गया है। प्रकाशित कहानियों का भी फिर से सम्पादन किया गया है। प्रत्येक घर में इस पुस्तक की एक-एक प्रति होनी चाहिए। जब कभी कार्य की अधिकता से जी ऊब जाय, एक कहानी पढ़ लीजिए, सारी थकान दूर हो जायगी और तबीयत एक बार फड़क उठेगी? कहानियाँ चाहे दस वर्ष बाद पढ़िए, आपको उनमें वही मज़ा मिलेगा। छपाई-सफ़ाई सुन्दर, बढ़िया काग़ज़ पर छपी तथा समस्त कपड़े की सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) रु०; पर स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र!

निर्मला

[ले० श्री० प्रेमचन्द जी, बी० ए०]

इस मौलिक उपन्यास में लब्धप्रतिष्ठ लेखक ने समाज में बहुलता से होने वाले वृद्ध-विवाहों के भयङ्कर परिणामों का एक बीभत्स एवं रोमाञ्चकारी दृश्य समुपस्थित किया है। जीर्ण-काय वृद्ध अपनी उन्मत्त काम-पिपासा के वशीभूत होकर किस प्रकार प्रचुर धन व्यय करते हैं; किस प्रकार वे अपनी वामाङ्गना षोडशी नवयुवती का जीवन नाश करते हैं; किस प्रकार गृहस्थी के परम पुनीत प्राङ्गण में रौरव-काण्ड प्रारम्भ हो जाता है, और किस प्रकार ये वृद्ध अपने साथ ही साथ दूसरों को लेकर डूब मरते हैं; किस प्रकार उद्भ्रान्ति की प्रमत्त-सुखद कल्पना में उनका अवशेष ध्वंस हो जाता है—यह सब इस उपन्यास में बड़े मार्मिक ढङ्ग से अङ्कित किया गया है। सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥); स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र!

व्यवस्थापिका

'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक,

इलाहाबाद

चित्तौड़ की चिता

[रचयिता—प्रोफ़ेसर रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

कविता की अनमोल पुस्तक

यह वह पद्यमय पुस्तक है, जिसे पढ़ कर एक बार उन लोगों में भी शक्ति का सञ्चार हो जाता है, जो जीवन से विरक्त हो चुके हैं। वीर-प्रसविनी चित्तौड़ की माताओं का यदि आप स्वार्थ-त्याग, देश-भक्ति तथा कर्म-निष्ठा का ज्वलन्त उदाहरण देखना चाहते हैं, यदि आप चाहते हैं कि भारत का मातृ-मण्डल भी इन वीर-क्षत्राणियों के आदर्श से शिक्षा ग्रहण कर अपने निरर्थक जीवन को भी उसी साँचे में ढाले; यदि आप चाहते हैं कि कायर बालकों के स्थान पर एक बार फिर वैसी ही आत्माओं की सृष्टि हो, जिनकी हुङ्कार से एक बार मृत्यु भी दहल जाया करती थी, तो इस वीर-रसपूर्ण ऐतिहासिक पुस्तक को स्वयं पढ़िए तथा घर की स्त्रियों और बच्चों को पढ़ाइए—सुन्दर छपी हुई पुस्तक का मूल्य केवल १॥) रु०; स्थायी ग्राहकों से १=) मात्र!

कविता में ऐसी सुन्दर वीर-रस में पगी हुई पुस्तक हिन्दी-संसार में अब तक प्रकाशित नहीं हुई थी। "कुमार" महोदय की कविताओं का जिन्होंने 'चाँद' द्वारा रसास्वादन किया, वे इन कविताओं की श्रेष्ठता का अभी से अनुभव कर सकते हैं।

Regd. No. A—1154

३, पूर्ण संख्या ९३

लालबुझक्कड़

जी. पी. श्रीवास्तव

Printed and Published by SHUKDEVA ROY—Editor, at the Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone Road, Chandralok, Allahabad.